उन्हें महासभा ने एक बार फिर राष्ट्रपति निर्वाचित किया था* और कलकत्ते में राष्ट्रीय महासभा के उस उच्च आसन से ही उन्होंने हमें स्वराज्य शब्द प्रदान किया था--'राजनैतिक नारा' के रूप में। उनकी जीवनी हमें सिखाती है कि अपने भाग्य-निर्णय का अधिकार प्राप्त करने के लिए दूसरों पर निर्भर रहना मूर्खता है।

*वस्तुतः वे तीसरी बार कांग्रेस के सभापति हुए थे। सन् १८९३ में मैं उनसे पहले-पहल मिला था। उससे पहले वे कांग्रेस के द्वितीय अधिवेशन का सभापतित्व कर चुके थे।

१९४५

❀ ❀ ❀

रवीन्द्रनाथ की हिन्दी-सेवा

पण्डित हजारीप्रसाद द्विवेदी

आज से तीन वर्ष पूर्व श्रावणी पूर्णिमा को कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने इहलोक की लीला समाप्त की थी। उन्होंने नाना भाव से देश की सेवा की है और विदेश में भारतवर्ष की मर्यादा बढ़ाने का दुःसाध्य कार्य किया है। कम लोगों को ही मालूम होगा कि शान्ति-निकेतन का हिन्दी-भवन उनकी स्थापित संस्थाओं में अन्तिम है। यही मानों उनके महान् सेवा-यज्ञ की अन्तिम पूर्णाहुति है। उन्होंने अपनी अन्तर्दृष्टि से समझा था कि हिन्दी संसार की परम शक्तिशाली भाषाओं में से एक है। आज भारतवर्ष की राजनीतिक पराधीनता के कारण वह उस उचित स्थान को नहीं पा सकी है जिसकी वह अधिकारिणी है परन्तु यह निश्चित है कि कुछ ही दिनों में यह संसार की प्रमुख भाषाओं में गिनी जायगी। वह लाखों-करोड़ों के सुख-दुःख और आशा-आकांक्षा को प्रकट करनेवाली ऐसी लोकभाषा है जिसे संस्कृत, प्राकृत, पाली के साथ ही साथ अरबी-फारसी और अँगरेजी-जैसी अत्यन्त समृद्ध भाषाओं के निकट सम्पर्क में आने का अवसर मिला है। वह ऐसी भाषा है जिसे भारतवर्ष-जैसे देश को गुलामी के बन्धनों से निकालकर स्वाधीनता का वरमाल्य पहनाने का अवसर शीघ्र ही मिलनेवाला है। वह ऐसी भाषा है जो गुलामी का बन्धन काटते-काटते बड़ी हुई है, संघर्ष में जनमी है, संघर्ष ही में पली है और संघर्ष में ही शक्ति-संचय करती है। जिस दिन यह भाषा दीनता के अन्धकार को फाड़कर बाल-सूर्य की भाँति स्वाधीन भारत में उदित होगी, उस दिन दुनिया इसकी अन्दरूनी ताकत को देखकर आश्चर्य करेगी। यह बात मैं स्वभाषा-भक्ति के आवेश में नहीं कह रहा हूँ; अपनी विद्या-बुद्धि पर खूब सोच-विचार-कर ही मैंने यह निष्कर्ष निकाला है। यह विश्वास मेरे जीवन का प्रधान सम्बल रहा है। मैं दृढ़तापूर्वक विश्वास करता रहा हूँ कि इतिहास-विधाता इस भाषा के माध्यम से बड़े-बड़े काम कराने का संकल्प रखते हैं। हिन्दी अपनी भीतरी जीवनी शक्ति के बल पर अत्यन्त अल्पकाल में एक अत्यन्त शक्तिशाली भाषा हो गई है। विश्वविद्यालयों की सहायता से वह बड़ी नहीं हुई है, राजशक्ति के बल पर वह नहीं चली है--विश्वविद्यालय और राज्य दोनों ने ही अनिच्छापूर्वक और अगत्या उसे स्वीकार किया है। देश के विश्वविद्यालयों से आशा की जा सकती थी कि वे इस भाषा को अंगीकार करते और इसे समृद्ध बनाने में सहायता पहुँचाते परन्तु उन्होंने इस विषय में कोई सहायता नहीं पहुँचाई। जब देश की लोकशक्ति बहुत आगे बढ़ गई और जब विश्वविद्यालयों के लिए अधिक टालमटोल करना असम्भव हो गया तब बड़ी कृपापूर्वक उन्होंने हाई स्कूल और इन्टरमीडिएट तक के स्टैंडर्ड के लिए हिन्दी का माध्यम स्वीकार किया परन्तु इसमें भी कितनी हिचकिचाहट दिखाई गई है! अपनी मातृभाषा में शिक्षा पाने का जन्मसिद्ध अधिकार भी इस अभागे देश में तर्क और बहस-मुबाहिसे का विषय बना हुआ है।

कविवर रवीन्द्रनाथ अपने देश के विश्वविद्यालयों की इस अकर्मण्यता से ऊब उठे थे। कलकत्ता-विश्वविद्यालय के उपाधि-वितरणोत्सव के समय उन्होंने बड़ी

हृदयद्रावक भाषा में अपनी क्षुब्ध-कातर प्रार्थना इस प्रकार प्रकट की थी—"मैं अपनी प्यासी मातृभाषा की तरफ से अपने ही देश के विश्वविद्यालय के द्वार पर खड़ा, चातक की तरह उत्कण्ठित वेदना के साथ प्रार्थना करता हूँ; तुम्हारे अभ्रभेदी शिखर को घेरे हुए जो पुंज के पुंज श्यामल मेघ घूम रहे हैं, उनका प्रसाद आज फलों और शस्यों पर बरसने दो; पुष्पों और पल्लवों से पृथ्वी सुन्दर हो उठे, मातृभाषा का अपमान दूर हो, युग-शिक्षा की उमड़ती हुई धारा हमारे चिन्तन की सूखी नदी के रेतीले मार्ग से बाढ़ की तरह बह निकले, दोनों तट पूर्ण चेतना से जाग उठें, घाट-घाट पर आनन्द-ध्वनि मुखरित हो उठे।" कवि की वह वाणी बहुत कम सुनी गई है। मातृभाषा अब भी इस देश के विश्वविद्यालयों में उपेक्षित ही है।

साधारणतः शिक्षा विभाग के अधिकारी किसी देशी भाषा को शिक्षा का माध्यम नहीं बनने देने में प्रधान कारण पुस्तकों का अभाव बताते हैं। पहले कोई उनके लिए पुस्तकें लिख दे, छाप दे, अध्यापकों को हिन्दी बोलने की आदत डलवा दे, तब शायद वे विचार करेंगे कि प्रस्ताव पर ध्यान किया जा सकता है या नहीं। नाना कारखानों से नाना भाँति के अंग-प्रत्यंग बन आवें, तब वे शिक्षा-पुरुष को जोड़-बटोरकर तैयार कर लेंगे। यह उचित रास्ता नहीं है। शिक्षा एक सजीव वस्तु है। विधाता बालक की रचना समग्र रूप में ही करते हैं। कविवर रवीन्द्रनाथ ने लिखा है—"कोई छोटा बच्चा जब किसी प्रौढ़ व्यक्ति के बगल में खड़ा होता है तो वह अपनी समग्रता का सपूर्ण संकेत लेकर ही खड़ा होता है। ऐसा नहीं कि किसी कोठरी में एक-दो वर्ष तक बच्चे के सिर्फ पैर ही बनाये जा रहे हों और दूसरी में हाथ की कुहनी तक ही लग्गा लग चुका हो। इतनी दूर तक सृष्टि-कर्ता की सतर्कता नहीं पहुँची। सृष्टि की भूमिका में भी अपरिणति के होते हुए भी समग्रता होती है। उसी तरह मैं देशी भाषा के विश्वविद्यालय की भी एक सजीव समग्र शिशुमूर्ति देखना चाहता हूँ। वह मूर्ति कारखानों में बनी खंड-खंड विभागों की क्रमशः योजना नहीं होगी। पूरी उम्रवाले विद्यालय के बग़ल में ही वह खड़ी हो जाय—बालक विश्वविद्यालय के रूप में। उसकी बालकमूर्ति में ही हम देखेंगे उसकी विजयी मूर्ति और देखेंगे उसके ललाट पर राजासन अधिकार का प्रथम टीका।" विश्व-भारती ऐसा ही विश्वविद्यालय है। उसका सबल नवीन विभाग हिन्दी-भवन ऐसा ही शिशु है। शिशु की सब कमजोरियाँ उसमें हैं, ह्रास-वृद्धि की सभी सम्भावनायें हैं फिर भी वह सजीव और समग्र है। हिन्दीभवन की स्थापना के समय उन्होंने इन पंक्तियों के लेखक से कहा था—"तुम्हारी भाषा परम शक्तिशाली है। बड़े-बड़े पदाधिकारी तुमसे कहेंगे कि हिन्दी में कौन-सा रिसर्च होगा भला! तुम उनकी बातों में कभी न आना। मुझे भी लोगों ने बँगला में न लिखने का उपदेश दिया। मैंने बहुत दुनिया देखी है। ऐसी भाषायें भी हैं जो हमारी भाषाओं से कहीं कमजोर हैं, परन्तु उनके बोलनेवाले अँगरेजी का विश्वविद्यालय नहीं चलाते। हमारे ही देश में लोग परमुखापेक्षी हैं। तुम कभी अपना मन छोटा मत करना, कभी दूसरों की ओर मत ताकना। देखो मैं पके हुए बाँसों पर भरोसा नहीं करता। उन्हें झुकाना कठिन है। कच्चे बाँस ही ले आओ। देशी भाषाओं को कच्चे युवकों की जरूरत है। साहस ज्यादा जरूरी है। लग पड़ोगे तो सब हो जायगा। हिन्दी के माध्यम से तुम्हें ऊँचे से ऊँचे विचारों को प्रकट करने का प्रयत्न करना होगा। क्यों नहीं होगा? मैं कहता हूँ जरूर होगा। ठूँठ-प्रवीणों से आशा नहीं है। नवीन युवक असाध्य साधन कर सकते हैं।" मुझे उनकी शब्दावली याद नहीं है पर भाव यही हैं। ये मेरे चित्त पर वज्रलेप की तरह अंकित हो गये हैं।

जिस दिन दीनबन्धु एंड्रूज़ ने हिन्दी-भवन का शिलान्यास किया था उस दिन वे अस्वस्थ थे। सोचा गया था कि उन्हें उत्सव-स्थान पर नहीं लिवाया जायगा परन्तु वे माने नहीं। बोले, 'देखो मैं जरूर चलूँगा और वैदिक मन्त्र मैं ही पढ़ूँगा। तुम लोग मुझे रोक नहीं सकते।' उन्होंने ही शिलान्यास के अवसर पर इस शुभ अनुष्ठान का पौरोहित्य किया था। वे मनुष्य की शक्ति में पूर्ण विश्वास रखते थे। कभी उन्होंने मनुष्य को छोटा नहीं समझा। इसीलिए वे उस भाषा की महिमा को जानते थे, जिसे करोड़ों मनुष्यों के सुख-दुःख को प्रकट करने का अवसर मिला है। वे मनुष्य की अजेय शक्ति में विश्वास रखते थे। हिन्दी को वे एक ऐसी लोकभाषा मानते थे जिसकी अद्भुत और अक्षय्य शक्ति अभी प्रकट नहीं हुई।

स्व० प्रेमचन्दजी की मृत्यु का समाचार पाकर उन्होंने बड़े दुख के साथ कहा था—'तुम्हें एक आदमी मिला था जो सचमुच तुम्हारी भाषा की शक्ति को पहचानता था, पर दुःख है, विधाता ने उसे छीन लिया। तुम्हारी भाषा में बड़ी शक्ति है और बड़ी संभावनायें हैं।'

हिन्दी-भवन का द्वारोद्घाटन पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने किया था। उस अवसर पर भी कविगुरु वहाँ उपस्थित थे। उस दिन वे बहुत प्रसन्न थे। हम लोगों के साथ देर तक बातें करते रहे। हम सबको प्रायः हँसाते रहे।*

वह शुभ दिन था जब पं० बनारसीदासजी, श्री सीतारामजी सेकसरिया के साथ, शान्ति-निकेतन पधारे थे। सीताराम जी ने पाँच सौ रुपये देकर हिन्दी-भवन की स्थापना की सम्भावना में वृद्धि की थी। बाद में श्री सेठ भागीरथजी कानोडिया आये और हिन्दी-भवन की स्थापना उनके ही शुभ संकल्पों से सम्भव हुई। दीनबन्धु ने कहा था कि कानोडियाजी उन श्रीमन्तों में हैं जिनका दायाँ हाथ बायें हाथ के दिये हुए की खबर नहीं रखता। उनकी कृपा के बल पर ही हिन्दी-विभाग चलता रहा है। हिन्दी-भवन में स्व० रायबहादुर मोतीलाल विश्वेश्वरलालजी हलवासिया ट्रस्ट का रुपया लगा है। स्वर्गीय हलवासिया की दानवीरता अति परिचित बात है। इसी ट्रस्ट ने हिन्दी-भवन में कार्य आरम्भ करने के लिए भी उदार सहायता दी है। कभी-कभी मैं सोचता हूँ कि हिन्दी-भवन की स्थापना में इतने शुद्ध-हृदय महामना व्यक्तियों का सहयोग कैसे मिल गया! रवीन्द्रनाथ, सी० एफ़० एंड्रूज, जवाहरलाल नेहरू, मो० वि० हलवासिया, सीताराम सेकसरिया, भागीरथ कानोडिया, रामदेव चोखानी, बनारसीदास चतुर्वेदी—इनमें किसी एक का भी नाम जुड़ा रहने से संस्थायें गौरवान्वित हो सकती हैं। हिन्दी-भवन को इन सब का सहयोग कैसे मिल गया? यह क्या आकस्मिक घटना है? मेरा विश्वास है कि यह आकस्मिक बात नहीं है। हिन्दी की यह अन्तर्राष्ट्रीय स्वीकृति किसी महान् भविष्य की ओर इंगित करती है।

हिन्दी-भवन की स्थापना करके स्व० कविगुरु रवीन्द्रनाथ ने हिन्दी की जो सेवा की है वह साधारण नहीं है। उन्होंने किसी सद्यःप्राप्य फल की आशा से यह काम नहीं किया। वे भारतवर्ष की आत्मा को सबल और सतेज बनाने के लिए दीर्घ तपस्या की आवश्यकता में विश्वास करते थे। हिन्दी-भवन को वे साहित्य और संस्कृति की साधना के पीठ के रूप में देखना चाहते थे। यह हिन्दी-प्रेमियों का पावन कर्त्तव्य है कि वे देखें कि उनका संकल्प सत्य हो, उनकी इच्छा पूर्ण हो और हिन्दी इस योग्य बने कि विश्व के दरबार में उस महान् भारतीय सन्देश को पहुँचा सके जिसे कबीर, सूर, तुलसी और मीराबाई ने इस भाषा में रक्खा था।

*इसी अवसर पर गुरुदेव ने अपने हाथों हिन्दी-भवन के सामने कृष्णचूड़ा का एक वृक्ष रोपा था जो आश्रम में उनके हाथों लगाये हुए वृक्षों में अन्तिम है। पिछले वसन्त में यह फूल भी उठा था। हिन्दी-भवन के विकास के साथ यह वृक्ष मानों एकात्म है—उसी का प्रतीक है।

१९४५

❀ ❀ ❀

परलोकगत रायबहादुर बाबू श्यामसुन्दरदास

श्री चतुर्वेदी द्वारकाप्रसाद शर्मा

प्रथम परिचय

ठीक-ठीक तो स्मरण नहीं, सम्भवतः सन् १९०३ की बात है। उन दिनों काशी के हिन्दी साहित्याकाश में कई देदीप्यमान नक्षत्र विद्यमान थे। हमारे वहाँ के परिचितों में थे—भारतजीवन प्रेस के अध्यक्ष बाबू रामकृष्ण वर्मा, लहरी प्रेस के मालिक बाबू देवकीनन्दन खत्री, बाबू कार्तिकप्रसाद खत्री, पण्डित किशोरीलाल गोस्वामी और बाबू राधाकृष्णदास। हमें प्रयाग में पहुँचे चार-पाँच वर्ष हो चुके थे और जिस समय की घटना हम लिखने बैठे हैं, उस समय हम प्रयाग में भारती-भवन के समीप, कूचा बहोरमल के

एक मकान में किरायेदार थे। यह मकान बाबूलाल खत्री बजाज का था और उसमें एक वृद्धा स्त्री, जिसको लोग 'भाभो' कहते थे, रहती थी। यह घर माननीय मदनमोहन मालवीय और तत्कालीन गवर्नमेंट हाईस्कूल के हेडपण्डित पण्डित जयदेव मालवीय के घरों के अत्यन्त निकट था। इस मकान में पहुँचने के कुछ ही दिनों बाद, प्रधान संस्कृताध्यापक तथा मालवीयजी से हमारा परिचय हुआ और उनके साथ उठना-बैठना आरम्भ हुआ। उन दिनों मालवीय जी हाईकोर्ट में वकालत करते थे और उनका दफ़्तर कूचे के फाटक में घुसते ही बायें हाथ पर था। उन दिनों मालवीयजी महाराज अदालतों में नागरी अक्षरों को प्रवेश कराने के उद्योग में लगे हुए थे और इस विषय की एक खासी मोटी और बड़े आकार की अँगरेजी की पुस्तक भी निकाली थी। इस पुस्तक में सरकारी रिकार्डों के हवाले और उद्धरण थे, जिनसे नागरी का पक्ष पुष्ट होता था। इस कार्य में मालवीयजी के दक्षिण हस्त थे, भानुताप यन्त्र के आविष्कर्त्ता पण्डित श्रीकृष्ण जोशी। ज़माना था सर एंटनी मैकडनेल्ड का। प्रयाग में माननीय मालवीयजी और काशी में नागरीप्रचारिणी सभा नागरी लिपि के महत्त्वपूर्ण कार्य को सफलतापूर्वक सुसम्पन्न करने के हेतु, सतत प्रयत्न कर रही थीं। नाम तो था काशी-नागरीप्रचारिणी सभा का, किन्तु उसके नाम से प्रधान उद्योग करनेवाले थे बाबू श्यामसुन्दरदास। उस समय नागरी लिपि को अदालतों में स्थान दिलाने के अतिरिक्त नागरी लिपि के सौष्ठव की वृद्धि के लिए नागरीप्रचारिणी सभा की ओर से परीक्षा भी हुआ करती थी और नागरी लिपि लिखनेवालों को सम्भवतः सभा की ओर से कुछ पुरस्कार भी दिया जाता था।

× × ×

काशी की नागरीप्रचारिणी सभा को सफलतापूर्वक उन्नति के पथ पर आरूढ़ करनेवालों में एक थे पण्डित केदारनाथ शर्मा। आप मिरजापुर के रहनेवाले थे और अपनी धुन के पक्के थे। उन्होंने सभा के सदस्यों की संख्या बढ़ाने के हेतु देश में दूर-दूर तक भ्रमण किया था। उन्हें मालूम भर हो जाता कि अमुक व्यक्ति नागरी-हिन्दी का अनुरागी है, तो वे उसको सदस्य बनाये बिना कल नहीं लेते थे। इन जैसे परिश्रमी, अध्यवसायी और संलग्नता के साथ कार्य करनेवाले लोग बहुत कम हैं। यद्यपि हिन्दी-समाचारपत्रों में काशी की नागरीप्रचारिणी सभा की चर्चा हुआ करती थी और हम उसे पढ़ते भी थे, किन्तु हमारी उसकी ओर प्रवृत्ति न थी।

एक दिन पण्डित केदारनाथजी मालवीयजी के दफ्तर में बैठे थे। संयोगवश हम भी वहाँ जा पहुँचे। पण्डित केदारनाथजी ऊँचा सुनते थे। अतः मालवीयजी ने संकेत द्वारा उनका ध्यान हमारी ओर आकर्षित किया। फिर क्या था। पण्डितजी बड़ी सादगी और धैर्य के साथ हमसे वार्त्तालाप करने में प्रवृत्त हुए। अन्त में सभा का महत्त्व समझा, हमसे भी सदस्य बनने की बात छेड़ी। हमने, अन्त में, यह कहा—"आपकी सभा का कार्य और उद्देश्य स्तुत्य हैं, हम उसके शुभचिन्तक हैं, किन्तु सदस्य बनने के विषय में, हम किसी समय काशी आकर ही, अपना अन्तिम निर्णय बतावेंगे।" हमारे इस उत्तर से पण्डितजी हताश न हुए; प्रत्युत प्रसन्न हो बोले—"हाँ, यह ठीक है। आप एक बार काशी अवश्य आवें और सभा-भवन में पधारें।"

जैसे-जैसे हमें बहोरमल के कूचेवाले मकान में रहते हुए दिवस व्यतीत होते, वैसे ही वैसे हमारा और माननीय मालवीयजी का परिचय एवं सम्बन्ध घनिष्ठ होता जाता था। जो बात उस समय हमने मालवीयजी के घर में देखी थी वह अब नहीं रही। उस समय मालवीयजी का घर एक आदर्श हिन्दू-गृह था। चन्द्रकान्त, रमाकान्त, कृष्णकान्त, राधाकान्त आदि को वेद-मन्त्र सस्वर पढ़ाने हेतु एक वैदिक पण्डित नित्य मालवीयजी के घर आते थे। मालवीयजी के घर पर वसन्तपूजा का समारोह प्रायः हुआ करता था। श्रीकृष्णजन्माष्टमी के अवसर पर आठ-दस दिन बड़ी चहल-पहल रहती थी। भगवान् श्रीकृष्ण के दिव्य मंगल विग्रह का शृंगार किया जाता था। गाना-बजाना होता था। नगर के अनेक प्रतिष्ठित जन इस समारोह में उपस्थित होते थे। व्रजमोहन मालवीय की हारमोनियम बाजा बजाने की पटुता देखने को अनेक पुरुष आते थे। मालवीयजी के पिता श्री व्रजनाथजी वल्लभी रोरी का तिलक माथे पर लगाये वहाँ विराजते थे। आप श्रीमद्भागवत के अच्छे मर्मज्ञ थे। बड़े शान्त और शिष्ट थे। मालवीयजी अपने नये मकान की बैठक में बैठते। हमारा भी वहाँ उठना-बैठना आरम्भ हो गया था। यह बैठक रात के १२ बजे तक उठती जब मालवीयजी ऊँघने लगते थे। उन दिनों अदालत में नागरी अक्षरों का प्रवेश

कराने का उद्योग चालू था; साथ ही म्योर कालेज से सम्बन्धित 'हिन्दू बोर्डिंग हाउस' की योजना का भी कार्य आरम्भ था। एनी बेसेंट के काशीस्थ हिन्दू कालेज के कारण मालवीयजी के मनोराज्य में हिन्दू-विश्वविद्यालय की रूप-रेखा भी अंकित हो चुकी थी। सनातनधर्म-संग्रह का कार्य भी मालवीयजी अपने हाथ में ले चुके थे।

संयोगवश महामना मालवीयजी को काशी जाना पड़ा। बातों ही बातों में हमसे भी कहा गया—"चौबेजी, काशी तुम भी चलो।" दफ़्तर की दो दिवस की छुट्टी थी—अतः हमें मालवीयजी की आज्ञा शिरोधार्य करने में कोई आपत्ति न हुई। हम गए और मालवीयजी के साथ रामपुरी के मकान में ठहरे। शाम को नागरीप्रचारिणी सभा का आमन्त्रण पा हम मालवीयजी के साथ सभा-भवन में पहुँचे। बाबू श्यामसुन्दरदासजी से हमारा प्रथम परिचय सभा-भवन ही में हुआ। शरीर से हृष्ट-पुष्ट, गौरवर्ण और विशाल नेत्रवाले बाबू श्यामसुन्दरदास की ओर हमारा मन हठात् आकर्षित हुआ। मालवीयजी सभापति के आसन पर आसीन थे। आपके भाषण के बाद बाबू श्यामसुन्दरदास का भाषण हुआ। इनका भाषण विशुद्ध हिन्दी में था और धारा-प्रवाह रूप से था। हिन्दी के शब्दों का उच्चारण बड़ा ही शुद्ध था। विषय-प्रतिपादन की शैली प्रभावोत्पादक थी। हमने ऐसा भाषण मानो महामना मालवीयजी के मुख से सुना था या आज बाबू श्यामसुन्दरदास के मुख से। हम आपके इन गुणों से बहुत ही प्रभावान्वित हुए। सभा का कार्य समाप्त होने पर परस्पर परिचय कराया गया। यहीं हमारा सर्वप्रथम परिचय बाबू राधाकृष्णदास तथा बाबू गौरीशंकर से हुआ। पण्डित केदारनाथजी भी वहाँ उपस्थित थे। उनको सामने देख हमने सदस्य-फार्म माँगा और उसे भर सदस्यशुल्क के साथ उनके हवाले किया। हम 'काशी-नागरीप्रचारिणी सभा' के कई वर्षों तक सभा-सद रहे। सभा के सदस्य होने के नाते बाबू श्यामसुन्दरदास से हमारी घनिष्ठता उत्तरोत्तर बढ़ती ही गई; क्योंकि वे सभा के प्रधान मन्त्री थे। यद्यपि बाबू श्यामसुन्दरदास के चेहरे पर गम्भीरता एवं विचारशीलता परिलक्षित होती थी, तथापि वे हँसमुख और मिलनसार भी थे। जब कभी उनसे वार्त्तालाप करने का अवसर प्राप्त हुआ, तब वार्त्तालाप का विषय 'हिन्दी-साहित्य' ही होता था। उनकी बातचीत से तत्कालीन हिन्दी-साहित्य की प्रगति और हिन्दी-लेखकों का विशेष परिचय प्राप्त हुआ करता था। उनके समय की 'नागरीप्रचारिणी सभा' की वार्षिक रिपोर्ट के अन्तर्गत तत्कालीन समाचारपत्रों का प्रगति-सम्बन्धी नोट समाचार-पत्रों में चहल-पहल मचा दिया करता था। सभा और उसकी उन्नति के मुख्य कारण बाबू श्यामसुन्दर-दास से कुढ़नेवाले कतिपय परोत्कर्ष-असहिष्णु हिन्दी-लेखक सभा के कार्यों की आलोचना करते हुए बाबू श्याम-सुन्दरदास को भी घर घसीटते थे। किन्तु जहाँ तक हमें स्मरण है, बाबू श्यामसुन्दरदास ने ऐसे अवांछनीय एवं कटुता बढ़ानेवाले लेखकों को उत्तर कभी न दिया। उनके लेखों में व्यक्तिगत आलोचना या आक्षेप नहीं होते थे। वे जो कुछ लिखते थे बड़े संयम के साथ लिखते थे। नागरी-प्रचारिणी सभा को वे 'ग्रेट ब्रिटेन एंड आयरलैंड' की 'रायल एशियाटिक सोसायटी' के आदर्श पर चलाना चाहते थे। उनके समय की त्रैमासिक 'नागरी-प्रचारिणी पत्रिका' पढ़ने की एक वस्तु होती थी।

× × ×

जहाँ तक हम उन्हें जान सके, कह सकते हैं, वे किसी धर्म के अनुयायी न थे। लिखने में, विचारने में, उनका आदर्श था पाश्चात्य शिक्षित-समाज। पाश्चात्य शिक्षित-समाज की विचारधारा उनकी दृष्टि में अभ्रान्त एवं आदर की वस्तु थी। अतः जब उन्होंने सभा-द्वारा रमेशचन्द्र दत्त-लिखित 'हिस्ट्री ऑफ़ एनशिएंट सिविलिज़ेशन आफ इंडिया' का भाषानुवाद प्रकाशित करना आरम्भ किया, तब हमारा उनके साथ मतभेद हो गया। हम उनके दृष्टि-कोण से सर्वथा विपरीत थे। दत्त ने ह्निटनी-वेबर आदि पाश्चात्य लेखकों के वैदिक धर्म की अपकृष्टता सिद्ध करने का प्रयत्न करनेवाले सिद्धान्तों का चर्वित-चर्वण किया है। ऐसी पुस्तक के प्रचार से युवकों के मन में आर्य-संस्कृति के प्रति घृणा उत्पन्न होने के अतिरिक्त अच्छे भाव उत्पन्न हो ही नहीं सकते। इस विषय पर हमारा उनका बहुत दिनों तक पत्र-व्यवहार हुआ। अपने पत्रों में बाबू साहब ने उक्त पुस्तक के प्रकाशन की आवश्यकता एवं उपयोगिता हमें समझाने का भरसक प्रयत्न किया; किन्तु दुर्भाग्यवश उनका तर्क हमारी समझ में न आया। तब हमने अपने मत की पुष्टि में 'प्रयाग-समाचार' में एक लेख-माला लिखी। इस लेख-माला की चर्चा तत्कालीन काशी के 'सुदर्शन'

नामक मासिक पत्र में तथा बम्बई के 'श्री वेंकटेश्वर-समाचार' में भी हुई। किन्तु बाबू श्यामसुन्दरदास ने अपनी टेक न छोड़ी। परिणाम यह हुआ कि हमें उक्त सभा से सम्बन्ध-विच्छेद करना पड़ा। किन्तु सभा से सम्बन्ध-विच्छेद होने के अनन्तर भी बाबू श्यामसुन्दरदास के साथ हमारे व्यक्तिगत सम्बन्ध में अन्तर न पड़ा। उधर काशी से 'हिन्दी-कोविद-रत्नमाला' प्रकाशित हो गई। हमसे भी अपना चित्र और परिचय भेजने को कहा गया। उत्तर में हमने लिखा—"न तो हम अपने को अपना चित्र प्रकाशित कराने योग्य समझते हैं और न हमारी जीवनी ही महत्त्व-पूर्ण है जिसे पढ़कर लोग लाभान्वित हों।' फिर पिछले वर्ष जब बाबू साहब ने 'इंडियन प्रेस' की 'सरस्वती-सीरीज़' के लिए हिन्दी-लेखकों के सम्बन्ध में 'हिन्दी के निर्माता' पुस्तक लिखना आरम्भ किया, तब हमारा भी स्मरण किया गया। इस बार हमने बड़ी विनम्रता से बाबू साहब को अपने पत्र में लिखा कि "हमारी इच्छा है कि हम संसार में जिस प्रकार अपरिचित आये, उसी प्रकार हम यहाँ से अपरिचित ही जायँ।" हम जहाँ तक जानते हैं, हमारा यह उत्तर बाबू साहब के सन्तोष का कारण तो न हो सका होगा, किन्तु फिर उनका कोई पत्र हमें न मिला।

× × ×

सभा ने जब 'मनोरंजन ग्रन्थमाला' का प्रकाशन आरम्भ करना चाहा, तब भी बाबू श्यामसुन्दरदासजी के स्मृति-पथ से हम विस्मृत न हो सके। उनके अनुरोध से हमने भी दो-तीन पुस्तकें उक्त ग्रन्थमाला के लिए लिखकर भेजीं जो प्रकाशित की गईं। हम अपने व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर कह सकते हैं कि बाबू श्यामसुन्दरदास बड़े व्यवहार-कुशल थे। वे स्वयं खूब काम करते थे। और दूसरों से काम लेने की उनमें विशेष योग्यता थी। पत्र-व्यवहार में वे बड़े चुस्त थे। पत्र का उत्तर तुरन्त देते थे। लखनऊ में कालीचरण हाईस्कूल की हेडमास्टरी करने के दिनों में भी ऐसा कभी न हुआ कि हमारे किसी पत्र का उत्तर हमें तुरन्त न मिला हो। नियमित रूप से और स्वनिर्दिष्ट कार्यपद्धति के अनुसार निरन्तर काम करने पर ही प्रत्येक कार्य में अपेक्षित सफलता प्राप्त होती है। बाबू श्याम-सुन्दरदास में ये दोनों ही गुण विद्यमान थे। अतः वे जीवन-काल में हिन्दी-साहित्य की जितनी सेवा कर गये हैं, उतनी सेवा थोड़े ही लोग कर सके हैं।

× × ×

यह बड़े सन्तोष की बात है कि वे हिन्दू विश्वविद्यालय में हिन्दी-विभाग के प्रधान रहने के दिनों में कतिपय युवकों को भी तैयार कर गये हैं। उनके शिष्यों में पण्डित नन्द-दुलारे वाजपेयी विशेष स्थान रखते हैं। उनके समय की 'सरस्वती' रोचक सामग्री से पूर्ण होती थी। 'सरस्वती' के आरम्भिक काल का कुछ कुछ हाल हमें भी अवगत है। 'सरस्वती' का प्रकाशन आरम्भ होने के समय हिन्दी में मासिक पत्र थे तो अवश्य, किन्तु उन सब का जीवन एक प्रकार की कृच्छ्र तपस्या से पूर्ण था। किन्तु 'इंडियन प्रेस' के संस्थापक स्वर्गीय बाबू चिन्तामणि घोष, बाबू श्याम-सुन्दरदास, बाबू गिरिजाकुमार (उर्फ पार्वतीनन्दन) तथा बाबू ठाकुरप्रसाद खत्री का सतत एवं अटूट परिश्रम भी भूलने की वस्तु नहीं है।

बाबू श्यामसुन्दरदास का परलोक-गमन उनके गुणों से परिचित जनों के लिए सचमुच मर्म-वेदना-कारक है।

१९४५

❀ ❀ ❀

गांधी जी और राज्य

श्री परिपूर्णानन्द वर्मा

बापू के महाप्रयाण पर उनके संबंध में हर प्रकार के अनोखे तथा हृदयस्पर्शी लेख प्रकाशित हुए। हमने उनके दर्शन, साहित्य तथा राजनीति की काफी चर्चा भी की। पर एक पहलू हम छोड़-सा गए। वह है गांधी की राज्य संबंधी दार्शनिकता।

जहाँ तक सिद्धांतों का संबंध है, अपने जीवन-काल में बापू को कोई विशिष्ट सफलता न मिली। उनकी बदौलत हमें स्वराज्य प्राप्त हुआ। राजा राममोहन राय के समय भारत की राज्यक्रान्ति का जो यज्ञ आरम्भ हुआ था, उसकी पूर्णाहुति गांधीजी ने दी। जिस सामाजिक सुधार

के लिए राममोहन राय ने हर तरह की यातनाएँ सहीं, वे सुधार भी गांधीजी के जीवन में ही पूरे हुए। पर जिस नई चीज को उन्होंने शुरू किया था, वह उनके जीवन में सफल न हो सकी, अहिंसा तथा सत्य ही उनका मूलमंत्र था। सत्याग्रह उनका अस्त्र था। अवश्य इन सिद्धान्तों की बदौलत भारत की गाड़ी काफी आगे बढ़ी पर इसके अलावा और भी कारण थे, जिससे हमको स्वराज्य मिला। सत्याग्रह सत्य तथा अहिंसा का मंत्र हमने सीखा भले ही, पर गांधीजी के सामने ही उनको बहुत अधूरी दशा में छोड़ दिया। बापू के मन को इससे गहरा क्लेश था पर वे पैगम्बर की तरह अपना सिद्धान्त एलान करते जाते थे। अगर हम न मानें तो उनका क्या दोष।

पर, यह सदैव से होता आया है कि संसार के दैवी सिद्धान्त उसके प्रतिपादक के जीवन-काल में जो कुछ पनप पाये हैं, वह केवल प्रतिपादक की आत्मशक्ति के कारण। बुद्ध के जीवन-काल में बौद्धमत जितना कम फैला था, यह इतिहास बतलाता है पर, नई तथा क्रान्तिकारी चीज़ होने पर भी बुद्ध की दैवी शक्ति या आत्मबल से ही वह उनके सामने फैल चली थी। फिर भी उसे फैलाने तथा समझाने के लिए एक निमित्त की, महान् आत्मा की आवश्यकता थी और वह निमित्त थे सम्राट अशोक। इसी प्रकार ईसा, मुहम्मद साहब या बहुत ही हाल के जमाने में नानकपंथ, कबीरपंथ आदि के लिए भी निमित्त आवश्यक थे और पैदा हुए। रामकृष्ण परमहंस को भी एक विवेकानन्द की जरूरत पड़ी।

गांधीजी की विशेषता

गांधीजी में न जाने कितना आत्मबल था कि अपने जीवन-काल में ही उन्होंने जितने अनुयायी प्राप्त कर लिए थे उतना और किसी महापुरुष ने नहीं। फिर भी, वे एक काम नहीं कर गए, जो अन्य महापुरुषों ने किया था। सुकरात एक प्लेटो छोड़ गए। मुहम्मद साहब उमर और अली को छोड़ गए। बुद्ध ने भिक्षु आनन्द को अपना काम सौंपा। नानक ने गुरु गोविन्दसिंह की भूमिका बना दी। कबीर का काम कमाल ने सँभाला। रामकृष्ण तो विवेकानन्द को तैयार ही कर गए। पर गांधी का उत्तराधिकारी कौन है? जवाहर, पटेल—किसे गिना जाए?

यही गांधी की विशेषता है। वे एक सिद्धान्त को लेकर उठे थे और वह सिद्धान्त ही रह गया और ऐसा सिद्धान्त रह गया, जिसके बारे में काफी तर्क-वितर्क चल रहा है। यही सिद्धान्त यदि उनकी देन है तो क्या यह चालू रहेगा?

गांधीवाद की महिमा

गांधीवाद की यही महिमा है कि वह संसार में एकाकी है, निराला है। इसी प्रकार उसका निराला प्रचारक वह बूढ़ा था और वही अपना उत्तराधिकारी रहेगा। जिस सिद्धान्त में भारतीय धर्मशास्त्र की तरह सर्वतोमुखी प्रतिभा हो, जो गोवध से लेकर राष्ट्र राज्य-प्रणाली तक की व्याख्या करता हो, वह सिद्धान्त एक के द्वारा नहीं, अनेक के द्वारा, अनेक दिशाओं में प्रतिपादित होकर केन्द्रीभूत होकर सफल होगा। गांधीवाद की दृढ़ता इसी में है कि वह किसी विशिष्ट समय की गति देखकर न तो बना है, न बिगड़ेगा। वह धीरे-धीरे ही पनपेगा। वह बहुत धीरे-धीरे ही आगे बढ़ेगा। गांधीवाद युगवाद है। अतः वह सौ-पचास वर्ष के लिए नहीं आया है। उसको प्रचारित होने के लिए एक युग लगेगा, तभी वह सब की समझ में आएगा। बड़े सिद्धान्त प्रचारकों द्वारा रूपरेखा में बदल जाते हैं। इसकी जीती-जागती मिसाल महाप्रभु ईसा के ही उपदेश हैं। संसार में सब कुछ अनर्थ हो रहा है और ईसाइयत बनी समझी जाती है। चीन के बौद्ध घोर हिंसावादी हैं। फिर भी वे बौद्ध बने हुए हैं। राजनैतिक दिशा में कार्लमार्क्स को लीजिए। लेनिन ने मार्क्स का जो सिद्धान्त समझा था, वह स्टालिन की समझ से भिन्न है। ट्राजकी तीसरी ही दिशा में थे। इसीलिए गांधीजी ने साफ कह दिया था कि सत्याग्रह का अर्थ "मैं ही समझता हूँ"। यह बड़ा ही अधिकारपूर्ण कथन है पर, गांधी ही ऐसी बात कह सकते थे। इसीलिए गांधीजी के लेखों, व्याख्यानों में एक अजीब विरोध तथा उलझन मालूम पड़ती थी। यह विरोध लिखनेवालों का दोष नहीं है, समझनेवाले का है। हम उनके विचारों की गहराई तक पहुँच नहीं पाते थे।

यह सत्य है कि इन पंक्तियों का लेखक गांधीजी के सिद्धान्तों से पूर्णतः सहमत होने का सौभाग्य नहीं रखता, यह सत्य है कि गांधीजी के अर्थशास्त्र में हमको दोष दीख पड़ता था, पर जहाँ तक व्यापक तथा मूलाधार सत्य का प्रश्न है, यदि हम भारतीय हैं तो उनसे असहमत हो ही

नहीं सकते। यह भी प्रकट है कि गांधीजी के अनोखे तथा महान् सिद्धान्त एक पीढ़ी में समझ में नहीं आ सकते। सृष्टि के विकास के लिए विष्णु ने २४ अवतार लिए। गांधी के महान् सिद्धान्त के लिए अभी बापू को संसार में पुनः आना पड़ेगा।

गांधी और राज्य

पर, गांधीजी के लिए इस शताब्दी में जितना करना था, वे कर चुके। उस काम के बारे में जितना सोचिए, समझने की आवश्यकता प्रतीत होती है। यह प्रजातंत्र का युग है। चारों ओर इस बात का प्रयत्न हो रहा है कि शान्ति रहे, युद्ध न हो। पर, तलवार और बन्दूक से ही यह प्रयास होता है कि सभ्यता जागती रहे। विश्व के इस हाहाकार का उपाय केवल गांधी ने बतलाया है। यदि किसी और ने इसे सुलझाने की चेष्टा की है तो कार्लमार्क्स ने। पर कार्लमार्क्स का दृष्टिकोण इतना भौतिक था कि वे उतनी गहराई में न पैठ सके।

पश्चिमी सभ्यता में राज्य का सिद्धान्त यूनान तथा रोम से आया है। यूनान ने जो राजनीति पैदा की, वह उसके नगरों की रचना से थी। यूनानी नगर का हर एक व्यक्ति व्यवस्थापक था—लेजिस्लेटर था। आमसभा सब कुछ करती थी। पर यह, आमसभा ही क्यों राज्य करती थी? इसका कारण पुराने पंडितों ने यह निकाला कि जनसमूह ने अपनी रक्षा के लिए शासन-प्रबंध का ठीका शासक को दे दिया। यह ठीका या साझा ही शासन का आधार है। यही "कांट्राक्ट" कहलाता है और फ्रेंच पंडित रूसो* ने इसी आधार पर प्रजातंत्रवाद का सिद्धान्त बनाया था। अस्तु, यूनान में आमसभा बदलती गई। सबकी सलाह के स्थान पर प्रतिनिधियों का चुनाव होने लगा। जब प्रतिनिधियों से भी हर एक बात पूछ कर करना कठिन हो गया तो प्रतिनिधियों का प्रतिनिधि शासक होने लगा। यही आजकल का मन्त्रिमण्डल है। सब है। पर शासक और शासित के बीच खाई न पटी। स्टुअर्ट मिल या बोजाके† चाहे जितना भी यह साबित करें कि असली प्रभुत्व या स्वामित्व जनता का है, पर बात यह रह ही जाती है कि कहीं पर शासक डिक्टेटर हो जाता है कहीं पर वह जनता के हितों के प्रतिकूल करते हुए भी जनता का प्रतिनिधि बना रहता है।

कार्लमार्क्स ने तथा उनसे अधिक गांधीजी ने उस मूल को ढूँढ़ निकाला, जिसके कारण हम भटक रहे हैं। ठीका या साझा तो ठीक रहा पर ठीका करनेवाला या साझा करनेवाला भी तो अपना महत्त्व रखता है। उन्होंने यह साफ कर दिया कि जिस जनसमूह के नाम पर सब कुछ होता है, पहले उस जनसमूह को इतना आत्मबल दो कि वह अपने को पहचाने, अपना सब कुछ समझ सके और तभी उसका "ठीका" मान्य होगा। वरना पुराने ढर्रे से चलने से काम न चलेगा। जनता-जनार्दन की सेवा करना जिसका व्रत हो वही शासक हो। गांधीजी ने आगे बढ़कर यह कहा कि जो जनता की भौतिक तथा आध्यात्मिक सेवा कर सके, वही शासन करे। इसी लिए वे जनता की मूल आवश्यकताओं को लेकर चलते थे। वर्गवाद तथा समाजवाद चाहे जितना भी करे, पर वह रोज की बढ़ती हुई जरूरियातों को कहाँ तक पूरी करके तब संतोष पैदा करेगा। जरूरत कभी पूरी नहीं होती। मांग कभी घटती नहीं। गांधीजी ने कहा कि जितना हो सके अपनी हर एक जरूरत अपने हाथ से पूरा कर लो। चर्खा चलाकर कपड़ा पहनो। गल्ला पैदा कर पेट भरो। स्वयं साफ-सुथरे रहकर अपनी चिकित्सा करो। वे यह भी करते थे कि रचनात्मक कार्य जो कांग्रेस-सेवक नहीं करता, वह कांग्रेस-सेवक नहीं। वह शासक नहीं हो सकता लेकिन कांग्रेस में वही जाए जो दया, प्रेम, अहिंसा तथा सत्य में विश्वास करता हो। जब इनमें विश्वास हो गया तो फिर और क्या बाकी रहा। जब इनके आधार पर समाज पनपेगा तो न युद्ध होगा, न पूंजीवादी-समाजवादी संघर्ष होगा और न मानवता एक दूसरे से शोषित होगी।

गांधीजी ने राज्य की एक नई व्याख्या कर दी। कार्लमार्क्स विश्व के किसान-मजदूर का संघ बनाना चाहते थे, हर एक की माँग पूरी करने के लिए। गांधीजी विश्व के हर एक प्राणी को प्रेमी मानव बनाना चाहते थे, उसके आत्मिक तथा भौतिक सुख के लिए। आज की

*Rosseau's Social Contract.

†John Stuart Mill & Bosanquet.

विनाशशील दुनिया कहाँ तक उनका सिद्धान्त अपना सकेगी, यह देखना है। और कहाँ तक यह सिद्धान्त दोष रहित है। यह भी देखना है। पर, इसमें कोई सन्देह नहीं कि यदि आज गांधीवाद का एक अंश भी हमारी राजनीति में आ जाए तो मानवता विनाश से बच सकती है।

१९४८

❀ ❀ ❀

सुभाष मानव, सुभाष महामानव

पण्डित माखनलाल चतुर्वेदी

जब तुम भारत से गये—,

उन दिनों लोग कहा करते थे कि तुम बीमार हो, घर से बाहर नहीं निकल सकते।

और तुम थे, कि घर क्या, देश से बाहर चले गये।

गरज यह कि रहस्य सोचा अरविन्द ने, रहस्य काव्य बनाकर लिखा रवीन्द्र ने, और रहस्य अवतरित हुआ तुम्हारे रूप में।

जब तुम युद्ध से लौटे—,

लोगों ने सोचा था, अब तुम अमरीका और इँगलैंड से घिर जाओगे,

तुम बन्दी होगे, तुम पर मुकदमा चलेगा, तुम्हें दण्ड दिया जायगा,

हिरोहितो, हिटलर, पेताँ और तुम—डबल मार्च में एक साथ थे सर्वनाश में, मित्रराष्ट्रों की सूलियों पर अलग-अलग तिथियों में भले होओ किन्तु भाग्य, परिणाम, दण्ड, और यात्रा—ये एक साथ होंगे!

किन्तु फिर तुम्हारा विमान चला, अपने सिपाहियों से बिदा लेकर, किसी अज्ञात लोक को।

लोगों ने कहा वह विमान गिर पड़ा, विमान टूट गया, तुम गिर गये, तुम अज्ञातलोक के यात्री, अनन्त लोक के यात्रापथी हो गये!

तुम्हारी मृत्यु पर कुछ के जी में काँटा चुभ गया, कुछ के जी से काँटा निकल गया!

किन्तु देश में दो दल अपने-अपने सबूत लेकर लड़ने नहीं लगे।

उन्होंने यह नहीं कहा कि "तू झूठा है, सुभाष जिन्दा है" या "तू झूठा है, सुभाष जिन्दा नहीं है।"

इस तरह वादी प्रतिवादी मौत पर झगड़े नहीं, माना, किन्तु तुम्हारी मौत पर देशवासियों ने विश्वास नहीं किया। वे सोचते रहे, और सोचते रहते हैं कि,—

"किसी दिन, किसी देश में, किसी वेश में, तुम जरूर मिलोगे।" किन्तु तुम तो रहस्य हो न? जीवन में, मरण में, तुम्हारा स्वभाव कैसे बदलेगा?

गीता के विश्वासी, भारतवासी, मरण पर नहीं, अवतरण पर विश्वास किये आये हैं; विश्वास किये जायँगे।

किन्तु एक बात सच है, भारत का भाग्य उलझे, भारत का भाग्य सुलझे। तुम अब उसके निर्माण के हिस्सेदार नहीं हो सकते।

तुम दुनिया से हटे या न हटे, विश्व-गति के परदे से हट गये हो। कैसे कठोर निर्णय हो रहे हैं? आँसुओं को हँसते, मृत्यु को मुस्कराते, और जगत् निर्माणों में भूकम्प आते देख रहा है।

तुम लोगों के मन पर हो, जीवन पर छाये हो, क्योंकि तुमने भारतीय जीवन को युद्ध के बीचोबीच "जीवित किया" है। तुम भारतीय विश्वासों पर हरिया रहे हो, क्योंकि स्वतन्त्रता मिलने के दिन वे तुम्हारे प्रयत्नों का मूल्य चुकाना चाहते थे। किन्तु तुम न थे। तुम पास न थे। "रहस्य" पर भी क्या किसी का कब्जा होता है? अब सहगल, ढिल्लन, शिन्दे, अबुलरहमान, शाहनवाज के होते हुए भी, यादें आकाश में तुम्हें खोजती हैं, पुकार की वाणी मानो कहीं से टकराकर लौट आती है। यादों में कोई दीखता है, किन्तु बाँहें खींचकर उसे हृदय से नहीं लगा पातीं। 'श्रद्धा' सँजोने की नियति आज्ञा नहीं देती—वह तुम्हें सामने लाकर खड़ा कर देती है। 'श्राद्ध' करने को भारतीय मन राजी

नहीं होता---वह मानता है कि तुम जहाँ कहीं होओ, हो अवश्य यहीं कहीं।

तुम रहस्य हो गये। इस देश के सन्त, वीर, योद्धा और बलिदानी प्रायः रहस्य होते आये हैं। वे अपमानों को अनन्त सामर्थ्य से अपनाते हैं, और वरदानों के समय रहस्य हो जाते हैं।

तुम बलि-पन्थी, तुम रक्त-क्रान्ति के होता, तुम सेनानी, तुम सिपहसालार! क्या सौन्दर्य था तुम्हारी बलि-मूर्ति में! मानो तरुणाई की तो---

अनब्याही हुलसी फिरें
ब्याही मींडें हाथ!

की दशा थी, तलवार लेकर तबियत पर आनेवालों की, अथवा तलवारवालों की तबियत पर बाग-बाग होनेवालों की!

तुम्हारे आस-पास, नहीं, तुम्हारे पास मानो बेदाग बहादुरी, अनदेखा-सा अनहोनापन बनकर, देखनेवालों को अचम्भे के जादू भरे उल्लास बाँटती रहती।

और बंगाल की धरती? वह तो मानो---

"नैनों के बँगले में उन्हें सैनों से बुला लेंगे
पलकों की चिक डाल पिया को पुतली पै सुला लेंगे"---

बिना कहे कहती रहती। अपनी कीमत अमरों से अधिक कूतनेवाला प्रेम बोलता नहीं है न!

बड़े महँगे मोलों की थी तुम्हारी यह मनमोहनी, मरणन्यौतनी मस्ती!

बंगाल के लाड़ले तुम! अपने आप क्रान्ति पथ पर नहीं आये। तुम्हें खोजा था मस्तकशीलों में देशबन्धु दास ने। प्यार करनेवाला और खोजनेवाला---मानो सब निहाल हो उठे। उन्होंने देखा कष्ट---सामने आने पर तुम अधिक कष्ट माँगते, और त्याग करने पर तुम और अधिक त्याग के लिए उत्तेजित होते। तुम कष्ट को जोड़ते, त्याग को गुणित करते। रहस्य मानो तुम्हारा स्वरूप ही नहीं, स्वभाव भी था।

तुम्हारी जीवन-यात्राएँ सदा विचित्र रहीं। तुम चले थे 'आई० सी० एस०' का इम्तहान देने, अपने ही भाइयों को गुलाम मानकर गुलाम बनाकर विदेशी हुकूमत करनेवालों की विचित्र जाति में मिलने, और पहुँच गये सी० आर० दास के क्रान्तिवादियों में, जहाँ अपने ही भाइयों को गुलाम बनानेवालों का शिकार खेला जाता था, और भाइयों को जन-देवता मानकर उनकी पूजा की जाती थी। मानो नर्क का टिकट लेकर, देश-सेवा के अग्नि-पथ के स्वर्ग में पहुँच गये। इसी तरह तुम प्रस्तुत थे देश-भक्तों के साथ किसी ब्रिटिश जेल में युद्ध-काल बिताने के लिए, और तुम पहुँच गये युद्ध के बीचोबीच, ब्रिटेन के शत्रुओं को मित्र बना; युद्ध की सेना के सिपहसालार और भारतीय स्वातंत्र्य के 'प्रथम वाइसराय' कहलाने। फिर मित्र-राष्ट्रों के जीतने पर, अपने सिपाहियों से बिदा ले कर तुम चले थे किसी सुरक्षित स्थान की ओर, जहाँ से तुम वज्र की शक्ति बनकर भारतीय राष्ट्र के शत्रुओं को मजा चखा सको---और विमान टूटने से पहुँच गये अनन्त के लोक में जहाँ देवता तुम पर पुष्प-वर्षा करें। गरज यह कि जीवन के यात्रा-पथ में तुम्हें 'मनचीते' से बड़ा 'प्रभुचीता' मिलता रहा।

जीवनपथ भी तुम्हारा संघर्षमय रहा।

देशबन्धु देवलोकवासी हुए, तब बंगाल का नेतृत्व तुम्हें प्राप्त न था। देशप्रिय सेनगुप्त से कठोर संघर्ष हुआ। ऐसा संघर्ष, जिसमें तुम्हें पछाड़ मिली।

कांग्रेस के अखिल भारतीय पथ में तुम्हारे सामने जवाहरलाल थे। क्रान्तिवादियों का दल, बंगाल का बल, और भारी हलचल के बाद भी, गांधीजी और मोतीलालजी के मिले बल के सामने तुम छोटे पड़ गये। तुम्हें पुनः कलकत्ता कांग्रेस में :१९२८: ठोकर मिली।

जब तुम स्विट्जरलैण्ड की रोगशय्या पर पड़े स्वतन्त्र भारत का स्वप्न-चित्र बना रहे थे, तब तुमने अपने देशवासियों को चेतावनी दी थी कि वे गांधी के नेतृत्व से दूर हट जायँ। किन्तु जब तुम लौटकर भारत आये, देशभक्त नारीमन, डाक्टर खरे और न जाने कौन-कौन गांधी-विरोधी, तुम्हें स्वयं नष्ट करने पड़े। और गांधीजी के आशीर्वादों से भरी हरिपुरा कांग्रेस के सभापतित्व की गादी---वह राष्ट्रपतित्व---तुमने स्वयं वल्लभभाई और गांधीवादियों के हाथों ग्रहण किया। इसमें भी कौन हारा? तुम या गांधी?

फिर डाक्टर पट्टाभि से लोहा लेकर, गांधी को पीछे ठेलकर, तुमने त्रिपुरी कांग्रेस की गद्दी जीती। कितनी कटुता, कितनी भर्त्सना, कितने इल्जामों के बीच! १०३ के ज्वर में भी, कौन इल्जाम तुम पर नहीं लगा? किन्तु तुम्हारी जीती हुई गद्दी पर, राज किसने किया? यहाँ भी

तुम्हारे सामने कठोर संघर्ष था। तुम्हें हारना पड़ा। कलकत्ता में तुमने कांग्रेस गादी छोड़ दी।

वह भी एक दिन था। तुमने सोचा, तुमने ठाना, तुमने शुरू किया कि कांग्रेस जैसी एक समानान्तर बल-शालिनी संस्था का निर्माण करोगे। और मेल किया श्री फजलुल् हक से, जो तुम्हारे बाद लीग के जहर से बंगाल को भूखा मारने और बंगाल को दंगों में भून डालने में ही सफल हुए।

किन्तु तुम, तुम गांधी के साथ जेल में बैठ कर माला जपने को तैयार न थे। तुम युद्ध को प्रभु द्वारा प्राप्त स्वर्ण-सन्धि समझते थे और भारतीय आजादी के लिए उसका उपयोग करने के लिए इतने निश्चित थे कि प्राण जायँ तो भी तुम उस अवसर को छोड़ने को तैयार नहीं थे। ऐसे निश्चय के लोगों के भाग्य में फूलों की शोभा कभी नहीं होती, कभी नहीं रही। उनके गले में पड़े फूलों के हार, विश्व के सुगंधायमान सम्मान की क्षणिकता के सिवा और क्या व्यक्त करते हैं ?

किन्तु तुम ब्रिटेन से समझौता करो? समुद्र लोटे में भरा जाय? तुम बद्ध-प्रतिज्ञ ब्रिटिश-शत्रु रहे। तुमने अपनी इस दृढ़ता को, कभी भी अवसरवादिता की चादर से नहीं ढँका। बड़े तुम्हारी पूजा के पात्र थे, तुम्हारा पथ भंग करने के अधिकारी नहीं। तरुण तुम्हारी सेना के सिपाही थे—माता पर कुर्बान करने की हवन सामग्री। तुम्हारे प्यार, दुलार, रोमान्स और चुम्बनों में से कुरबानी के यज्ञ-धूम की सुगन्ध आती थी और सिर उतारने के रक्तबिन्दु उनमें चू पड़ते थे।

पुलिस का कितना पहरा कलकत्ते में था उस समय? स्काटलैण्ड यार्ड के शिक्षाप्राप्त कितने पुलिस खिलाड़ी तुम्हारे दायें-बायें तुम पर निगहबानी करते थे? फिर तुम बीमार हुए तुम्हें दाढ़ी उग आई! और एकाएक तुम गायब!!

हिटलर का तुम्हें भारत का प्रथम वाइसराय बनाना, महीनों कोई खबर न पाकर भारतीयों की तुम्हारे मरण की कुशंका, और एकाएक तुम्हारा सेगाँव रेडियो से भारतीयों से बोलना! और वह आजाद हिन्द सेना, वह युद्ध, वह तैयारी! मानो महान् और मरण माँगते युग के तूफान के हाथों तुमने अपने आपको हँस हँस कर सौंप दिया।

और एक ब्रिटिश युद्ध को जन-युद्ध कहनेवाली देश-घातकता देश में कहने लगी "वह जापान का एजेंट हो गया"—वह देश-घातकता, जो खुद जापान के महान पड़ोसी के हाथों रोटियों और नारों पर बिक चुकी थी!

किन्तु तुम थे कि जमाने की छाती पर अपने सुनहले नाम को अपने ही हाथों मसलकर मिटा देने के मूल्य तक पर, अपने को संकटों में फेंक चुके थे, कि—"भारत तू आजाद हो जा!"

और आज? आज तो सब तुम्हारा गुण गाते हैं। तुम्हारा "जय-हिन्द" का नारा भारतीय नारा हो गया, और स्वर्गीय शरत् बोस से सरदार-श्री गले मिले, और उन्हें भारतीय मन्त्रि-मण्डल में जगह भी मिली। किन्तु तुम? भारतीय तरुणाई अपने में जब जब बल खोजेगी, तो तुम्हें पुकार उठेगी।

एक भारतवासी, सिर्फ एक भारतवासी ने, अपनी सब सम्पत्ति तुम्हारे नाम कर दी थी—वे थे सरदार पटेल के ज्येष्ठ भ्राता श्री विट्ठलभाई पटेल।

इतनी शक्ति कौन अपने में संचय करेगा?

यदि भारत को आजाद करना है तो सुभाष की ताकत अपने में रखनेवाला सिपाही, सिपहसालार, सेनानी ही उसे आजाद रख सकता है।

और यदि आज सुभाष किसी ओर से आ जाय? तो वह अपनी स्त्री और पुत्री के साथ महान् गर्व की वस्तु होगा। किन्तु वह पूजा पायेगा—प्रलय का चार्ज तो उसे किसी नौजवान ही को सौंपना होगा।

उसकी अनन्त असफलताएँ और मोद-भरी अगणित सफलताएँ भारत को सम्पूर्ण सफल बनाकर गौरवमयी हो गई हैं।

क्रियाशील स्वप्नदर्शी भक्त और साधक जब जब अपने संकल्पों पर समर्पित होकर संघर्षों पर उतरा है, तब तब उस व्यक्ति की असफलताएँ समाज और समूह की सफलता बनकर देशों के रक्त में लौटती आई हैं।

तुम अरविन्द के न हुए,
तुम गांधी के न हुए,

तुम सेनगुप्त के न हुए,
तुम जवाहर के न हुए,
तुम अपने न हुए,
तुम हुए केवल मातृभूमि के, भारत भूमि के!
तुम्हारी अवज्ञाओं पर अक्षत,
तुम्हारी सेवाओं पर पुष्प,
तुम्हारी सेनाओं पर दीपदान,
तुम्हारे निश्चयों पर जय-जयकार,
तुम्हारे बलिदानों पर आजाद
भारतवर्ष का अमित गर्व!

१९५५

❀ ❀ ❀

धर्म की साकार प्रतिमा परमहंस रामकृष्णदेव

श्रीरामधारीसिंह दिनकर

स्वामी दयानन्द से परमहंस रामकृष्ण की भेंट हुई थी! स्वामीजी स्वयं रामकृष्ण के पास नहीं गये थे, वे ही स्वामीजी के कलकत्ता पधारने पर उनसे मिलने आये थे। रामकृष्ण के मन पर इस भेंट का जो प्रभाव पड़ा, वह उन्हीं के शब्दों में इस प्रकार वर्णित है—"दयानन्द से भेंट करने गया। मुझे ऐसा दिखा कि उन्हें थोड़ी-बहुत शक्ति प्राप्त हो चुकी है। उनका वक्षस्थल सदैव आरक्त दिखायी पड़ता था। वे वैखरी अवस्था में थे। रात-दिन लगातार शास्त्रों की ही चर्चा किया करते थे। अपने व्याकरण-ज्ञान के बल पर उन्होंने अनेक शास्त्र-वाक्यों के अर्थ में उलट-फेर कर दिया है। 'मैं ऐसा करूँगा, मैं अपना मत स्थापित करूँगा'। ऐसा कहने में उनका अहंकार दिखायी देता है।[१]"

आर्य-समाज और ब्रह्मसमाज बड़े ही प्रबल सांस्कृतिक आन्दोलन थे, किन्तु, उनकी जो कमजोरियाँ थीं, वे रामकृष्ण को ठीक दिखायी पड़ीं। आर्यसमाज के प्रवर्तक स्वामी दयानन्द बालब्रह्मचारी, निरीह संन्यासी, प्रचंड तार्किक और उद्भट विद्वान् थे, किन्तु संतों की नम्रता और निरहंकार उनमें नहीं था। ब्रह्म-समाज में तार्किकता अधिक नहीं थी। भक्ति और उपासना का उसमें अच्छा प्रचार था। किन्तु ब्रह्मसमाजी लोग अपने को जितना भक्तिविह्वल दिखलाना चाहते थे, वस्तुतः उतनी भक्ति-विह्वलता उनमें थी नहीं।[२] ब्रह्मसमाजियों की भक्ति ज्ञान की नोक से उठायी हुई चीज थी। ब्रह्मसमाजियों का उद्देश्य सामाजिक सुधार था, किन्तु अखाड़ा उन्होंने धर्म का चुना था। असल में, ईसाइयों के मुख से अपने धर्म की निन्दा सुनते-सुनते वे लजा गये थे, किन्तु किसी प्रकार हिन्दुत्व की इज्जत ढँकने के लिए उन्होंने धर्म का एक साधन खड़ा कर लिया था और अपने धर्म पर अटल विश्वास नहीं रहने के कारण वे अधिकाधिक ईसाइयत की ओर ढुलके जा रहे थे। वस्तुतः उनका विश्वास हिन्दू-ईसाई का विश्वास था। ऐसे संशयग्रस्त लोगों में भक्ति की आकुलता उत्पन्न कहाँ से होती?

भारतवर्ष की परम्परा है कि यहाँ की जनता विद्या से आतंकित नहीं होती। पंडितों का वह सत्कार करती है, उनकी पूजा और भक्ति नहीं। हम तर्क से पराजित होने-वाली जाति नहीं हैं। हाँ, कोई चाहे तो नम्रता, त्याग और चरित्र से हमें जीत सकता है। धर्म-धर्म चिल्लाने से धर्म का अर्थ नहीं खुलता, न मोटी-मोटी पोथियाँ रच देने से धर्म किसी की समझ में आता है। दयानन्द और राममोहन राय तथा एनी बेसेंट के प्रचारों से यह तो सिद्ध हो गया कि हिन्दू-धर्म निन्दनीय नहीं, वरेण्य है, किन्तु, जनता तो यह देखना चाहती थी कि धर्म का जीता-जागता रूप कैसा होता है। धर्म का यह जीता-जागता रूप उसे परमहंस रामकृष्ण (सन् १८३६ से सन् १८८६ ई०) के आविर्भाव होने पर दिखाई पड़ा।

दयानन्द और राममोहन राय तथा केशवचन्द्र सेन से रामकृष्ण अनेक बातों में भिन्न थे। दयानन्द भारतीय परम्परा के उद्भट पंडित और ब्रह्मसमाजी नेता अँगरेजी

१. श्री रामकृष्ण लीलामृत—पहला भाग।
२. ब्रह्मसमाज से प्रेरित काव्य में भी भक्ति और रहस्यवाद का जो रूप उतरा, उसमें सहजता कम, बौद्धिकता अधिक थी। —लेखक

ढंग के विद्वान् थे। किन्तु रामकृष्ण बहुत-कुछ अपढ़ मनुष्य थे। दयानन्द, राममोहन और केशव सार्वजनिक-जीवन में इसलिए आये थे कि विधर्मियों की आलोचना से उन्हें चोट लगी थी, किन्तु रामकृष्ण को किसी भी धर्म-वालों के प्रति कोई आक्रोश नहीं था। दयानन्द, राममोहन और केशवचन्द्र संस्कृति के आन्दोलनकारी नेता थे, किन्तु रामकृष्ण को आन्दोलनों से कोई सरोकार नहीं था। वे अपनी बातें सुनाने को अपने आश्रम से बाहर नहीं गये और न उन्होंने हिन्दुओं से कभी यही कहा कि तुम्हारा धर्म खतरे में हैं।

पंडित और संत में वही भेद होता है जो हृदय और बुद्धि में है। बुद्धि जिसे लाख कोशिश करने पर भी नहीं समझ पाती, हृदय उसे अचानक देख लेता है। विद्या समुद्र की सतह पर उठती हुई तरंगों का नाम है, किन्तु अनुभूति समुद्र के अन्तराल में बसती है।[१] अनुभूति का एक कण मनों ज्ञान से कहीं अधिक मूल्यवान् है। परमहंस रामकृष्ण अनुभूतियों के आगार थे और उनके जीवन को देखकर एक बार फिर यह स्पष्ट हो गया कि जिसे अनुभूति प्राप्त हो जाती है उसके सामने ज्ञान का द्वार स्वयं उन्मुक्त हो जाता है तथा सारी विद्याएँ उसे स्वयमेव उपलब्ध हो जाती हैं।

तर्क और पांडित्य से धर्म प्रमाणित किया भी नहीं जा सकता, ठीक वैसे ही, जैसे तर्क और पांडित्य से ईश्वर की सत्ता सिद्ध नहीं की जा सकती है। विशेषतः हिन्दुत्व का मूलाधार विद्या और ज्ञान नहीं, सीधी अनुभूति है। हमारा धर्म पंडितों की नहीं, संतों और द्रष्टाओं की रचना है। हम फिलासफी को और कुछ नहीं कहके दर्शन कहते हैं क्योंकि हमारे दार्शनिक सत्य सोचे या समझे नहीं गये थे, प्रत्युत, ऋषियों ने आत्मा के चक्षु से उनका दर्शन किया था। वाद-विवाद, तर्क और पांडित्य अथवा बड़े-बड़े सिद्धान्तों और संगठनों से धर्म की सिद्धि नहीं होती। धर्म अनुभूति की वस्तु है और भारतवासी धर्मात्मा उसी को मानते आये हैं जिसने धर्म के महासत्यों को केवल जाना ही नहीं, प्रत्युत उनका अनुभव और साक्षात्कार किया है।

रामकृष्ण के आगमन से धर्म की यही अनुभूति प्रत्यक्ष हुई। उन्होंने अपने जीवन से यह बतला दिया कि धार्मिक सत्य केवल बौद्धिक अनुमान की वस्तु नहीं हैं, वे प्रत्यक्ष अनुभव के विषय हैं और उनके सामने संसार की सारी तृष्णाएँ, सारे सुख-भोग तृणवत् नगण्य हैं।

जब आस्तिक और नास्तिक हिन्दू, ईसाई और मुसलमान आपस में इस प्रश्न पर लड़ रहे थे कि किसका धर्म ठीक है और किसका नहीं, तब परमहंस रामकृष्ण ने सभी धर्मों के मूल तत्त्व को अपने जीवन में साकार करके, मानों, सारे विश्व को यह सन्देश दिया कि "धर्म को शास्त्रार्थ का विषय मत बनाओ। हो सके तो उसकी सीधी अनुभूति के लिए प्रयास करो। सभी धर्म एक ही ईश्वर की ओर ले जानेवाले अनेक मार्ग हैं।" और जो उनका उपदेश था उसे उन्होंने अपने जीवन में उतारा। उन्होंने हिन्दुत्व के सभी मार्गों की साधना की। यही नहीं, वे कुछ दिन सच्चे मुसलमान बनकर इस्लाम की भी साधना करते रहे और कुछ काल तक उन्होंने ईसाइयत का भी अभ्यास किया था। भारतवर्ष की धार्मिक समस्या का जो समाधान रामकृष्ण ने दिया है, उससे बड़ा और अधिक उपयोगी समाधान और कोई नहीं हो सकता। क्रम-क्रम से वैष्णव, शैव, शाक्त, तांत्रिक, अद्वैतवादी, मुसलमान और ईसाई बनकर परमहंस रामकृष्ण ने यह सिद्ध कर दिखाया कि धर्म के बाहरी रूप तो केवल बाहरी रूप हैं। उनसे मूलतत्त्व में कोई फर्क नहीं पड़ता है। साधन और मार्ग अनेक हैं। उनमें से मनुष्य किसी को भी चुन सकता है। प्रतिष्ठा मार्ग के कारण नहीं, अनुभूति के कारण होती है। जब तक तुम अनुभूति की उँचाई पर हो, तब तक यह सोचना व्यर्थ है कि तुम हिन्दू हो या मुसलमान।

परमहंस रामकृष्ण उस उँचाई के मनुष्य थे जहाँ से सभी धर्म, सत्य और सब के सब समान दीखते हैं, जहाँ विवाद और शास्त्रार्थ की आवाज नहीं पहुँचती, जहाँ धर्म अपनी राजनीतिक एवं सामाजिक गंध को छोड़कर केवल धर्म के रूप में अवस्थित रहता है। आजीवन वे बालकों के समान सरल और निश्छल रहे। आजीवन वे उस मस्ती में डूबे रहे जिसके दो-एक छींटों से ही जन्म-जन्म की तृष्णा शान्त हो जाती है। आनन्द उनका धर्म, अतीन्द्रिय रूप का

---

[१]अपढ़ अफगानियों की प्रशंसा करते हुए मुस्लिम कवि इकबाल ने कहा है:—

तेरी बेइल्मी ने रख ली बेइल्मों की लाज,
आलिम-फाजिल बेच रहे हैं अपना दीन-ईमान।

दर्शन उनकी पूजा और विरह उनका जीवन था। उनका चरित ऐसे महापुरुष का चरित है जो जीवन के अन्तिम सत्य एवं अतीन्द्रिय वास्तविकता के उत्स के आमने-सामने खड़ा होता है। उनके समकालीन अन्य सुधारक और सन्त पृथ्वी के वासी थे, और पृथ्वी से ही वे ऊपर की ओर उठे थे। किन्तु, रामकृष्ण दैवी अवतार की भाँति इस प्रकार आये कि मानों पृथ्वी पर कोई स्वर्ग की किरण भटक-कर आ गई हो। दृश्य की ओर से चलकर दयानन्द, केशव-चन्द्र और थियोसाफिस्ट लोगों ने जिस सत्य की ओर संकेत किया, अदृश्य की ओर से आकर परमहंस रामकृष्ण ने उस सत्य को अपने ही जीवन में साकार कर दिया। भारतीय जनता की पाँच हजार वर्ष पुरानी धर्मसाधना-रूपी लता पर रामकृष्ण सबसे नवीन पुष्प बनकर चमके और उन्हें देखकर भारतीय जनता को फिर से यह विश्वास हो गया कि भारत में धर्म की अनुभूति जगानेवाले जिन अनंत ऋषियों और सन्तों की कथाएँ सुनी जाती हैं, वे झूठ नहीं हैं।

रामकृष्ण में आकर ही देवी-देवता, पौराणिक आचार और अनुष्ठान, धर्म की विविध साधनाएँ एवं जनता के वे अनेक धार्मिक विश्वास भी सत्य हुए जिनकी ओर से बोलने का साहस किसी भी सुधारक को नहीं हुआ था। अन्य सभी सुधारक नवीन भारत के प्रतिनिधि थे, यद्यपि 'सत्य' उन्होंने प्राचीन भारत का ही अपनाया था; किन्तु राम-कृष्ण के रूप में भारत की सनातन परम्परा ही देह धर-कर खड़ी हो गई थी।

रामकृष्ण न तो अँगरेजी जानते थे न वे संस्कृत के ही ज्ञाता थे। न वे सभाओं में भाषण देते थे, न अखबारों में वक्तव्य। उनकी सारी पूँजी उनकी सरलता और उनका सारा धन महाकाली का स्मरण नाम मात्र था। दक्षिणेश्वर की कुटी में एक चौकी पर बैठे-बैठे वे उस धर्म का आख्यान करते थे जिसका आदि छोर अतीत की गहराइयों में डूबा हुआ है और जिसका अन्तिम छोर भविष्य के गह्वर की ओर फैल रहा है। घर बैठे उन्हें गुरु पर गुरु मिलते गये। अद्वैत साधना उन्होंने महात्मा तोता-पुरी से ली जो स्वयं उनकी कुटी में आ गये थे। तंत्र-साधना उन्होंने एक भैरवी से पायी जो स्वयं घूमते-फिरते दक्षिणेश्वर तक जा पहुँची थी। इसी प्रकार इस्लामी-साधना के उनके गुरु कोई गोविन्दराय थे जो हिन्दू से मुसलमान हो गये थे और ईसाइयत की साधना उन्होंने शंभुचरण मल्लिक के साथ की थी जो ईसाई धर्म-ग्रन्थों के अच्छे जानकार थे। किन्तु सभी साधनाओं में रमकर धर्म के गूढ़ रहस्यों की छानबीन करते हुए भी काली के चरणों में उनका विश्वास अचल रहा। जैसे अबोध बालक स्वयं अपनी चिन्ता नहीं करता उसी प्रकार रामकृष्ण अपनी कोई फ़िक्र नहीं करते थे। जैसे बालक प्रत्येक वस्तु की याचना अपनी माँ से करता है, वैसे ही रामकृष्ण भी हर चीज काली से माँगते थे और हर काम उनकी आज्ञा लेकर करते थे। यह नवयुग के मनुष्यों के सामने पोंगा-पंथी कहानी-सी लगती है। किन्तु यह लिखित इतिहास की घटना है। स्वयं तोतापुरी जब दक्षिणेश्वर आये तब रामकृष्ण में कुछ अलभ्य लक्षण देखकर उन्होंने सहसा यह कहा कि क्या तू अद्वैत की साधना करेगा? रामकृष्ण बोले, "मैं कुछ नहीं जानता। माता से पूछकर अभी आता हूँ। यदि उन्होंने आज्ञा दी तो अवश्य करूँगा।" तोतापुरी ने समझा, इसकी सचमुच कोई मा होगी। किन्तु रामकृष्ण जब मन्दिर में जाकर लौट आये और कहा कि माता की आज्ञा है, तब तोतापुरी को यह देखकर आश्चर्य हुआ कि कोरी प्रतिमा में इसकी ऐसी अटल आस्था है।

हिन्दू धर्म में जो गहराई और माधुर्य है, परमहंस राम-कृष्ण उसकी प्रतिमा थे। उनकी इन्द्रियाँ पूर्णरूप से उनके बस में थीं। रक्त और मांस के तकाजों का उन पर कोई असर न था। सिर से पाँव तक, वे आत्मा की ज्योति से परिपूर्ण थे। आनन्द, पवित्रता और पुण्य की प्रभा उन्हें घेरे रहती थी। वे दिन-रात परमार्थ-चिन्तन में निरत रहते थे। सांसारिक सुख, समृद्धि, यहाँ तक कि सुयश का भी उनके सामने कोई अस्तित्व नहीं था।

साधना करते-करते शरीर को उन्होंने इतना शुद्ध कर लिया था कि वह ईश्वरत्व का निर्मल यंत्र हो गया था और सांसारिकता के स्पर्श-मात्र से उसमें विचित्र प्रतिक्रियाएँ उत्पन्न होने लगती थीं। रुपये, पैसे, सोने-चाँदी आदि का स्पर्श वे सह नहीं सकते थे। और यह कोई बहाने-बाजी का ढोंग नहीं था।

द्रव्य की यह वितृष्णा उनमें बढ़ती ही गयी। अन्त समय तो ऐसा हो गया कि हाथ में कपड़ा लपेटे बिना वे काँसे के बरतन को भी नहीं छू सकते थे। निदान, उनका खानपान मिट्टी के ही बरतनों में चलने लगा था।

कामिनी और कांचन के विषय में किसकी क्या दृष्टि है तथा इनके आकर्षण से कौन कहाँ तक बचता है, यही वह कसौटी है जिस पर भारतीय महापुरुषों की जाँच होती आयी है। रामकृष्ण इस कसौटी पर खरे उतरे। उन्होंने पत्नी को अपने साथ रहने दिया, उन्हें अपनी साधना के पथ पर आगे बढ़ाया, इससे यह भी प्रकट होता है कि नारियों के प्रति उनके मन में कोई घृणा या विद्वेष नहीं था।

रामकृष्ण के अद्भुत गुणों से आकृष्ट होकर तत्कालीन बड़े-बड़े तार्किक और विद्वान् उन्हें घेरे रहते थे। इनमें ऐसे नवयुवक भी थे जो नास्तिक थे, जो शंकालु थे, जो साधु-सन्तों के चमत्कारों को ढोंग समझते थे। किन्तु रामकृष्ण के सामने शंकाओं के उठने या टिकने का सवाल ही नहीं था। न तो वे चमत्कार दिखाकर लोगों को प्रभावित करते थे, न किसी से आस्तिकता-नास्तिकता को लेकर विवाद। उनका जीवन उन्मुक्त ग्रन्थ था और धर्म के लक्षण वे मुख से नहीं कहकर अपने आचरणों से बताते थे। फिर आँखों देखी बात पर शंका होती क्यों?

वे प्रायः अपढ़ मनुष्य थे, किन्तु साधना के कारण वे उस मूल उत्स पर पहुँचे हुए थे जहाँ से सभी ज्ञान उठकर ऊपर आते हैं, जहाँ से दर्शनों की उत्पत्ति और धर्मों का जन्म होता है। इसीलिए उनके उपदेश, विद्वान् और अविद्वान्, सभी के लिए ग्राह्य हैं, वे सबकी समझ में आते हैं एवं जिसमें उड़ने की जितनी शक्ति है वह उन्हें लेकर उतनी दूर तक उड़ सकता है। उनके वचनामृत की धारा जब फूट पड़ती थी तब बड़े से बड़े तार्किक अपने आप में खोकर मूक हो जाते थे। केशवचन्द्र सेन से एक बार रामकृष्ण ने कहा, "केशव! तू अपनी वक्तृता के द्वारा सभी को हिला देता है, मुझे भी तो कुछ बता।" केशवचन्द्र इस पर नम्रता से बोले, "मैं क्या लोहार की दूकान में सुई बेचने आऊँ? आप ही कहते जाइए। मैं सुनता हूँ। आपके ही श्रीमुख की दो-चार बातें मैं लोगों को बताता हूँ जिन्हें सुनकर वे गद्गद हो जाते हैं। बस, यही मैं कहता हूँ।"

उनके विषय-प्रतिपादन की शैली वही थी जिसका आश्रय भारत के प्राचीन ऋषियों तथा पार्श्वनाथ, बुद्ध और महावीर ने लिया तथा जो परम्परा से भारतीय संतों के उपदेश की पद्धति रही है। वे तर्कों का सहारा कम लेते थे, जो कुछ समझाना होता उसे उपमाओं और दृष्टान्तों से समझाते थे। संत सुनी-समझी बातों का आख्यान नहीं करते, वे तो आँखों देखी बातें करते हैं, अपनी अनुभूतियों का निचोड़ दूसरों के हृदय में उतारते हैं।

देह और आत्मा दो भिन्न वस्तुएँ हैं, इस सिद्धान्त को समझाते हुए उन्होंने कहा है, "कामिनी-कांचन की आसक्ति यदि पूर्ण रूप से नष्ट हो जाय तो देह अलग है और आत्मा अलग है, यह स्पष्ट रूप से दीखने लगता है। नारियल का पानी सूख जाने पर जैसे उसके भीतर का खोपरा (गरी) नरेरी से खुलकर अलग हो जाता है, खोपरा और नरेरी दोनों अलग-अलग दीखने लगते हैं (वैसे), या जैसे म्यान के भीतर रखी हुई तलवार के विषय में कह सकते हैं कि म्यान और तलवार दोनों भिन्न चीजें हैं, वैसे ही देह और आत्मा के बारे में जानो।"

प्रतिमा-पूजन का भी ईश्वराराधना में वास्तविक महत्त्व है, इस विचार को समझाने के लिए वे कहते, "जैसे वकील को देखते ही अदालत की याद आती है, उसी तरह प्रतिमा पर, से ईश्वर की याद आती है।"

"माया ईश्वर की शक्ति है, वह ईश्वर में ही वास करती है, तब क्या ईश्वर भी हमारे समान ही मायाबद्ध है?" इस गुत्थी को सुलझाने के लिए वे कहते, "अरे, नहीं रे भाई! वैसा नहीं है।.... यही देखो न। सर्प के मुँह में सदा विष रहता है, उसी मुँह से वह हर दम खाता-पीता है, पर वह स्वयं उस विष से नहीं मरता।"

मनुष्य-मनुष्य में कोई भेद नहीं है, इस शिक्षा को समझाने का उनका ढंग यह था कि "मनुष्य मानों केवल तकिये के गिलाफ हैं। गिलाफ जैसे भिन्न-भिन्न रंग और आकार के होते हैं, वैसे ही मनुष्य भी कोई कुरूप, कोई साधु, कोई दुष्ट होता है। बस, इतना ही अन्तर है। पर जैसे सभी गिलाफ में एक ही पदार्थ—कपास—भरा रहता है, वैसे ही सभी मनुष्यों में वही एक सच्चिदानन्द भरा हुआ है।"

ईश्वराराधन का व्यावहारिक भाग बताते हुए वे कहते, "जब तुम काम करते हो तो एक हाथ से काम करो और दूसरे हाथ से भगवान् के पाँव पकड़े रहो। जब काम समाप्त हो जाय तो भगवान् के चरणों को दोनों हाथों से पकड़ लो।" संकल्प-शुद्धि के लिए उनका उपदेश था, "अभागा मनुष्य ही यह मानता है कि मैं पापी हूँ। ऐसा सोचते-सोचते वह पापी हो भी जाता है।"

तर्कों से वे बहुत घबराते थे। कहते, "शास्त्रार्थ को मैं नापसन्द करता हूँ। ईश्वर शास्त्रार्थ की शक्ति से परे है। मुझे तो प्रत्यक्ष दीखता है कि जो कुछ है वह ईश्वरमय है। फिर तर्कों से क्या फायदा? बगीचों में तुम आम खाने जाते हो, न कि पेड़ों के पत्ते गिनने। फिर मूर्ति-पूजा, पुनर्जन्म और अवतारवाद को लेकर यह विवाद क्यों चलता है?"

बुद्धि का तो अविश्वास वे करते ही थे, सहज ज्ञान पर भी उनकी अविचल श्रद्धा नहीं थी। सहज ज्ञान के द्वारा बुद्धि की सीमा का अतिक्रमण किया जाता है, किन्तु बुद्धि के परे की अनुभूतिवाली भूमि में सहज ज्ञान की भी आवश्यकता नहीं रहती। तब तो ईश्वरीय कृपा का ही एकमात्र प्रकाश बच जाता है। इसलिए, वे कहा करते थे कि पाँव में एक काँटा गड़ जाय तो उसे दूसरे काँटे से निकालना होता है। किन्तु काँटे के निकल जाने पर तो दोनों काँटों को फेंक ही देना चाहिए।

परिपक्व मनुष्य जाति-भेद को नहीं मानता, यह समझाने को रामकृष्ण कहा करते थे कि ताड़ और खजूर को देखो न! आरंभ में कितने पत्ते लिये रहते हैं। किन्तु, उनके खूब बढ़ जाने पर क्या होता है? व्यर्थ के सारे बोझ झड़ जाते हैं और कुछ थोड़े से ही पत्ते रह जाते हैं।

एक बार ईश्वरचन्द्र विद्यासागर की प्रशंसा करते हुए बोले, "पक्का विद्वान् कभी भी अहंकार नहीं दिखाता। आलू सिद्ध होने पर नर्म हो जाता है।"

ऐसा था वह मनुष्य जिसने भाषण और वक्तव्य दिये बिना तथा सभा-सम्मेलनों में शास्त्रार्थ किये बिना केवल अपने आचरणों और अपनी अनुभूतियों से यह सिद्ध कर दिखाया कि हिन्दुत्व का केवल वेद-उपनिषद् वाला ही नहीं, बल्कि वह रूप भी सत्य है जिसका आख्यान पुराणों एवं संतों की जीवनियों में मिलता है। यह भी ध्यान देने की बात है कि रामकृष्ण के भीतर से हिन्दुत्व ने अपनी रक्षा अन्य धर्मों को पछाड़ कर नहीं, प्रत्युत उन्हें अपना बनाकर की। हिन्दुत्व, इस्लाम और ईसाइयत पर रामकृष्ण की श्रद्धा एक समान थी, क्योंकि बारी-बारी से सबकी साधना करके उन्होंने एक ही सत्य का साक्षात्कार किया था।

रामकृष्ण का नाम उनके जीवन-काल में भी दूर-दूर तक पहुँचा था। किन्तु उनके देहान्त के बाद तो उनके उपदेशों को स्वामी विवेकानन्द ने इस प्रकार फैलाया कि संसार के कोने-कोने में उनका नाम गूँज गया। उनकी जीवनी मैक्समूलर ने लिखी थी, फिर उनका जीवन-चरित रोम्याँ रोलाँ ने प्रकाशित किया। गांधीजी का वचन है कि रामकृष्ण की जीवनी व्यवहार में आये हुए जीवित धर्म की कहानी है।

१९५५

❀ ❀ ❀

संस्कृत ग्रन्थों में गुरुत्वाकर्षण सिद्धान्त

महामहोपाध्याय पण्डित गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी

आजकल प्रचलित विज्ञान शास्त्र में गुरुत्वाकर्षण सिद्धान्त का बहुत महत्त्व है। वर्तमान विज्ञान-प्रासाद का यह आधारस्तम्भ है, इस कथन में भी कोई अत्युक्ति न होगी। इस विज्ञान का आविष्कर्ता न्यूटन नाम का पाश्चात्य महाविद्वान् माना जाता है। पाश्चात्य देशों में यह प्रसिद्ध है कि न्यूटन ने ही गुरुत्वाकर्षण सिद्धान्त का आविष्कार किया था। पाश्चात्य देशों में इस विज्ञान का प्रथम आविष्कार न्यूटन ने ही किया है, यह मन्तव्य सत्य है; किन्तु भारतीय विद्वान् तो बहुत पहले से ही इस सिद्धान्त की जानकारी रखते थे। यह उनके ग्रंथों से प्रस्फुट हो जाता है। सब वाङ्मय के आदिभूत वेदों में ही हम इसकी स्पष्ट चर्चा देखते हैं।

तैत्तिरीय आरण्यक (१। ८। ५। ६) में बड़ी रोचक प्रक्रिया से इस सिद्धान्त का स्पष्टीकरण है।

"अनवर्णे इमे भूमी इयञ्चासौ च रोदसी। किं स्विदत्रान्तराभूतं येनमे विधृते उभे। विष्णुना विधृते भूमी

इति वत्सस्य वेदना। इरावती धेनुमतीहि भूतं सूयवसिनी मनुषेदशस्याव्यस्तम्ना रोदसी विष्णवेते दाधर्थपृथिवीमभितो मयूखैः" (तैत्तिरीयारण्यक १। ८। ५।६)।

पहले प्रश्न उठाया गया है कि यह हमारी भूमि और सूर्यमण्डलरूप द्युलोक नाम की भूमि, ये दोनों ही भूमि बड़ी सुन्दर सुनहली हैं। इन दोनों को पकड़नेवाली इनके बीच में कौन-सी धुरी लगी हुई है जो इनको एक नियत अन्तर पर ठहरा रही है। अर्थात् इन दोनों का परस्पर सम्बन्ध अवश्य है, तभी तो ये नियत अन्तर पर ठहरी हुई हैं। उस सम्बन्ध का सूत्र क्या है ? यहाँ यह स्मरण रखना चाहिये कि "भूर्भुवः स्वः महः जनः तपः सत्यं" नाम के व्याहृतिरूप सात लोक का, जो आर्यशास्त्रों में सुप्रसिद्ध हैं, तीन त्रिलोकी के रूप में वर्णन करना वेद की परिभाषा है। यह हमारी पृथ्वी "भू" है, सूर्यमण्डल "स्वः" है, "स्वः" अर्थात् स्वर्ग है।

इनके बीच का अन्तरिक्ष शून्य स्थान का आकाश "भुवः" कहा जाता है जिसमें चन्द्रमा अपनी कक्षा पर घूमता है, यह एक त्रिलोकी हुई। इस भूमि और स्वर्ग के जोड़े का नाम वेद में "रोदसी" यह द्विवचनान्त पद है। आगे दूसरी त्रिलोकी में सूर्यमण्डल को पृथ्वी स्थान में रखा जाता है। इससे ऊपर का परमेष्ठि मण्डल जो "जनः" शब्द से कहा गया है, वह स्वर्ग स्थान में माना गया। बीच का "महः" नाम का शून्य स्थान, जिसमें वरुण, वृहस्पति आदि बड़े बड़े ग्रह घूमते हैं, वह अन्तरिक्ष है। यह हुई दूसरी त्रिलोकी। इसे वेद की परिभाषा में "क्रन्दसी" इस द्विवचनान्त पद से बताया जाता है।

आगे परमेष्ठि मण्डल को पृथ्वी स्थान में माना जाय तो उससे आगे का "सत्य" पद से कहा जानेवाला स्वयम्भू-मण्डल स्वर्ग स्थान में ठहरेगा, और दोनों के बीच का "तपः" लोक, जो विद्युत् का स्थान माना गया है, वह अन्तरिक्ष होगा। यह तीसरी त्रिलोकी है। इसका "संयती" द्विवचनान्त पद से अभिधान है।

यों सात लोकों में तीन पृथ्वी और तीन स्वर्ग (द्यु) व तीन अन्तरिक्षों की कल्पना होती है। पहली त्रिलोकी का जो स्वर्ग है, वह दूसरी त्रिलोकी में भूमि स्थान में रखा गया, और दूसरी त्रिलोकी का स्वर्ग, तीसरी त्रिलोकी के भूमि स्थान में आया।

इस प्रकार इन दो मण्डलों की—सूर्यमण्डल और परमेष्ठि मण्डल की—दो बार गणना होने से सात के नौ हो जाते हैं। इसी आधार पर यहाँ सूर्यमण्डल को भी एक पृथ्वी ही कहा गया और हमारी पृथ्वी के उस पृथ्वी से सम्बन्ध रखने का बीच का सम्बन्ध-सूत्र पूछा गया। इसका उत्तर देते हैं कि इन दोनों को नियत अन्तर पर धारण करने-वाला विष्णु है। विष्णुपद का अर्थ भगवान् परमात्मा सुप्रसिद्ध है, किन्तु एक देवता-विशेष के लिए भी इस शब्द का प्रयोग होता है। यह वत्स ऋषि का ज्ञान या आविष्कार है। यहाँ विष्णु शब्द का अर्थ भी वैदिक परिभाषा से ही समझना होगा। जो जो मण्डल या लोक हैं उनमें भिन्न-भिन्न प्रकार की प्राणशक्ति व्याप्त रहती है। वही उन मण्डलों को स्थिर रखती है। उस प्राणशक्ति के निकल जाने पर प्रत्येक पदार्थ निर्जीव व निष्प्राण हो जाता है और टूट-फूट जाता है या बिखर जाता है। भिन्न-भिन्न मण्डलों की इस प्राणशक्ति के भी परिचयार्थ भिन्न-भिन्न नाम वेद व पुराणों में माने गये हैं। हमारी भूमि के प्राण का नाम "अग्नि" है, तथा सूर्यमण्डल के प्राण का नाम "आदित्य"। यह प्राणशक्ति भी परिवर्तित होती रहती है तथा भिन्न-भिन्न रूपों में अनेक कार्य करती है। उन परिवर्तनों व रूपों के परिचयार्थ उनके अवान्तर भेदों का भी नामकरण है। पृथ्वी के प्राण के आठ भेद मानकर उन्हें आठ वसु कहा गया है। और "ध्रुव धर" आदि आठ नामों से उनका परिचय दिया जाता है। इसी प्रकार सूर्यमण्डल के प्राण के बारह भेदों को आदित्य कहकर उनका भी भिन्न-भिन्न नाम से वेदों और पुराणों में परिचय है। उन्हीं बारह में एक विष्णु-नाम का "आदित्य" है। उसी विष्णु का काम यहाँ पृथ्वी और सूर्यमण्डल का नियत समानान्तर पर रखना बताया गया। इससे स्पष्ट सिद्ध हो गया कि सूर्यमण्डल की जो एक विष्णु नाम की प्राणशक्ति है, वही आकर्षणसूत्र है और वह इन दोनों मण्डलों को नियत समानान्तर पर रखती और घुमाती है। उस शक्ति का सूर्यमण्डलस्थ विष्णु-नाम से—

"ध्येयः सदा सवित्रीमण्डलमध्यवर्ती
नारायणः सरसिजासनसन्निविष्टः"

इत्यादि रूप से उपासक लोग ध्यान किया करते हैं। यहाँ पाठक देखेंगे कि वर्तमान पाश्चात्य विज्ञान जहाँ पृथ्वी पर सूर्य का आकर्षण मान कर ही तृप्त हो जाता है, वहाँ

हमारा वैदिक विज्ञान सूर्यमण्डल की उस विशेष शक्ति का भी परिचय देता है, जो आकर्षण कर रही है। "आरण्यक" इस सिद्धान्त में "ऋग्वेद" की एक ऋचा का भी उद्धरण देता है—

"ऐरावति धेनुमति इत्यादि।"

यह ऋचा ऋग्वेद संहिता के मण्डल ७ सूक्त ९९ की है। ऋचाओं की प्रक्रिया है कि वे देवताओं की स्तुति करती हुई उस स्तुति में ही उन देवताओं का विज्ञान कहा करती हैं। उसीके अनुसार यह ऋचा भी विष्णु की स्तुति करती है कि 'हे विष्णु! तुमने प्रभूत जल और रसवाले, हरे भरे अन्न और तृणों से परिपूर्ण, प्राणियों को सब प्रकार की शक्ति देनेवाली विशेषता से, मनुष्यों के हितकारक इन दोनों लोकों को (पृथ्वी और स्वर्ग को) पकड़कर रखा है, और अपनी किरणों से आप इस पृथ्वी को धारण किये है।' इस ऋचा में भी किरणों से पृथ्वी का धारण बताकर आकर्षण विज्ञान प्रस्फुट किया है।

विष्णु नाम आदित्य का है—यह पूर्व कह चुके हैं। इसके अतिरिक्त एक मण्डल के १६४ सूक्त की १०वीं "तिस्रो मातृस्त्रीन् पितृन्" इत्यादि ऋचा में भी आदित्य का मातृस्थानीय तीन भूमि और पितृस्थानीय तीन द्युमण्डलों का धारण करना बताया गया है।

तीन भूमि और तीन द्यु कौन से हैं? यह पूर्व में स्पष्ट कर चुके हैं। सूर्यमण्डलस्थित आदित्यशक्ति ही अपने से ऊपर के और नीचे के सब लोकों को धारण करती है। वही आकर्षण का एक केन्द्र है। यह सिद्धान्त कई ऋचाओं में स्पष्ट किया गया है।

वेद के अतिरिक्त व्याकरण महाभाष्य में भी "स्थानेऽन्तरतमः" सूत्र पर आकर्षण विज्ञान की चर्चा है। वहाँ बताया गया है कि मिट्टी का ढेला आदि पृथ्वी की वस्तु है। यदि आकाश में उछाली जाँय तो वे न आगे ऊपर को बढ़ेंगी, न तिरछी जायेंगी, किन्तु वे पृथ्वी का अंश हैं इसलिए सम्बन्ध सूत्र के कारण पृथ्वी पर ही लौट आवेंगी। धूम, सूक्ष्म जल का अंश है और सूक्ष्म जल आकाश में व्याप्त रहता है इसलिए अंशांशी भाव के आकर्षण से धुआँ आकाश में ही फैलता है। इसी प्रकार दीपक का प्रकाश सूर्य का एक अंश है। वह सूर्य की ओर ही ऊपर को चलता है, नीचे या तिरछा कभी नहीं जाता इत्यादि।

फिर भी यह सन्देह रहे कि इन स्थानों में आकर्षण का स्पष्ट नाम नहीं आया तो आकर्षण के स्पष्ट नाम का निर्देश भी हम बताते हैं। भास्कराचार्य-विरचित ज्योतिष के "सिद्धान्तशिरोमणि" ग्रन्थ में विचार उठा है कि मिट्टी का छोटा-सा ढेला भी निराधार नहीं ठहर सकता, नीचे गिर जाता है तो इतनी बड़ी पृथ्वी आकाश में निराधार कैसे ठहरी हुई है—यह गिर क्यों नहीं जाती? इस प्रश्न पर बौद्ध सम्प्रदाय के ज्योतिषियों ने ऐसा मान लिया था कि पृथ्वी बराबर हजारों योजन प्रतिक्षण नीचे गिर रही है, किन्तु हम लोग भी उसके साथ बँधे हुए साथ ही गिरते जाते हैं, इसलिए हमें उसका गिरना प्रतीत नहीं होता।

जैसे आजकल का विज्ञान मानता है कि पृथ्वी घूमती है, किन्तु हमें उसका घूमना इसलिए प्रतीत नहीं होता कि हम उससे बँधे हुए हैं, हम भी उसके साथ घूमते रहते हैं। इसी तरह बौद्धमार्ग के ज्योतिषियों ने प्रतिक्षण पृथ्वी का नीचे गिरना माना था। किन्तु इस मत का खण्डन करते हुए भास्कराचार्य ने लिखा है—"भाई, गिरना तो कोई वस्तु ही नहीं है। वह तो आकर्षण का एक परिणाम है। मिट्टी का ढेला जो आप गिरता हुआ देखते हैं उसका कारण तो यही है कि पृथ्वी में आकर्षणशक्ति है, वह ऊपर की अपनी सजातीय भारी वस्तुओं को अपनी ओर खींच लेती है। इसीके परिणाम को आप लोग गिरना कहते हैं। पृथ्वी के नीचे इसकी सजातीय ऐसी कोई भारी वस्तु है नहीं, जो अपने आकर्षण से इसे गिरावे। इसलिए यह अपने स्थान पर ही स्थित रहती है। गिरे तो किस पर गिरे"? (स्मरण रहे कि भास्कराचार्य पृथ्वी का स्थिर रहना माननेवालों में ही थे।) यहाँ पृथ्वी की आकर्षणशक्ति का स्पष्ट शब्दों में निर्देश है और इतने सरल शब्दों में लिखा गया है कि सामान्य संस्कृतज्ञ भी उसे समझ सकता है। अर्थ की कोई खींचतान नहीं करनी पड़ती।

आकृष्टिशक्तिश्च मही तयायत्
खस्तं गुरुः स्वाभिमुखं स्वशक्त्या।
आकृष्यते तत् पततीव भाति,
समे समन्तात् क्व पतत्वियं खे॥

(पृथ्वी में आकर्षणशक्ति है, उसके द्वारा आकाश में स्थित भारी वस्तु जो अपनी ओर खींचती जाती है—उसीको गिरता हुआ देखा जाता है। तब चारों ओर समान रूप से विराजमान आकाश में या पृथ्वी किसके बल से गिरे।) भास्कराचार्य का समय १११४-१२०० ई० माना जाता है, और "न्यूटन" का १६४२-१७२७ ई०।

इसलिए न्यूटन से बहुत पहले संस्कृत ग्रन्थों में गुरुत्वाकर्षण सिद्धान्त का स्पष्ट वर्णन था, इसमें संदेह नहीं रह जाता।

१९५६

❀ ❀ ❀

नींव के चिरस्मरणीय पत्थर

श्री जी० एस० पथिक

नए भारत के निर्माण में अनेक व्यक्तियों ने अपना जीवन उत्सर्ग किया। पर समय के प्रवाह में उनकी घटनाएँ हमसे इतने परे हो गई कि मानों उन्हें युग बीत गये। एक दो नहीं, सहस्रों स्मृतियाँ आज समाज की जानकारी में नहीं हैं। जिन छोटे-बड़े व्यक्तियों ने अपने जीवन की एक-एक ईंट लगाकर राष्ट्र का नव निर्माण किया, वे हमसे भले ही ओझल हो गये हों, किंतु उनके महान् कार्य सदा अमर रहेंगे।

कलकत्ते में एक समय काशी के प्रसिद्ध रईस बाबू गोकुलचंदजी का घराना बड़ा प्रसिद्ध था। बाबू साहब का परिवार राजा मोतीचंद तथा देशभक्त बाबू शिवप्रसाद गुप्त प्रभृति से संबंध रखता था। वे सब एक परिवार के अंग थे। बाबू गोकुलचंदजी के प्रतिष्ठान की कलकत्ते में कड़ी धाक थी। वे प्रसिद्ध उद्योगपति भी थे। देश के नेतागण उन्हीं के यहाँ ठहरते थे।

एक दिन मैंने देखा कि बाबूजी के साथ कार में एक महापुरुष पधारे हैं। धोती और सफेद अँगरखा पहने हैं। मस्तक पर पगड़ी-नुमा साफा है। दिव्य वेशभूषा है। कपाल पर चंदन का बिंदु सुशोभित है। उनका भव्य रूप महानता का परिचय दे रहा था। मैं उन्हें पहचान न सका। फिर भी महामानव के आगे मैं नत-मस्तक हुआ। अपने यौवन की भावनाओं में मैंने श्रद्धापूर्वक उन्हें प्रणाम किया।

मैं बाहर जा ही रहा था कि बाबू साहब बोले—'पथिकजी, आज कहीं जाना आना नहीं। देखो, मालवीयजी महाराज आये हुए हैं। शायद कोई आवश्यक काम आ पड़े।'

मैं सहसा रुक गया।

स्नान, पूजा-पाठ और भोजन के उपरांत तीसरे पहर बाबू साहब ने मालवीयजी के कमरे में प्रवेश कर पूछा—'महाराज, कोई काम तो नहीं है?'

मालवीयजी ने बाबू साहब को देखते ही कहा—'आइए, मैं तो आपकी प्रतीक्षा में बैठा था।'

बाबू साहब के बैठने पर मालवीयजी ने काशी विश्वविद्यालय की योजना की चर्चा की।

महामना ने कहा—'वर्तमान शिक्षा-प्रणाली भारत को अधःपतन की ओर ले जा रही है। देश की नई पीढ़ी अपने पैतृक संस्कारों से विमुख हो रही है। संसार में हिन्दू जाति अब तक बनी हुई है, उसका कारण यह है कि हमारी संस्कृति और सभ्यता का लोप नहीं हुआ है। पर पश्चिमी प्रभाव समाज के जीवन को तेजी से दूसरी ओर मोड़ रहा है। युवकों के हृदय से धर्म और संस्कृति का भाव तिरोहित हो रहा है। यदि हमने यह खोकर स्वराज्य प्राप्त किया, तो वह किस अर्थ का होगा? हमारा गौरव ही मिट जायगा। इस पुरातन देश के निवासी हम फिर संसार को क्या संदेश देंगे? धर्म और संस्कृति ही तो हमारा जीवन है। इस धर्म और संस्कृति की रक्षा में हम समर्थ हों, इस लक्ष्य से मैंने काशी विश्वविद्यालय के निर्माण का संकल्प किया है। विश्वनाथ की पुरी में यह संस्था भारत की महान् गौरवपूर्ण संस्था होगी। हिन्दू विश्वविद्यालय के

छात्र धर्म और संस्कृति से दीक्षित होकर अपना कर्मठ जीवन बनाएँगे, वहाँ वे कला-कौशल, विज्ञान, इंजीनियरिंग, साहित्य आदि की शिक्षा प्राप्त करने में समर्थ होंगे। यह विश्वविद्यालय सारे देश का होगा।' लम्बी चर्चा के उपरांत मालवीयजी ने बाबू साहब से कहा––'सुनिए, भवानीपुर में एक स्थान पर संदेश भेजना है। आप किसी को मेरे पास भेज दीजिए।'

तब बाबू साहब मुझे महामना के पास ले गये। मेरा परिचय कराया। उस समय तक हिंदी में मेरी दो तीन पुस्तकें आर्थिक विषयों पर प्रकाशित हो चुकी थीं। मैं बाहर आया और मैंने अपनी पुस्तकें मालवीयजी के सामने रख दीं। हिन्दी में आर्थिक विषय की पुस्तकें देखकर उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। मेरी पुस्तकें उलट पुलटकर बोले–– 'तुमने तो हिन्दू विश्वविद्यालय का काम पहले ही शुरू कर दिया है। अँगरेजी शिक्षा प्राप्त युवकों को अपनी भाषा में लिखते हुए न देखकर मुझे क्षोभ होता है। तुम्हारा प्रयत्न श्लाघनीय है। प्रयत्न करते रहो, तुम्हें अच्छी सफलता मिलेगी।'

मैंने कृतज्ञतापूर्वक मस्तक झुकाकर कहा––'पूज्यपाद, मुझे आपका आशीर्वाद चाहिए।'

महामना के साथ अपने लम्बे संसर्ग का यहाँ से प्रारंभ हुआ था। मालवीयजी का वरदहस्त अपनी पीठ पर देखकर मैं गद्गद् हो गया। आज से पहले उनका केवल नाम सुना था। पर आज उस महापुरुष के समक्ष खड़ा था। उस समय भारत के राजनीतिक गगनमण्डल में लोकमान्य तिलक और महामना मालवीय सूर्य और चन्द्र के समान आलोकित हो रहे थे।

तत्पश्चात् मालवीयजी ने मुझसे कहा––'सुनो, तुम भवानीपुर में इस पते पर चले जाओ। वहाँ चौधरी लँगड़ू दीन* को मेरा यह पत्र देना और उनसे पूछना कि मैं कब उनके पास आऊँ।'

महामना का आदेश पाकर मैं चल दिया। कोठी के अंदर जाकर मैंने देखा कि एक अधेड़ व्यक्ति मूँज की चारपाई पर बैठा हुआ हुक्का पी रहा है। मैंने सोचा कि वह जमादार है। कुछ रुक कर मैंने कहा––'सुनो, मैं बड़ा बाजार से मालवीयजी महाराज का पत्र चौधरी लँगड़ू दीनजी के नाम लाया हूँ। मुझे उनके पास पहुँचा दो।'

'ओह, क्या जानता था कि जिसे मैंने जमादार खयाल किया था, वे ही चौधरी साहब थे। मुझसे कहा––'बैठ जाओ भइया, हम ही लँगड़ू दीन हन।' मैं तो अवाक्-सा रह गया। मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा। विश्वास नहीं होता था कि क्या मैं वास्तव में चौधरी लँगड़ू दीनजी के सम्मुख खड़ा हूँ जिनके पास मालवीयजी ने मुझे भेजा है। फिर भला यह व्यक्ति विश्वविद्यालय की महान् योजना में मालवीयजी को क्या सहयोग देगा?'

मैं चारपाई के एक कोने पर बैठ गया। चौधरी साहब को मालवीयजी का पत्र देते हुए मैंने कहा–– 'मालवीयजी ने पूछा है कि आपको कब अवकाश होगा। आज ही वे कलकत्ते आए हैं। आपसे तुरन्त मिलना चाहते हैं।'

इसके उपरांत मैंने उनकी बातचीत का ढंग देखा, तो मुझे अधिक निराशा हुई। मैंने देखा कि वे कुछ पढ़े-लिखे नहीं हैं। उन्होंने मेरी ओर मुँह करके कहा––'कासी से पंडितजी आइ गए। धन्य है, धन्य है, मालवीयजी बड़े रिसी-मुनी हैं। हमार धरम करम ऊ खूब जानत हैं। हाँ, भैया का कासी में पंडितजी का मदरसा खुल गवा? तुम मालवीयजी महाराज से कहि देव कि कल सबेरे नौ बजे आइ जाइँ।'

फिर वे मुझसे बोले––'काहे भैया तुम पढ़े-लिखे हो? आज जमाना पढ़े-लिखे का है।'

जब मैंने अपनी शिक्षा का उन्हें परिचय दिया, तब वे मुँह से हुक्के की नली हटाते हुए बोले––'वाह! वाह!! (उनकी छाती तन-सी गई थी।) इतनी थोड़ी उमर में अपने बिरते पर इतना सब पढ़ गए।'

मैंने देखा कि यह प्रकट करते समय उनके नेत्र गर्व से चमक उठे थे, जैसे उनसे भारत के भविष्य का गौरव झाँक रहा था। उन्होंने अपने पुत्र को बुलाकर कहा––

'देखो ननुआ, एक तुम हो, कितने बड़े हो गए हो, और अब तक अँगरेजी की तीन चार किताबें पढ़ पाये हो। पर इन भैया को देखो, तुमसे कुछ बड़े हैं, लेकिन कितना पढ़िगे हैं। अच्छा जाओ, इनका जलपान लाओ।'

*संभवतः इस नाम से तात्पर्य बिहार के प्रसिद्ध उद्योगपति बाबू लंगटसिंह से है जो आरंभ में रेल में एक पाइंटमैन थे, और बाद में एक इंजिनियर की कृपा से कलकत्ते में ठेकेदारी करने लगे थे और उसमें उन्होंने अच्छा धन कमाया था।

पर मैंने कहा—'चौधरी साहब, मुझे आज्ञा दीजिए, अधिक विलम्ब हो गया है। मालवीयजी मेरी प्रतीक्षा में होंगे।'

मगर वे बोले—'अइसे जाना न हुइये।'

इस बीच में उन्होंने मुझसे पूछा—'तुम हू कासी व प्रयाग में रहते हो।'

मैंने कहा—'आजकल कलकत्ते में रहता हूँ।'

जब जलपान आया, तब मैं अपनी संकोचवृत्ति के कारण झिझका। इस प्रकार मुझे रुकते देखकर चौधरी साहब बोले—'हाँ, हाँ, तुम कासी के ब्राह्मन हो न।'

मैंने कहा—'ब्राह्मण तो हूँ उत्तर प्रदेश का, किंतु ग्वालियर में रहता हूँ।'

यह सुनकर वे उछल पड़े और बोले—'अरे भैया हुआँ का महाराजा माधवराव बड़ा तेज है।'

मुझे यह जानकर आश्चर्य हुआ कि कैसे चौधरी साहब का सबसे संबंध है। अब उनसे मेरी आगे बातचीत चली। उससे विदित हुआ कि उन्होंने किस प्रकार कलकत्ते में धन कमाया। उनका प्रतिष्ठान लाखों रुपये अर्जन करनेवाला था। चौधरी साहब अपार सम्पत्ति के स्वामी थे। इसी व्यापार से उनका संबंध देश के बड़े-बड़े लोगों से था। पर यह सब होने पर भी उनका जीवन अत्यंत सरल था। सीधी-सादी वेश-भूषा थी। धन का अभिमान उन्हें छू तक न गया था। वे ऐसे अमानतदार से थे कि मानो अपने उपार्जित धन पर गंगा तुलसी रख चुके हों। उनका द्वार छोटे-बड़े सबके लिए खुला था। जिसे वे सहायता देते, उससे यह भी नहीं पूछते [illegible] के सहायता लेने पर उल्टे वे उसके कृतज्ञ बनते थे। बड़े-बड़े क्रान्तिकारी उन काले दिनों में उनसे सहायता पाते थे। इसके सिवा राष्ट्रीय कार्यकर्ता, समाज-सुधारक, विद्वान् पंडित और दीन-दुखी सभी के लिए उनका हाथ बढ़ता था। कभी-कभी व्यापार में लगनेवाला रुपया सहायता में लग जाता था और मैनेजर कह-सुनकर रह जाते थे। उनकी इस प्रवृत्ति को देखकर उनसे मैंने हँसते हुए कहा—'चौधरी साहब, इस तरह कोई आपसे आपका सारा कारबार माँग सकता है।'

चौधरी साहब बोले—'भैया हमार अइस भाग कहाँ है। हम कहाँ से का लाय हन। सब भगवान की सम्पति है, किसी को कष्ट में देखकर हाथ खींचना धरम नहीं है।'

अब मैं चौधरी साहब से प्रभावित हो उठा। भले ही उन्होंने शिक्षा न पायी हो, पर उनका जीवन कितना महान् था। वे धनी थे, पर आज के जैसे पूँजीपति नहीं थे।

जब मैं चौधरी साहब के पास से बिदा हुआ, तो मार्ग में मेरा मस्तिष्क इसी उधेड़बुन में बना रहा। मैंने सोचा कि वे कैसे विचित्र व्यक्ति हैं। उनका मालवीयजी से कब और कैसे सम्पर्क हुआ। देश के बड़े-बड़े पुरुषों से वे परिचय रखते हैं। इन्हीं कल्पनाओं के बीच में मैं वापस आया और मालवीयजी को चौधरी साहब के संदेश से अवगत किया।

दूसरे दिन मालवीयजी ने चौधरी लँगड़ूदीन से मिलने के लिए प्रस्थान किया। जब महामना की गाड़ी चौधरी साहब के द्वार पर पहुँची तो वे समाचार पाते ही दौड़े चले आये। उनके हर्ष का ठिकाना न रहा। महामना के स्वागत में उन्होंने पलक पाँवड़े बिछा दिये थे। दोनों का वह अनुपम मिलन था। चौधरी साहब मालवीयजी के चरणों में पड़ गये, तब महामना ने उन्हें प्रेमपूर्वक उठाया। भक्त का संघर्ष था। चौधरी साहब चरण धोने के लिए दौड़े। किन्तु रह गये, महामना की डाट-फटकार के आगे। मालवीय-जी सचमुच चौधरी साहब के लिए भगवान् थे।

अंदर पहुँचने पर चौधरी साहब ने महामना से कहा—बैठिए महाराज, आज्ञा दीजिए। पहले जलपान करिए। हम जानते हैं कि आप कुछ खायें-पियेंगे नहीं। पर यहाँ तो ब्राह्मण के हाथ से लाए हुए भागीरथी के पवित्र जल से [illegible] अन्न वस्त्र कुछ नहीं है।'

चौधरी साहब के हृदय में हलचल-सी मची थी कि यह कहने सुनने पर भी कहीं मालवीयजी इन्कार न कर दें। पर महामना ने देखा कि अब डाँट-डपट से काम न चलेगा। फिर चौधरी साहब कच्ची मिट्टी के पिण्ड नहीं थे। चौधरी साहब के स्नेह ने विजय पायी।

जलपान के उपरांत विश्वविद्यालय की चर्चा हुई। चौधरी साहब ने सोचा था कि मालवीयजी का बड़ा मदरसा लाख दो लाख रुपये से खुल जायगा और इतना धन वे स्वयं दे देंगे। कहीं माँगने-जाँचने की क्या जरूरत है। इससे उन्होंने मालवीयजी से पूछा—'कहिए महाराज मदरसा के लिए कितना धन चाही।'

महामना ने कहा—'विश्वविद्यालय के लिए बड़ी धन-राशि की आवश्यकता है। विश्वविद्यालय की योजनाओं में करोड़ों रुपये लगेंगे।'

मैंने देखा कि मालवीयजी से यह सुनकर चौधरी साहब चमक उठे। उन्होंने छाती चौड़ी करते हुए गर्वपूर्वक कहा—धन्य है, महाराज अब अँगरेज देखिहें कि हमन का बिलायत के मुकाबले में कौनो मदरसा खड़ा किहेन हैं। कौनो बात नहीं, महाराज रुपया इकट्ठा हुई है। आप कल सबेरे पधारें। हम आपको महाराजाधिराज के पास ले चलिहें।'

चौधरी साहब की दृष्टि मुझ पर गड़ी थी। वे इतने प्रभावित हो गए थे कि मुझे अपने कारबार में रख लेना चाहते थे। अतएव महामना के प्रस्थान करते समय वे बोले—'महाराज, आप इन भैया का हमरे यहाँ छोड़ देव।'

साधारण बातचीत के उपरांत जब मालवीयजी बाहर आए, तो चौधरी साहब ने मुझे रोक लिया। मैं रह गया। वहाँ रहकर उस भव्य प्रासाद में मैंने चौधरी साहब के व्यापारिक प्रतिष्ठान का निरीक्षण किया था। मैनेजर और क्लर्क काम कर रहे थे और टाइपिस्ट मशीनें खटखटा रहे थे।

दूसरे दिन मालवीयजी चौधरी साहब के निवास-स्थान पर पुनः पधारे। वे महामना को लेकर दरभंगा नरेश की कोठी पर गए। महाराज दरभंगा का प्रासाद अत्यंत रमणीय और सुन्दर था। प्रांगण में प्रवेश करते ही नन्दी के दर्शन हुए, देव-मन्दिर-सा दिव्य भवन था। महाराज भीतर पूजन कर रहे थे। चौधरी साहब और मालवीयजी प्रतीक्षालय में बैठ गए।

कुछ देर बाद चौधरी साहब ने महाराज के सेक्रेटरी से कहा—'कहो महाराज से जल्दी आएँ, हमारे साथ कासी से पण्डित मालवीयजी आये हैं। महाराजा का आराधना करते हैं। मालवीयजी स्वयं धरम हैं।'

अधिक प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी। दरभंगा नरेश तत्काल ही पधारे। मालवीय जी का महाराज से साक्षात हुआ। महाराज ने मालवीयजी का सम्मान किया। दरभंगा महाराज का रहन-सहन राजर्षि जनक के समान था। चौधरी साहब ने मालवीयजी के संबंध की चर्चा की। तत्पश्चात् उन्होंने महामना से कहा—'महाराजाधिराज से सब बात मदरसा की कहो, फिर क्या करना होगा, सो हम स्वयं कहेंगे। सुनो दरभंगा ध्यान से।' उनकी यह बात सुनकर तो मैं हैरत में पड़ गया कि समाज में उनका कितना बड़ा स्थान है।

महामना ने विश्वविद्यालय की सारी योजना महाराज से प्रकट की। फिर दोनों में गंभीर विचार-विमर्श हुआ। मैंने देखा कि बातचीत लम्बी करते देखकर चौधरी साहब ऊब उठे। वे कहने लगे कि, 'बस, सुनो रामेश्वरसिंह बहादुर, यह काम करना ही पड़ेगा। खड़े हो जाओ।' इसके पश्चात् कलकत्ते में विश्वविद्यालय के लिए सार्व-जनिक सभा के आयोजन का निश्चय किया गया। चौधरी साहब ने कहा कि, 'टाउन हाल में विराट् सभा होगी। हम सब का आयोजन करेंगे। निमंत्रण पत्र पर महाराजा-धिराज और अन्य व्यक्तियों के हस्ताक्षर होंगे।'

चलते समय चौधरी साहब ने फिर दरभंगा नरेश से एक बात कही—'सुनो मिथला के महाराज, काम आप करोगे और नाम पंडित का होगा।'

यह सुनकर सब हँस पड़े।

चौधरी साहब के प्रयत्न से कलकत्ते के टाउन हाल में विराट् सभा श्री राशबिहारी घोष के सभापतित्व में हुई। ऐसी सभा थी, जिसमें कलकत्ते के सभी समाज की उपस्थिति थी। लखपति और करोड़पति व्यापारी तथा श्रीमंत वर्ग एक न छूटा था। धनी मानी व्यापारी, उद्योगपति वकील, बैरिस्टर, हाई कोर्ट के जज, और जमींदार आदि सभी आए थे। चौधरी साहब ने स्वयं सभा की कार्रवाई शुरू की, किंतु जब वे आगे न बोल सके, तब उन्होंने महाराज से कहा, 'आओ महाराजाधिराज दरभंगा, बोलो।' पर दरभंगा नरेश के संकेत पर महामना भाषण देने के लिए खड़े हुए। भारतीय संस्कृति, धर्म, शिक्षा और समाज तथा विश्व-विद्यालय की योजना पर मालवीयजी का मंत्रमुग्ध करने-वाला धारा-प्रवाह भाषण सुनकर सब चकित हो गये। सबके ही हाथ बढ़ गए। लोगों ने मालवीयजी को घेर लिया। अनेक व्यक्तियों ने उनके चरण स्पर्श किए।

इधर यह सब हो रहा था, उधर चौधरी साहब का काम जारी था। वे चंदा लिखा रहे थे। जब भाषण समाप्त हुआ, तब चौधरी साहब ने सभापति महोदय से कहा—'बैरिस्टर साहब, लिखो चंदा, खूब धन कमाया है, आज देओ दान।' इसके बाद मैंने देखा कि, जो व्यक्ति पचास हजार

रुपए का चंदा लिखता था, उससे उन्होंने चौगुनी रकम लिखवायी। सभा में विश्वविद्यालय के लिए लाखों रुपए का चंदा हुआ। चौधरी साहब ने स्वयं बड़ी धन राशि थी।

अंत में सभा विसर्जित होने पर जब मालवीयजी महाराज चौधरी साहब के निवासस्थान पर आए, तब जिस प्रकार भक्त भगवान् की पूजा करता है, उस प्रकार उन्होंने मालवीयजी की अर्चना की। चौधरी साहब ने सोचा कि भगवान् राम उनके घर पर आये हैं। उन्होंने महामना के चरण धोए, चंदन लगाया, मालाएँ पहनायीं, दीपक जलाया, मिष्ठान्न का भोजन कराया। चौधरी साहब परिवार सहित मालवीयजी के चरणों में नत हुए। मुझे यह देखकर निषाद और राम की भेंट का स्मरण हो आया।

तत्पश्चात् अत्यन्त श्रद्धा और भक्ति से यह कहते हुए चौधरी साहब ने मालवीयजी को बिदा किया—'जाओ महाराज, करो मदरसा का काम, कासी विश्वनाथ सब पूरा करेंगे।'

१९५६

❀ ❀ ❀

तिलक—जिनका जीवन अर्पित था?

श्री लक्ष्मण नारायण गर्दे

लोकमान्य के सम्बन्ध में कुछ लिखना चाहा तो हठात् तिलक और गांधी इन दोनों ही नामों का एक साथ स्मरण हुआ। इसका कारण शायद यह है कि जिस समय राजनीतिक क्षेत्र में मैंने प्रत्यक्ष रूप से भाग लेना आरम्भ किया तब ये दोनों ही महापुरुष मेरे सामने थे। मैंने गांधीजी की 'होमरूल' पुस्तक का अनुवाद किया था और मैं यह चाहता था कि मेरी इस पुस्तक का मुखबन्ध महात्मा गांधी लिखें। उस पुस्तक में कुछ अंश ऐसा था जो लोकमान्य की कार्यपद्धति से मेल नहीं खाता था और मेरे विचार भी उस अंश में लोकमान्य की ही कार्यपद्धति का अनुगमन करते थे। अतः मेरी यह भी इच्छा थी कि महात्माजी मेरी इस पुस्तक के मुखबन्ध में उतना अंश संशोधित कर दें। पर यह काम ऐसे नहीं हो सकता था कि कहा और हो गया। कुछ कहने-सुनने की आवश्यकता थी। महात्माजी उस समय प्रयाग आये हुए थे। मैं था कलकत्ते में (दैनिक भारतमित्र के सम्पादक के नाते)। अतः गांधीजी से मिलने मैं कलकत्ते से प्रयाग आया, गांधीजी से मिला और अपने आने का उद्देश्य उन्हें बतलाया। उन्होंने कहा कि अभी तो इस काम के लिए मेरे पास समय नहीं है। मैंने पूछा, वह समय कब मिलेगा। उन्होंने कहा, जब भी मिल जाय, पर उसका निश्चय तुरन्त अभी नहीं किया जा सकता। मैंने कहा, मेरे लिए इसका यह मतलब हुआ कि मैं आपके साथ चलूं और जब तक आपको समय न मिले तब तक आपके साथ रहूँ, आप जहाँ जायें वहाँ मैं भी चलूं। महात्माजी ने कहा, हाँ, ऐसा करना अच्छा होगा। महात्माजी, चक्रवर्ती राजगोपालाचारी, सरलादेवी चौधरानी आदि उसी दिन बम्बई लौटनेवाले थे और वहाँ से फिर गुजरात का दौरा करनेवाले थे। मैंने उनके साथ चलने की तैयारी की। इस यात्रा का आरम्भ मैंने लोकमान्य के दर्शन करके किया था। हम लोगों की गाड़ी में अभी देर थी और लोकमान्य अखिल भारतीय कांग्रेस कमिटी के काशी के अधिवेशन से बम्बई लौट रहे थे। बम्बई मेल छिउकी स्टेशन पर खड़ी थी। दूसरे दर्जे की एक गाड़ी में लोकमान्य और उनके अनन्य मित्र श्री गणेश श्रीकृष्ण खापर्डे विराजमान थे। लोकमान्य को झपकी-सी लगी थी, वे लेटे हुए थे। श्री खापर्डेजी से मेरी बातचीत हुई। लोकमान्य भी उठ बैठे, पर गाड़ी छूटने का क्षण था। मैंने उन्हें श्रद्धा और विनय के साथ प्रणाम किया। चलते-चलते मैंने कहा, मैं फिर दर्शन करूँगा। कुछ ऐसी बात देखने में आती है कि जिस कार्य का जैसा आरम्भ होता है वह चीज उस कार्य के अन्त तक बनी रहती है। इस तरह मुझे लोकमान्य और गांधी जी का एक साथ स्मरण होता है।

पर यह वैयक्तिक कारण हुआ। सार्वजनिक कारण

क्या हो सकता है ? सार्वजनिक कारण भी है। लोकमान्य का युग समाप्त होने पर गांधी-युग चला। वह अभी तक किसी न किसी रूप में चल रहा है जैसे श्रीकृष्ण के युग के पश्चात् श्री गौतमबुद्ध का युग चला और अब भी किसी न किसी रूप में चल रहा है। इसीलिए प्रत्येक श्रुति-स्मृति पुराणोक्त कर्म के संकल्प में तिथि, वार, नक्षत्र आदि के साथ 'बौद्धावतारे' का भी निर्देश होता ही है। श्रीकृष्ण और बुद्ध के समान ही भारतीय राजनीति, समाजनीति, धर्मनीति आदि क्षेत्रों में तिलक और गांधी का सम्बन्ध है और यह प्रत्यक्ष ही है। श्रीकृष्ण के चरित्र में सब कुछ है और बुद्ध के चरित्र में अहिंसा, करुणा आदि की विशिष्टता है। उसी प्रकार लोकमान्य के चरित्र में सब कुछ है और गांधीजी के चरित्र में सत्य और अहिंसा की प्रधानता है। यह बुद्ध का युग होने पर भी उसमें श्री कृष्ण आते ही हैं। उसी प्रकार गांधी-युग में लोकमान्य भी आते ही हैं। जब जब परिस्थिति निमंत्रण देती है तब तब ऐसा विशेषरूप से होता है।

इस बुद्धयुग में भी 'धम्मपद' से गीता ही अधिक लोकमान्य है। स्वयं लोकमान्य तिलक, योगवित्तम श्री अरविन्द और महात्मा गांधी ने गीता का ही आश्रय लेकर अपने और जगत् के कल्याण का पथ प्रशस्त किया है। महात्मा गांधी की यह बात प्रसिद्ध है कि जब-जब उन पर कोई ऐसा संकट आया है कि उनकी बुद्धि के सामने विषादमय अन्धकार छा गया तब-तब उन्होंने अपना मस्तक गीता-माता की गोद में रख दिया। इससे उनके सब प्रश्न हल हो जाते थे। लोकमान्य तिलक भी ऐसे संकटकाल में गीता की ओर ऐसे ही देखते थे जैसे कोई आज की तारीख जानने के लिए सामने दीवार पर लटके कैलेंडर की ओर देखता है। क्षणार्द्ध में ही मंत्रवत् काम करनेवाला वह श्लोक उनके मनश्चक्षु के सामने आ जाता था। उसे वह इस तरह पकड़ लेते थे कि उस पकड़ के अन्दर कोई संकट घुस नहीं सकता था। गीता के विषय में श्री अरविन्द का भी क्या कहना है! बंगाल के जो क्रान्तिकारी गीता का ध्यान करते हुए फाँसी की टिक्टियों पर चढ़ गये उनके हाथ में गीता श्री अरविन्द ने ही दी थी। इन तीनों ही महापुरुषों ने महामहिम श्रीमद्-भगवद्गीता पर अपने अपने भाष्य लिखे हैं। बुद्धावतार में श्रीकृष्ण की ही यह महिमा है।

लोकमान्य तिलक जैसे तत्त्ववेत्ता थे वैसे ही महान् योद्धा भी। कितने-कितने क्षेत्रों में कितनी-कितनी लड़ाइयाँ उन्हें लड़नी पड़ीं। मानों सप्तमहारथियों से चक्रव्यूह में घिरा हुआ यह अभिमन्यु ही लड़ रहा है! अब तो हम लोगों को स्वराज्य मिल गया है। पर इस स्वराज्य के लिए लोकमान्य को किस-किस तरह की कितनी लड़ाइयाँ लड़नी पड़ीं! सारा जीवन उनका इन लड़ाइयों में बीता! इन लड़ाइयों को लड़ते हुए बार-बार उन्हें कारावास भोगना पड़ा। और उनके समय का कारावास ऐसा-वैसा नहीं था। पीछे हम लोग भी गांधी-युग में जेलयात्रा कर आये। तब तो कारागार रूप तीर्थस्थान के यात्रियों का मेला-सा लगा था। पर इसे तीर्थस्थान बनाया किसने? लोकमान्यतिलक ने। बार-बार वे जेल गये, अपने मित्रों और अनुयायियों के साथ नहीं, अकेले जैसे ईसा-मसीह अकेले क्रास पर चढ़ गये। बार-बार वे जेल गये पर जेल से छूटने पर फिर वही लड़ाई जारी! ब्रिटिश सरकार से उनकी लड़ाई उनके जीवनान्त तक समाप्त नहीं हुई। ब्रिटिश नौकरशाही भी उनके ऐसे पीछे पड़ी थी कि उन्हें चैन नहीं लेने देती थी। उनके ऊपर नाना प्रकार के अभियोग लगाये जाते थे और तंग किया जाता था। १८९७ में कारावास से छूट जाने पर झूठी गवाही देने का एक अभियोग उन पर लगाया गया था। यह फौजदारी मामला बहुत काल तक चला। इसमें उन्हें फाँसने का पूरा षड्यन्त्र था। इसमें तिलक महाराज का हजारों रुपया व्यय हुआ। आर्थिक दृष्टि से वे बरबाद हो गये। अन्त में उनकी जीत हुई और उनके निष्पाप-निष्कलंक जीवन पर एक कलंक लगाने का षड्यन्त्र विफल हुआ। इसी प्रकार मंडाले जेल से छूट आने पर ठीक उनके षष्ठ्यब्दपूर्त्ति महोत्सव के बीच में उन पर राजद्रोह के एक मामले का नोटिस तामील किया गया। कारावास से छूटने पर भी नजरबन्दी का हुक्म तो उन पर जारी ही था। उनकी कोई मानप्रतिष्ठा न हो, उनके आत्मीय जनों और मित्रों का भी कोई सम्मान न हो, इसका बहुत कड़ा प्रबन्ध किया गया था। सरकार उन्हें, कंस जैसे श्रीकृष्ण को, अपना काल समझती थी। सरकार ही उनके पीछे नहीं पड़ी थी, वे भी सरकार के पीछे पड़े थे। 'तस्मात् सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युद्ध्यच।' यह गीता-वाक्य मानो उनके जीवन का प्रेरक महामंत्र था। कितनों

ने कितनी बार उनसे यह अनुरोध किया कि आप वृद्ध हो चले, इन सब झंझटों को छोड़कर शान्त चित्त से एकान्त में बैठिए और विद्यादान कीजिए, आप जैसे विद्वानों के ग्रंथ देश का बहुत उपकार करेंगे। इसका वे यही उत्तर देते कि जब तक भारतवर्ष को स्वराज्य नहीं प्राप्त होता तब तक अन्य कार्यों के लिए अवकाश कहाँ? ऐसा अवकाश उन्हें युद्ध के बीच कारावास में मिलता था। उनके 'वेदकालनिर्णय' और 'आर्यों का उत्तर ध्रुव वासस्थान' ये दो अँगरेजी ग्रन्थ आरम्भ के कारावास में लिखे गये, और उनका 'गीतारहस्य' उनके अन्तिम कारावास में। श्रीकृष्ण की गीता कही गई युद्ध के शंखनाद और प्रत्यक्ष शस्त्र-संपात के बीच अवकाश में। उसी गीता का भाष्य 'गीतारहस्य' रचा गया युद्ध के बीच कारावास-अवकाश में। यह घटना गीतारहस्य के महत्व पर महत् प्रकाश डालती है।

इस ग्रन्थ ने एक बहुत बड़ी विचार-क्रान्ति की। लोग सामान्यतः यही समझते थे कि गीता परमार्थ अर्थात् मोक्ष-साधन के लिए है, यहाँ के लोकव्यवहार से उसका कोई वास्ता नहीं। जो संसार से सर्वथा विरक्त होकर मोक्ष के अथवा भगवद्धाम के इच्छुक हों, उन्हीं के लिए गीता है। गीतारहस्य यह बतलाता है कि जो लोग मोक्ष अथवा भगवद्धाम के साधक या भगवद्भक्त हैं उन्हें इस लोक का कर्म बनाने के लिए गीता कही गई है। कारण इस लोक का अखिल कर्म भगवत्प्रीत्यर्थ होनेवाला एक महान् यज्ञकर्म है, और विभिन्न प्राणियों के भिन्न-भिन्न सारे कर्म उसी महान् यज्ञकर्म के अंग हैं। लोकमान्य के ही शब्दों में कहें—"यह संसार हमने नहीं रचा है। अतः इस संसार के सांसारिक कर्म भी हमने नहीं निर्माण किये, वे ईश्वर निर्मित हैं। ये कर्म कामना विशेष से, अभिमान-पूर्वक या स्वार्थबुद्धि से जब किये जाते हैं तब बन्धनकारक होते हैं। पर ये सारे कर्म भगवान् के ही जानकर और इनमें अपना-अपना विशिष्ट कार्यभाग पूरा करने के लिए ही हमारा जन्म हुआ है, इस भावना के साथ अपने कर्म भगवान् को अर्पण कर लोकव्यवहार जारी रखना ही प्रत्येक मनुष्य के लिए गीता का उपदेश है। इस प्रकार कर्म करना विराट्रूप परमेश्वर की उपासना है। इसी हेतु से 'स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः' यह श्लोक गीता के अन्तिम अध्याय में आया है।..... अर्जुन इस प्रकार कर्म करने को जब तैयार हुआ तब भगवान् ने उसके सारथी का काम किया। तुम लोग भी इस योग का आचरण करो तो भगवान् तुम्हारे सहायक होंगे।" यह बात योग के साधकों के लिए हुई। जो सिद्धि प्राप्त कर चुके आत्मज्ञानी हुए, लोकमान्य का गीता भाष्य उनके लिए 'ज्ञानोत्तर कर्मवाद' की अवतारणा करता है। स्वयं श्रीकृष्ण से बढ़कर ज्ञानी और कौन है? पर वे कर्म करते हैं अन्यथा 'उत्सीदेयुः इमे लोकाः न कुर्याम् कर्म चेदहम्'। गीता रहस्यकार गीता का यह आग्रह बतलाते हैं कि ज्ञानियों को कर्म के द्वारा हो लोगों के कर्म करने के लिए उदाहरण उपस्थित करना चाहिए। लोकमान्य के इस तत्त्वज्ञान का प्रकाश पाकर सहस्रों नवयुवक भगवन्नाम पुनीत लोकव्यवहार के प्रमाद रहित पथ पर आ गये, सहस्रों आ रहे हैं और आते रहेंगे जो अन्यथा संसार की आसक्ति में डूबते या इस कर्मलोक में आकर भी बिना कुछ किये ही लौट जाते। यह गीतारहस्य के प्रतिपाद्य विषय का अत्यन्त संक्षेप है। विस्तार इसका बहुत है, समग्र पाश्चात्य और प्राच्य तत्त्वज्ञानों की मीमांसा है जो गीतारहस्य में देखने योग्य है। यहाँ हमें केवल इतना ही देखना था कि लोकमान्य जैसे असाधारण पुरुष के जीवन का प्रेरक तत्त्वज्ञान क्या था, कौन-सा ध्येय था जिससे उन्हें प्रेरणा और भक्ति प्राप्त होती थी।

लोकमान्य के इस ग्रन्थ ने भी एक वाग्युद्ध छेड़ दिया था। सभी लोकमान्य के इस ग्रन्थ को मानें या इसकी मीमांसा-शैली के कायल हों, यह संभव नहीं है। किसी भी भाष्य के लिए यह संभव नहीं हुआ। फिर गीतारहस्य के लिए ही कैसे संभव हो सकता था? पर इसमें कोई सन्देह नहीं कि ज्ञानी और विरक्त महात्माओं द्वारा उपेक्षित, जन्म-मृत्यु जरा व्याधि में ही डूबे हुए इस लोक को लोकमान्य के गीतारहस्य ने ऊपर उठाया है, भगवत्-सत्ता के साथ उसका सम्बन्ध जोड़ा है।

लोकमान्य ६५ वर्ष की अवस्था में ही इस लोक से चले गये। बार-बार जो उन्हें कारावास भोगना पड़ा उससे उनकी आयु अवश्य कुछ घटी होगी। यदि वे और जीते तो उनके अगाध ज्ञान-भंडार से और कुछ ग्रन्थ-रत्न निकलते। कुछ प्रस्तावित ग्रन्थों की सूची उन्हींके हाथ की लिखी हुई उनके केलकर कृत चरित्र ग्रन्थ में छपी है जिनमें से कुछ ग्रन्थों के नाम ये हैं—हिन्दू धर्म का इति-

हास, हिन्दू राष्ट्र-धर्म, रामायण-महाभारत से पूर्व के भारत का इतिहास, शांकर दर्शन, हिन्दू ला व हिन्दू धर्मशास्त्र, इनफिनेटसिमल, कैलक्युलस, शिवाजी चरित्र इत्यादि। यदि वे और जीते तो अब तक के उनके स्वभावानुसार उनकी भिड़न्त किसके साथ होती। यह भी एक प्रश्न किसी ने उपस्थित किया था। जब तक स्वराज्य न मिलता तब तक ब्रिटिश सरकार से उनकी लड़ाई जारी रहती। पर स्वराज्य मिलने के बाद? इस प्रश्न का उत्तर लोकमान्य ने यह दिया—'स्वराज्य—स्वातंत्र्य मिलने के बाद भी जनता के जो अन्य दुःख हों उन्हें दूर करना हमारा काम होगा। स्वराज्य में जो दोष देख पड़ेंगे उन्हें दूर कराने के लिए हम स्वदेशी सरकार के भी ऐसे ही पीछे पड़ेंगे अथवा जगत् में जो कोई राष्ट्र दुःख या विपदा में पड़ा होगा उसे उससे मुक्त करने के लिए हम ऐसे ही प्रयत्न करते रहेंगे।'

लोकमान्य अपने लिए कुछ नहीं चाहते थे। संसार के दुःख को वे न दुःख समझते थे, न सुख को सुख। 'अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथः' इत्यादि भगवद्भक्त के जो लक्षण गीता में दिये हैं अथवा 'अमानित्वं, अदंभित्वं, सत्यं, असक्तिः अनभिष्वंगः पुत्रदारगृहादिषु, नित्यं च समचित्तत्वं इष्टानिष्टोपपत्तिषु, अध्यात्मज्ञाननित्यत्वं, तत्त्वज्ञानार्थदर्शनं' ये सब जो ज्ञानी पुरुष के लक्षण बतलाये गये हैं, उनके चरित्र में स्पष्ट ही दीख पड़ते हैं। यह कह सकते हैं कि वे ज्ञानी कर्मयोगी भगवद्भक्त थे और जगद्रूप इस महायज्ञ में अपने देश को स्वतंत्र करने का सतत् प्रयत्न करना एतद्रूप जो उनका जन्मतः प्राप्त कर्मांग था उसमें उन्होंने अपना जीवन लगाकर उसे भगवच्चरणों में समर्पित किया। यही अति संक्षेप में उनका जीवन-चरित्र है।

ऐसे पुरुष कभी मरते नहीं। वे किसी न किसी रूप में, अपना पार्थिव शरीर के छूटने के बाद भी, त्रितापदग्ध संसार पर अपने कृपाछत्र की छाया किये रहते हैं। क्या महात्मा गांधी और क्या लोकमान्य तिलक, दोनों के ही तत्त्वज्ञान उदाहरण और उपदेशों से देश को सान्त्वना और शक्ति प्राप्त होती है। यह महात्मा गांधी का ही पुण्य प्रताप है जो श्री नेहरू के द्वारा जगत् में अपने प्रकाश का विस्तार कर रहा है। पर कुछ कमियाँ हैं, देश की ठीक सँभाल में और देश के बाहर के व्यवहार में भी। बाहर की अपेक्षा घर की सँभाल में ही अधिक दत्तचित्तता आवश्यक है। इसमें लोकमान्य की समाजनीति और धर्मनीति हमारे लिए संभवतः बहुत सहायक होगी। अतः इस गांधीयुग में भी लोकमान्य के विचारों की ओर ध्यान देना आवश्यक है।

१९५६

❀ ❀ ❀

बेचिरागी गाँव

श्री विद्यानिवास मिश्र

बचपन में मेरी यह आदत थी कि जब अपने गाँव में बाबा के साथ घूमने जाता तो हर एक खेत की चौहद्दी बार-बार पूंछता, और यदि गाँव के बाहर जाता तो हर एक गाँव की चौहद्दी बार-बार जाननेकी उत्सुकता दिखलाता। मैं जिस देहात का हूँ, वह कछार क्षेत्र होने के कारण मेड़ की मर्यादा नहीं स्वीकार करता। इसीलिए वहाँ सिवान के झगड़े होते रहते हैं, और पत्थर के निशान भी बाढ़ में लुप्त होते रहते हैं। बाढ़ के बाद हर साल कहीं न कहीं कोई न कोई टंटा सिवान के बारे में एक किसान और दूसरे किसान के बीच, और एक गाँव तथा दूसरे गाँव के बीच इन क्षेत्रों में उठता रहता है। मेरे बाबा बहुत ही पुराने आदमी थे, और प्रायः आस-पास कई गाँव में ऐसे झगड़ों का निपटारा करने के लिए बुलाये जाते थे। लोगों का ऐसा विश्वास था कि पटवारी के कागज झूठे हो सकते हैं, पर बाबा की बात ब्रह्मलीक है। वे चप्पे-चप्पे का इतिहास जानते थे और पटवारियों की कम से कम तीन पुश्त तो उनकी आँख के सामने गुजर चुकी थी। इसलिए पटवारी भी प्राचीन इतिहास के बारे में उन्हींको प्रमाण मानते

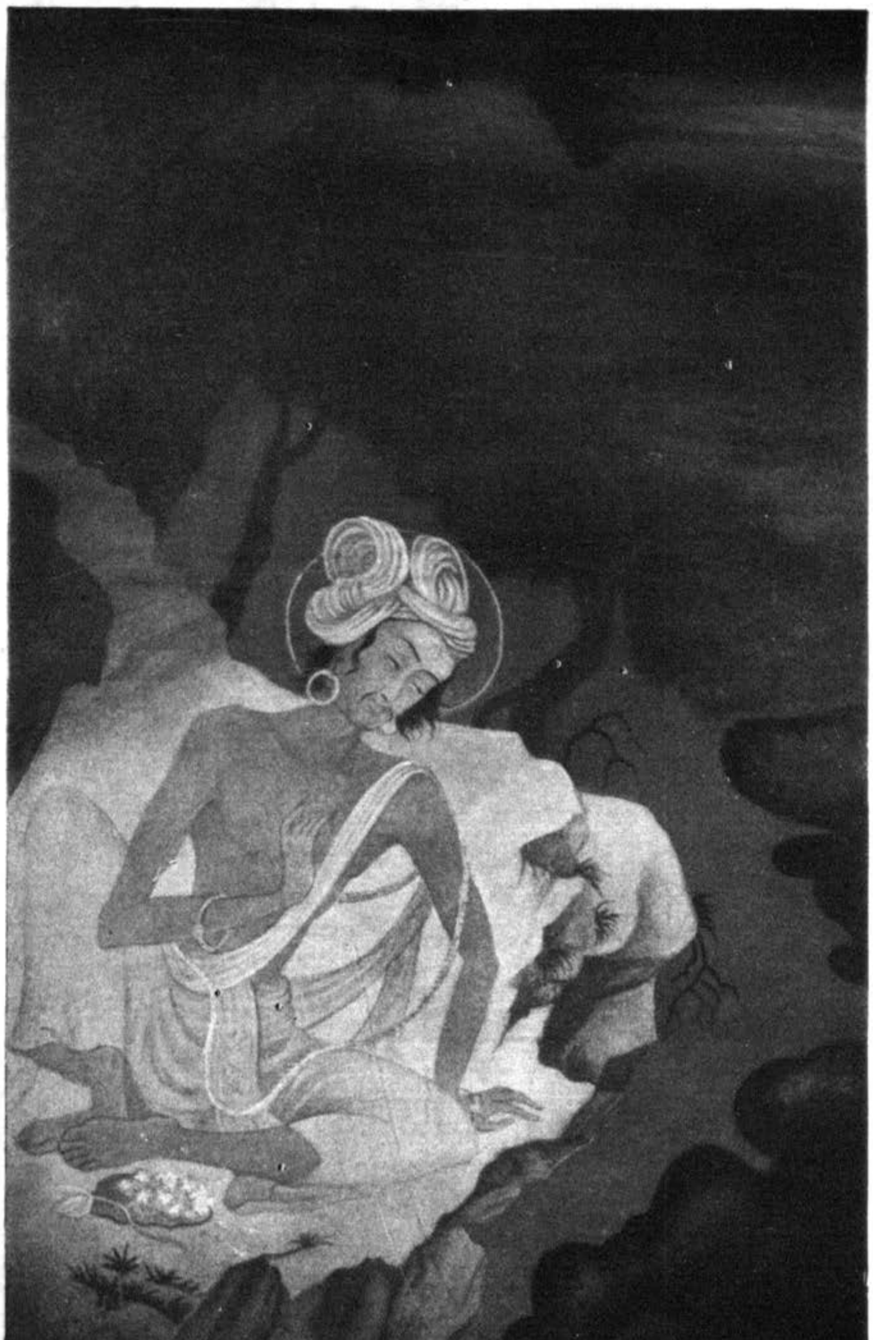
थे। मेरे गाँव से थोड़ी ही दूर पर एक गाँव है जिसका नाम मिर्जापुर बुजुरुग है। एक बार मैंने बाबा से पूछा कि यह 'बुजुरुग' क्या है? उन्होंने बतलाया था कि यह "बे-चिरागी गाँव" है। मैंने तब पूछा कि यहाँ तो कोई गाँव का निशान ही नहीं है, फिर एक अलग गाँव के रूप में इसका नाम क्यों लिया जाता है? उन्होंने इसकी यह व्याख्या दी थी कि कभी यहाँ बस्ती थी, और उस बस्ती में चिराग जलते थे। आज बस्ती उजड़ गई है और जोत के अन्दर आ गई है, पर गाँव का नाम अब भी 'बुजुर्ग' के रूप में कागज में मौजूद है।

तब और आज के बीच में न जाने कितने वर्ष बीत चुके हैं और बेचिरागी तथा चिरागी दोनों प्रकार के गाँवों से मैं बहुत दूर खिच आया हूँ। मैं अब बिजली के प्रकाश में रहने लगा हूँ। पर न जाने क्यों उस बेचिरागी गाँव की बात अब भी कभी-कभी मन में चुभ जाती है। उस पटवारी को धन्यवाद है जिसने उसका निशान मिट जाने पर भी उसका नाम नहीं मिटने दिया। जब मैं सोचता हूँ कि क्या वह बेचिरागी गाँव अकेला है, तब मुझे लगता है कि वैसे गाँव हर एक जगह हैं; और नई फसलों के लोभ में, नये यंत्रों के प्रयोग के द्वारा न जाने और कितने ही गाँव बेचिरागी दशा को प्राप्त होते चले जा रहे हैं। मैं तीन-चार वर्ष विंध्य प्रदेश में रहा, और मैंने गाँवों की कौन कहे, अनेक पुराने नगरों के जब खँडहर देखे तो बावड़ियों, प्रासादों, मन्दिरों और परकोटों के जीर्ण-शीर्ण रूपों में उस पुराने बेचिरागी गाँव की लम्बायमान छाया देखी। कई बार ऐसा हुआ। जैसे महाराज कुश के पास उजड़ी हुई अयोध्या की आत्मा मलिन वेश में म्लान बदन होकर सपने में आई थी, वैसे ही अर्धजाग्रत अवस्था में मेरे सामने भी कई बार वे दीर्घिकाएँ, उनके लाक्षारंजित मर्मर सोपान, उन दीर्घिकाओं के स्फटिक जल में पड़ते हुए कमलाकृति सौध-शिखरों के प्रतिबिम्ब, उन प्रतिबिम्बों को श्वेत कमल मानकर चंचु डुबानेवाले कलहंसों का विभ्रम, अंगराग के उपमर्द से कमल-किंजल्क की सुरभि-लक्ष्मी की सौगुनी बृद्धि, संध्या की अनुसंजित बेला में संगीतार्थ का मनोरम प्रसार,—न जाने कितनी स्मृतियाँ सुरभित श्वास बनकर कानों के पास अपना पदचाप छोड़ देतीं, न जाने कितने दृश्य छाया अभिनय करते हुए एक के बाद दूसरे सरकते चले जाते और न जाने कितने प्रकार की अनुगूंज भरती और रीतती चली जाती। उज्जैनी, विदिशा, ओरछा, महोबा, बान्धवगढ़, गुरगी, नचना, कुण्डलपुर, त्रिपुरी, माहिष्ममती—किन किन का नाम गिनाऊँ? उन पुरियों के ध्वंसावशेषों को जब जब मैंने देखा है तब तब मुझे वह बेचिरागी गाँव याद आया है। लोग कहते हैं कि अँगरेजी व्युत्पत्ति के अनुसार 'संस्कृति' का अर्थ ही है खेत की कमाई। खेत को चौरस बनाना पड़ता है, खेत के ढेले और ढोके फोड़ने पड़ते हैं, खेत में काँस और दूब का उच्छेद करना पड़ता है। खेत के चारों ओर मेड़ बाँधनी पड़ती है और उसमें नई-नई रासायनिक खाद देकर उसकी उर्वरा शक्ति बढ़ानी पड़ती है। आदमी की जरूरतें बढ़ती हैं तो खेत का विस्तार भी बढ़ता है। पुराने डीह, पुराने तालाब—सब जोत के अन्दर आ जाते हैं, और कुछ लोगों को ऐसा कहते हुए भी मैंने सुना है कि पुराने डीह पर बड़ा बढ़िया अन्न पैदा होता है। इसलिए अगर एक संस्कृति उजड़ती है तो वह दूसरी संस्कृति को बसाने के लिएँ; या यों कहें कि दूसरी संस्कृति की फसल अच्छी हो, इसके लिए अच्छी रासायनिक खाद बनाने के लिए। चिराग बुझे तो क्या हुआ, बिजली तो जगमगा गई!

मैं सोचता हूँ कि चिराग बुझा तो नाम क्यों न बुझ गया? उदयन, चन्द्रगुप्त, विक्रम, समुद्रगुप्त, प्रवरसेन, स्कन्दगुप्त, पुलकेशी, यशोवर्मन्, भोज, कर्ण, राजराज और पृथ्वीराज चले गये। जो ज्योति उन्होंने अपने युग में अपने-अपने स्थान में जगाई, वह ज्योति भी उनींदी पड़ने लगी। फिर, उनका नाम जिन लेखनियों ने सुरक्षित रख छोड़ा है, जिन शिलाओं ने उन्हें अपने हृदय में अंकित कर रखा है, जिन गीतों ने उन्हें अपने स्वर में चढ़ा रखा है, वे कैसे जीवित हैं? मुझे ऐसा लगता है कि वह संस्कृति आज रासायनिक प्रक्रिया में बाँटी जाने से पहले एक बार अपने पूर्व रूपों को ध्यान में आकलित कर रही है। एक बार चिराग की बाती बढ़ने के पहले बल रही है, एक बार नवीन रूपान्तर धारण करने के पहले वह विभिन्न परिप्रेक्ष्यों में निखरी जा रही है और उसके विभिन्न पंगिमाओं के चित्र उतारे जा रहे हैं। वह संस्कृति जिसके स्तम्भ थे इन्द्र के ऊपर भी विजय प्राप्त करनेवाले रघु, समुद्र पार से से लक्ष्मी को राक्षसों के चंगुल से छुड़ाकर लानेवाले राघवेन्द्र राम, हल की नोक से सीता को पैदा करनेवाले विदेह जनक, मृत्यु को जीतनेवाले भीष्म पितामह, भारत



(चित्रकार–सुधीर खास्तगीर) हुक्का पीते



विरही यक्ष—मेघदूत
(चित्रकार—असितकुमार हालदार)

[१६५६

को एक इकाई में अपने कौशल से बाँधनेवाले भगवान् कृष्ण, एक नये संवत्सर का प्रवर्त्तन करनेवाले विक्रमादित्य "चतुःसमुद्रान्तविलोलमेखला" पृथ्वी में कीर्ति-सौरभ बिखरानेवाले अश्वमेध पराक्रमी समुद्रगुप्त, हूणों की बाढ़ रोकनेवाले योद्धा स्कन्दगुप्त, बर्बर शक्तियों को सदा के लिए आत्मसात् करनेवाले यशोवर्मन् और बृहत्तर भारत के स्वप्न को साकार रूप देनेवाले पुलकेशी और राजराज चोल। वह संस्कृति जिसका मन्दिर आज भी खड़ा है। उसके द्वार पर आज भी गंगा-यमुना के अंकित रहते क्या कोई कह सकता है कि वह जीवित नहीं है? मध्य युग अपने खुले हुए छज्जों के साथ अर्धमण्डप के गलियारे के रूप में भीतर जाने के लिए आमंत्रित करता है; गुप्त युग मण्डप की तरह शोभमान है; मौर्य, शुंग, भारशिव और वाकाटक अंतराल के रूप में एक दूसरे से, संपृक्त भाव से, अबिद्ध खड़े हैं; कम्बोज, चीन, मलय, सुमात्रा, यवद्वीप, सिंहल, भोटदेश, मध्य एशिया, अरब और ईरान को बौद्ध-धर्म, ज्ञान-विज्ञान, कथा-कहानी, कला-शिल्प के अभिनव प्रकाश देनेवाले वातायन अभी भी खुले हैं; परिक्रमापथ में अब भी भारतीय विद्याओं की साधना अंकित है; भारतीय कलाओं का नृत्य खचित है; आलों में अब भी भारतीय ललनाओं की वह शक्तिशाली रूपमाधुरी प्रतिष्ठित है जिसमें सीता, सावित्री, विदुला, प्रभावती और दुर्गावती जैसे उज्ज्वल अभिधान दिये हैं। इस मन्दिर के चँदोवों के कोने में सौंदर्य की अमर-सृष्टियाँ—मालविका, रत्नावली, वासवदत्ता, शकुन्तला, कादम्बरी, महाश्वेता, राधा, पार्वती, रति, इन्दुमती और उर्वशी—एक से एक उत्कृष्ट मुद्राओं में शालभंजिका बनकर कुसुम और फल चयन कर रही हैं। इसके चारों ओर अब भी आर्य शील उप-मन्दिर के रूप में खड़े हैं। इसके शिखर पर मोक्ष का अमृत घट अब भी विराजमान है; इसके गर्भगृह के गह्वर में अब भी वैसी ही शान्ति है। किन्तु यह सब होते हुए भी उसके गर्भगृह में से प्राण-प्रतिष्ठित मूर्ति आज भी लुप्त है। उस मूर्ति का आधान वैसे ही पड़ा हुआ है। उसका कमलच्छत्र अभी भी किसी तरह बचा हुआ है, पर मूर्ति लुप्त है। और अमृत घट को भेदकर ऊपर जानेवाला त्रिशूल भी टूटकर अलग जा गिरा है। इसलिए सब कुछ होते हुए भी गर्भ-गृह के कोने में दीप नहीं जलता, मन्दिर में अगुरु की गंध नहीं फैलती, सीढ़ियों पर फूल नहीं बिखरते, देहली पर अक्षत नहीं बिछते, चन्दन नहीं छिड़का जाता, मण्डप में नृत्य नहीं होता, और गीत और वादित्र भी नहीं होते।

दर्शक आते हैं। वे मन्दिर पर नई दृष्टि डालते हैं, और वैभव पर नहीं, वैभव के संकेत पर दृष्टि अटक जाती है; मोक्ष पर नहीं, माधुरी पर उनका ध्यान विलय जाता है; तप पर नहीं, तप की बाधा पर तथा जीवन की सुविधा पर वे अटक जाते हैं। इसका कारण क्या हो सकता है? कारण यह है कि आराधना का केन्द्र-बिन्दु, जीवन की अन्तिम आकांक्षा और तपस्या की चरम सिद्धि इस स्थान से विचलित हो गयी हैं। जो दीप अखंड रूप से गर्भगृह के कोनों में जला करता था, वह अब भूले-भटके किसी संध्या में किसी गंगा के तट पर जलता है। वह आज बरगद, नीम, पीपल, या तुलसी या किसी चबूतरे पर किसी अशिक्षित नारी के अंचल की छाया में चुपके-चुपके जलता है। आज प्राणप्रतिष्ठा के वे मंत्र छोटे-छोटे संस्कार गीतों में विकीर्ण हो गये हैं। उनका अर्थ गीतों की स्वरलहरी में रूपान्तरित हो चुका है। इन स्वरलहरियों को ग्रहण करनेवाले श्रवण यंत्र कितने हैं? केवल इने-गिने। दीप जले तो कैसे? जो जीवन की अतल गहराई है, वहाँ पहुँचने के लिए अपार धैर्य चाहिए। जो मोक्ष की भी ममता छोड़कर ऊपर जाने की भावना है, उसके लिए निर्भयता और निर्लिप्तता का संबल चाहिए। जो उत्तरोत्तर विकास की एक शृंखला है, उसको ग्रहण करने के लिए संतुलित दृष्टि चाहिए तथा जो विश्वरूप की मोहकता है उसकी आँखों में भरने के लिए विशद और उदार दृष्टि चाहिए। दीपक की ज्योति हमारे नयनों की ज्योति से भी कुछ पाती है। हम जितनी दृष्टि रखते होंगे, उतनी ही दूर तक उस ज्योति में उसे निक्षिप्त कर सकेंगे।

हम जिस संस्कृति के मन्दिर को अभी देख रहे थे, उसमें यदि हमें मूर्ति नहीं दिखती तो यह हमारी दृष्टि का दोष है। जिस गाँव को पटवारी 'बेचिरागी' लिख चुका, उस गाँव को हम यदि नहीं देख पाते तो यह हमारी ही तिमिरान्धता है। दिया हमारे ही अन्दर नहीं जल रहा है। मेरे एक मित्र हैं। उन्होंने 'दियाधरी' शीर्षक से एक कविता लिखी है, जिसमें उन्होंने मालव धरती के अंचल में एक पहाड़ की चोटी पर रोज शाम को दिया जलने की

अनुश्रुति को एक बहुत बड़े चित्रपट पर खींचने की कोशिश की है। उसमें उन्होंने कहा है कि "हजारों वर्ष से हर शाम कोई उस चोटी पर शिव की मढ़िया में दिया जला जाता है और "कुन्दन-बोर" सा वह दिया उस चोटी के मत्थे पर चमक उठता है। जो जलाता है, उसका नाम बताना पाप है।" मैंने उनकी कविता जब उन्हीं के मुख से सुनी तो मुझे उस बेचिरागी गाँव की याद आयी, और संस्कृति के आर्य शिल्पोत्कीर्ण उस सुनसान मन्दिर की भी। एक जगह जब बाढ़ आ जाती है और मिट्टी जब नीचे-ऊपर हो जाती है, तब कभी-कभी हल की नोक में लगने से फूटनेवाली ठीकरियाँ किसी प्राचीन वैभव की याद दिला देती हैं। दूसरी जगह किसी सजे-सजाये मन्दिर के भीतर घुसते ही चमगादड़ के पंखों की फड़फड़ाहट युगों की उपेक्षा पर एक टीका कर देती है, और उन चमगादड़ों की घुटन पैदा करनेवाली गंध हमारी यशस्सुरभि को चुनौती दे देती है। हर साँझ जहाँ आरती की बेला में पाँचों 'वाद्य' बजते थे, जहाँ उस संगीत-समस्या में मेघ आकर मृदंग बन जाता था, वहाँ अब एक भयानक उदासी छायी हुई है।

लोग कहते हैं कि "एक साथ लाख-लाख चिराग जल उठे, कोई कोना अनालोकित नहीं रहा, देश में प्राण-संचार हो गया, नयी संस्कृति उठ खड़ी हुई, नयी फसल उग आयी। प्राचीनता के ध्वंस पर ही नवीनता का निर्माण हो रहा है, फिर उस प्राचीनता से इतना मोह क्यों?" मैं भी सोचता हूँ कि उनकी बात ठीक है। पर प्रश्न यह है कि नवीनता की शुरुआत कहाँ से मानी जाय, नवीनता के स्रष्टा मनुष्य की शुरुआत कहाँ से ली जाय और इस निर्माण को किस आधार पर खड़ा किया जाय? आज प्राचीनता का विश्लेषण करना पुण्य है, जंगल को और उपवन को बुलडोजर से नये सिरे से तोड़ना पावन कर्त्तव्य है। आज लोक-संस्कृति की सीता को आधुनिकता के रंगमंच पर लाना एक बहुत बड़ा परोपकार है। आज प्राचीन साहित्य और कला की कृतियों को अपने कमरे में सजाकर रखना एक फैशन है। पर उनकी पुकार सुनना, उनके प्राणों से संस्पृष्ट होना, उनकी साधना में तन्मय होना पाप है। यह कैसा विवेक और कैसा न्याय है? मैं प्रायः देखता हूँ कि लोगों में जब बड़ी दया उमड़ आती है तो वे लोक-गीतों में शोषण-तत्त्व ढूँढ़-ढूँढ़कर लोक-जीवन पर अपनी करुणा का जादू फेरने लगते हैं। यह भी देखा है कि संस्कृति की विरासत और भारतीय कला की शानदार परम्परा का मुक्त कंठ से लोग गान करते हैं, पर बहुत ही कम लोग उनमें हैं जिन्हें इन वस्तुओं के प्राण-भूत तत्त्वों का पता है; जिनकी आँखों के सामने, स्वप्न में ही सही, उन वस्तुओं का अधिदेवता प्राण धारण करके और आशा लेकर कुछ कहने आया है। अधिकांशतः तो ऐसे ही हैं जो इन सबसे हरी खाद का काम लेते हैं। सन या पाट कभी-कभी खेत में इसलिए बो कर दबा दिया जाता है कि वह उस खेत की क्षीण उर्वरा-शक्ति को पुनः जीवित कर दे। सन जितना ही घना होता है और जितना ही ऊँचे उठता है, उतनी ही उस लोभी खेतिहर की उमंग भी ऊँची उठती है। वह सोचता है कि जब यह सन उलट दिया जायगा और इसके रेशे-रेशे गलकर उस खेत की मिट्टी में मिल जायँगे तब खेत में अच्छी उपज होगी। बहुत से लोक-संस्कृति के ठेकेदार और प्राचीन वैभव के पक्षधर भी अपने ऊसर खेत में उर्वरता लाने के लिए इनका उपयोग करते हैं। वे अपने घर के चिराग को रोशन करने के लिए मन्दिर से दिया-बाती और तेल उड़ा लाते हैं क्योंकि 'घर में चिराग जलाकर मसजिद में चिराग जलाया जाता है।' यही तो युग का मुहाविरा है। जहाँ कहीं अपने को छिपाना होता है, अपने कलंक को छिपाना होता है, अपनी कमजोरी को छिपाना होता है, वहाँ तुरन्त दुहाई दी जाती है गीता की, उपनिषद् की, कालिदास की, मनु की, याज्ञवल्क्य की; और जहाँ कहीं अपनी विषय-पूर्ति करनी होती है वहाँ नवोन्मेष का गर्व उभर आता है। मैंने बराबर अनुतप्त भाव से यह पाया है कि गाँव की धरती चिल्ला-चिल्लाकर कहती है—"दूर हटो!" संस्कृति की मयूरी आज के 'एच' और 'टी' डिजाइन के कलाहीन सत-तल्लों पर जाने से इनकार करती हुई कहती है कि "मुझको बख्श दो। मुझे तुम्हारे गगनचुम्बी प्रासाद नहीं चाहिए। मैं अरण्य में पली थी, और यदि मन्दिरों के शिखरों पर और प्रासादों के सौधों पर रमी-घूमी थी तो वह इसलिए कि उन मन्दिरों में बादलों की मन्द-मन्द गर्जन जैसी मुरज की थाप थी, उन सौधों पर चपला की चमक और इन्द्र-धनुष का रंग था। उन सौधों पर देव-सेनानी कुमार के संभव का लोभ था, उन मन्दिरों में भारती के अर्चन की सुविधा थी।"

लोक-संस्कृति के उद्धार का नारा बुलन्द हो रहा है, पर लोक-संस्कृति कहती है कि "तुम लोक का उद्धार करो। मैं अपना उद्धार स्वयं कर लूंगी। तुम मेरी पुरइन के पात, बेला के फूल, आम्र पल्लवों की बन्दनवार, हल्दी-दूब के थाल, कदम्ब की डाल, नदियों का बहाव, दिये की जलन, माथे के सुहाग, कानों के यवांकुर, जूड़े के कुरबक, सूत के कंगन से अपने घर के आँगन या अपने मण्डप को अथवा अपने शरीर को सजाकर क्या करोगे ? मेरे ये शृंगार मेरी आत्मा के शृंगार हैं; और यदि तुम इस आत्मा को पाना चाहते हो तो तुम्हें अपने उन शहरी संस्कारों को विर्सजित करके आना होगा जिनके कारण तुम अपने को उद्धार-कर्त्ता मानते हो। उन अभिजात गुणों के बोझ को कन्धे से उतार कर आना होगा। अपने कर्त्तव्य के अहंकार की गठरी को कुएँ में डालकर आना होगा। तब तुम आत्मा की कोठरी तक पहुँच पाओगे। बोलो तैयार हो ? मैं जानती हूँ कि तुम तैयार न होगे, तुम्हारा यह दया-दाक्षिण्य किसी दूसरी नीयत से है। तुम दूसरों के कन्धों पर खड़े होकर बड़े होना चाहते हो। पर मैं खूब जानती हूँ कि तुम भस्मासुर हो, तुम जिसके मस्तक पर हाथ रखोगे, वही भस्म हो जायेगा। तुम जिन्हें वरद-हस्त मानते हो, वे सृष्टि का नहीं, ध्वंस का वरदान देते हैं। इसलिए जुए में हार कर मेरी आधी साड़ी लेकर नल मुझे छोड़कर चले गये तो क्या हुआ, मैं तुम्हारे इस आश्वासन के प्रभाव में नहीं आ सकती। मैं तो उस हंस से पूछूंगी जिसने मुझे उस नल से मिलाया था।"

मैंने इस प्रकार की कातर याचना उस शीर्ण जराकुला संस्कृति के मुख से भी सुनी है। कब और कहाँ ? यह याद नहीं। वह कहती थी "तुम जिस बेचिरागी गाँव के चक्कर में पड़े हो, वह मैं हूँ। मुझे लोग प्राचीन कहते हैं, मृत कहते हैं, पर मैं अभी जीवित हूँ क्योंकि मेरा नाम तुम्हारे कागदों से अभी कटा नहीं। लोग मेरे गले के हार में से नोच-नोचकर मोती अपने कानों में लगा चुके हैं। मेरा काश्मीर-तिलक लोगों ने अपने नख से कुरेद डाला है। मेरी मणि-कांची की लोगों ने एक एक कड़ी अलग कर डाली है। मेरी शाटिका के तार-तार उघेड़ डाले हैं क्योंकि उनमें पक्का सोना था। और मैं भिगोये हुए चने पर और एक सकोरे पानी पर पाली जा रही हूँ। जब किसी को बुद्ध बनाना होता है, तब उसके समक्ष मैं खड़ी कर दी जाती हूँ। मुझे देखकर वह बुद्ध बनने के लिए निकल पड़ेगा। जब किसी नाटक में प्रेत-छाया की जरूरत पड़ती है, तो मुझे वहाँ खड़ा कर दिया जाता है। जब किसी के ऊपर मूर्च्छा या अपस्मार का दौरा होता है तो मुझे झाड़-फूंक के लिए बुलाया जाता है, और जब कोई मरने को होता है तो मुझसे उसकी अन्तिम क्रिया के सम्बन्ध में राय ली जाती है। बहुत कम ऐसे अवसर आते हैं जब किसी सचमुच के मांगलिक अवसर पर मुझे भी बुला लिया जाता हो। आज की नई नवेलियाँ मुझसे चुहल करती हैं कि 'दादी ! तुम यह पुरानी भारी साड़ी क्यों पहनती हो ? ये अलंकार तुम्हें क्यों प्रिय हैं ? यह सिन्दूर का खफ्त तुम्हारे ऊपर क्यों सवार है ?' मैं उन्हें क्या उत्तर दूं ? वे कैसे समझ सकेंगी कि मेरे उसी शरीर के द्वारा सीता ने अग्नि-परीक्षा देकर अपना सोना चमकाया, पार्वती ने तप करके शिव को पाया, सुदक्षिणा ने सेवा करके रघु को पाया, शकुन्तला ने स्नेह में गल करके भी भरत को पाया, अशिक्षित गोपी ने हृदय की सहजता से परात्पर ब्रह्म को पाया। मैं इन आत्मविस्मृताओं को कैसे अपनी निर्मल मुकुर सी आत्मा दिखलाऊँ जिसके बारे में भारवि ने लिखा :—

अपवर्जितविप्लवे शुचौ हृदयग्राहिणि मंगलास्पदे ।
विमले तव विस्तरे गिरां मतिरादर्श इवाभिदृश्यते॥

जिससे कि वे अपनी आत्मा का दर्शन कर लें ?

"तुम यदि मुझे चिरागी बनाना चाहते हो तो स्वयं चिराग बनो। अपनी निःशेष वासना, अपनी निःशेष पार्थिव साधना और अपना निःशेष तेज जुटा सको तो जुटाओ। 'आत्मदीपो भव !' अन्धकार घिर आया है। अपने सत्य को इस धरा पर खड़ा करो, अपने तप का द्रव अपनी बुद्धि के बीच में डालो, करुणा की बाती पूरो, उसे परम्परा की अँगुलियों के बीच से आगे उकसाओ, तितिक्षा की शिखा से जलाओ, तभी यह अन्धकार मिटेगा। कर सकोगे ? मेरी यह मलिन आत्मा, मेरा यह अपरूप वेश, मेरी यह क्षीणता, तुम्हारी निःशक्तता, अशुचिता और कान्तिहीनता की ही प्रतिच्छाया है। तुम्हारी ही यह अर्जित विकृति है, तुम्हीं इस जाली को समेट सकते हो।"

मैं अकेले क्या उत्तर देता ? यह पुकार मेरे जैसे न जाने कितने हतभाग्य लोगों ने सुनी होगी और किंकर्त्तव्य-विमूढ़ होकर चुप हो गये होंगे। उन भाग्यशालियों ने भी सुनी होगी जो बहुत कुछ कर सकते हैं, और कौन जाने

कर ही रहे हों! हाँ, उन लोगों ने शायद न सुनी हो जो उस आत्मा की दुर्दशा कर रहे हैं। मैं केवल यही चाहता हूँ कि कम से कम उनके नाग-पाश से इन अधिदेवताओं की मुक्ति तो हो! मेरी कामना है कि इस बेचिरागी अभिधान के द्वारा दयनीय बनानेवालों की बुद्धि पर जो पाला पड़ गया है, वह दूर हो और नकली चिराग को चिराग मानकर चलनेवालों की आत्म-संतुष्टि की तो दवा हो, क्योंकि आत्म-संतुष्टि और नपुंसक उपेक्षा—यही दो हमारी राष्ट्र-साधना के सबसे बड़े शत्रु हैं। ये जब तक हैं, तब तक बेचिरागी गाँवों की संख्या बढ़ती ही जायगी। और जिस दिन हम इन पर विजय प्राप्त कर लेंगे, उसी दिन सारा अंधकार दीप के आलोक से नष्ट हो जायगा।

१९५६

❋ ❋ ❋

संस्कृत के महापंडित, ये जर्मन!

(कुर्टिउस और वाकर नागल)

डा० हेमचन्द्र जोशी, डी० लिट०

घटना प्रायः सौ साल पहले की है। उस समय जर्मन (और सभी प्राच्य विद्या-विशारद) वैदिक तथा संस्कृत भाषा के क्षीरसागर का सोलह आना मंथन करके वे अनमोल रत्न निकाल चुके थे कि इनके परिणामस्वरूप उनके सामने भारोपा भाषाओं का एक और विशालतर सागर आ गया जिसे मथकर और भी उत्तम रत्न निकालने की उन्हें सूझी। एक महापंडित कुर्टिउस भी भारोपा भाषाओं का मथन कर रहा था। उसने अपने बुढ़ापे में अपनी खोज पर चार चाँद लगाये और एक ग्रन्थ लिखा जिसका नाम था Crundriss Der Griechischen Philologie अर्थात् ग्रीक भाषाशास्त्र की आधारभूमि। इस ग्रन्थ में उसने सात आठ सौ ग्रीक भाषा के ऐसे शब्द एकत्र किये जिनका प्रचार आर्य-भाषाओं में प्रायः सर्वत्र था। उनमें मुझे एक शब्द 'हाल्स' मिला। यह ग्रीक भाषा का है, इसका अर्थ है लवण। यह मूल भारोपा भाषा का शब्द है अर्थात् यह उस समय वर्तमान था जब आयरिश, ब्रिटन, केल्ट, गौथिक, गॉल, आरमीनियन, रूसी, ईरानी, भारतीय आर्य आदि जातियाँ एक साथ एक देश में रहती थीं और उस समय यह शब्द बोला जा रहा था। इसका प्रमाण यह है कि यह तीन साढ़े तीन हजार वर्ष पुरानी आर्य भाषाओं में वर्तमान है। लैटिन में इसका रूप 'साल' है। 'सालिस' भी मिलता है। गौथिक में नमक को 'साल्ट' कहते थे, पुरानी स्कॅंडिनेविपन भाषाओं में भी इसका यही रूप था। आरमीनियन में, इसका रूप बिगड़ कर 'अड' हो गया है। अँगरेजी में 'सौल्ट', जर्मनी में जाल्त्स (Salz), फ्रेंच में 'सेल', पुर्तगाली में 'साल' आदि इसके रूप पाये जाते हैं। आर्य भाषाओं में नमक के ये समान रूप देखकर कुर्टिउस ने विचार किया था कि क्या लवण का यह रूप भारतीय आर्य-भाषा में न रहा होगा? उसके समय में किसी संस्कृत ग्रंथ में, और स्वयं वेदों में, यह शब्द नहीं पाया गया था। इसलिए उसने लिखा कि वैदिक, संस्कृत, पाली आदि भाषाओं में इसका समान रूप नहीं पाया जाता। किन्तु यदि कभी भारतीय आर्य में इसका व्यवहार होता होगा तो वह शब्द 'सरस्' रूप में रहा होगा। यह उसने भाषा-ध्वनि तथा व्युत्पत्ति-शास्त्र के प्रमाणित सिद्धांतों पर स्थिर किया। उसकी यह बात उसके ग्रन्थ में ही पड़ी रही। प्रायः पाँच वर्ष की बात है कि मैं अपने कोश के लिए सभी प्राप्य और चार-पाँच अप्राप्य संस्कृत कोशों का अध्ययन कर रहा था। एक दिन, अचानक देखता क्या हूँ कि अभिधान-चिंतामणि नामक हेमचंद्र सूरि के कोश में दिया गया है—'लवणं सरः' याने नमक को 'सरः' भी कहते हैं। अब इन आर्य शब्दों की आर्यता देखिए कि संस्कृत में सर का एक अर्थ तालाब भी है। ग्रीक हाल्स शब्द का अर्थ भी छोटा समुद्र, बड़ा तालाब है। हमारी सरस्वती देवी सरस् से बनी है अर्थात् बुद्धिमती, ज्ञानवती है। इस प्रकार सरस् का एक अर्थ

बुद्धि या ज्ञान है। ग्रीक 'हालेन' का अर्थ नमकीन पानी है किन्तु बहुवचन के रूप हालेस् का अर्थ है 'बुद्धि', 'ज्ञान'। लैटिन रूप साल के भी ये अर्थ हैं। इस हिसाब से संस्कृत 'सरस्' की व्युत्पत्ति सर-स् ठीक है या स-रस् यह स्थिर करना होगा। भाषाशास्त्र की आधुनिक वैज्ञानिक पद्धति ने संस्कृत, फलतः हिन्दी के सैकड़ों शब्दों की व्युत्पत्ति बदल दी है। उनका मूल रूप हमारे सामने निखर आया है। यह है यूरोपियन पंडितों की सरस्वती, और सौ-सैकड़ा ज्ञानपूर्ण शोध का परिणाम। परमपंडित गेऔर्ग कुर्टिउस की वाहवाही के दौंगड़े बरसाइये कि सौ साल पहिले भाषा-शास्त्र के बल पर संस्कृत को सुसंस्कृत कर गया।

यह सत्य वह सौ साल पहिले कैसे ताड़ गया? उत्तर सरल है। उसको यह तथ्य मालूम हो गया था कि ग्रीक 'ह्' अन्य यूरोपीय आर्य भाषाओं तथा भारतीय प्राचीन आर्य भाषा में 'स' रूप में पाया जाता है, और यूरोपीय आर्य भाषाओं का 'ल' भारत जाकर 'र' बन गया। यह भी वह अपने ज्ञान या विस्तृत अध्ययन के बल पर जान गया था कि ग्रीक 'ए' प्राचीन भारतीय आर्य भाषा में अ हो जाता है। फिर क्या था? उस ऋषि ने देख लिया कि 'हाल्स' का भारतीय रूप 'सरस्' ही हो सकता है।

अब एक दूसरे महापंडित की कथा सुनिये। किसी भाषा का पूरा ज्ञान प्राप्त करने के लिए उसका एक ऐसा कोश होना चाहिए जिसमें शब्द की व्युत्पत्ति और उसका क्रमशः विकास सोदाहरण दिया गया हो। बोए-टलिंक और रोट नामक जर्मन विद्वानों ने १८५२-७५ तक ऐसा संस्कृत-जर्मन बृहत्-कोश प्रकाशित किया। उसी समय ग्रासमान ने वैदिक कोश स-व्युत्पत्ति निकाला। संस्कृत व्याकरण पर बौप, बेनफे आदि लिख चुके थे। किन्तु इन व्याकरणों में पूर्णता नहीं आयी थी। इस-लिये एक विद्वान् ने अपना अध्ययन और जीवन वैदिक और संस्कृत भाषा के व्याकरण को अर्पण कर दिया। यह पंडित वाकरनागल है। इसने छः खडों में, और प्रायः छः हजार पृष्ठों में अपना संस्कृत-व्याकरण प्रकाशित किया है। इसने ह्विटनी, बेनफे, मोनियर विलियम्स आदि वैयाकरणों को बहुत पीछे छोड़ दिया है। यही नहीं, मेरी सम्मति में तो उसने स्वयं पाणिनि को पीछे छोड़ दिया है। उदाहरणार्थ, पाणिनि ने हमारी संख्याओं का रूप निरूपण नहीं किया है। वाकरनागल ने एक एक संख्या-शब्द की वह चीरफाड़ की है कि उनका जीता-जागता रूप हमारी आँखों के सामने अद्भुत रूप से खड़ा हो जाता है। जहाँ प्रत्ययों का उल्लेख है, वहाँ वे नये-नये प्रत्यय दिये हैं कि उनके प्रकाश से संस्कृत भाषा का नया रूप दिखायी देता है। कभी संस्कृत भाषा बोली जाती थी, अर्थात् वह जीवित थी। उस समय एक ही शब्द के कई रूप हो गये। ऋग्वेद में संधि के अर्थ जोड़, संध्या-काल, अंतर आदि हैं। किन्तु उक्त वेद में इसका अर्थ 'मेल, मिलाप, राजीनामा' नहीं है। अथर्ववेद में इस अर्थ में सं-धा आया है। बाद को संधि का मुख्य अर्थ यही रहा। आज भी हिन्दी में संधि इसी अर्थ में चलता है, पर सं-धा शब्द चलता नहीं। इसी भाँति बोली जाने के कारण, धन या संपत्ति के लिये रै बना। धनी के लिये रैवत् नहीं रेवत् का प्रयोग किया गया। इससे पता चला कि कहाँ रे और रै काम में आता था। रैवत का अर्थ 'धनी कुल की संतान' है। रेवती का एक अर्थ 'धनवाली' है। रै का बोली में रयि भी हो गया। रायस्काम में राय इसी अर्थ में है। सार यह कि वाकरनागल ने अपने वृहत् व्याकरण में इस एक शब्द के सभी रूपों पर विचार किया है और उन पर प्रकाश डाला है। कभी 'गम्' का अर्थ 'आना' भी था। अँगरेजी 'कम' (Come) इसका प्रमाण है, पर वाकरनागल ने यजुर्वेद और अथर्ववेद से दो स्थल उद्धृत किये हैं जिनमें नव-गत शब्द का अर्थ 'नया आया हुआ' है। वैदिक शब्द हमारी बोलियों में परंपरा से आये हैं। अवधी में यह नव-गत शब्द आज भी इसी अर्थ में बोला जाता है। अस्तु, वाकर-नागल ने अपने व्याकरण में दस हजार से ऊपर संस्कृत और वैदिक शब्दों पर प्रकाश डाला है। वैदिक और संस्कृत की कोई विचित्रता उसने बिना प्रकाश डाले न छोड़ी। इस प्रकार इस जर्मन महापंडित ने स्वयं पाणिनि को मात दी है। किन्तु इसकी एक बात ऐसी है कि इसने भविष्य को भी अपने ज्ञान के नयनों से देख लिया। वाकरनागल ने अपना व्याकरण (खंड १) १८९६ ई० में प्रकाशित कर-वाया। खित्ताइत या खत्ति भाषा बोगाजकोइ (टर्की) में ईंटों पर खुदी मिली, प्रायः चालीस वर्ष हुए ह्रौज्नी द्वारा पहले पहल पढ़ी गयी, बहुत बाद को मिली। जब खत्ति भाषा पढ़ी गयी तो पता चला कि इस प्रायः चार हजार वर्ष पुरानी आर्य-भाषा के बहुत से संज्ञा शब्द ऐसे

हैं जिनके अन्त में 'र्' और 'न्' दोनों जोड़े जाते हैं। उदाहरणार्थ खत्ति भाषा में रक्त के लिये 'एशर' शब्द है, और इसका दूसरा रूप 'एश्न' है। षष्ठी में एश्नस् होता है। इस सबसे पुरानी आर्य भाषा में ऐसा बहुत चलता था। ऋग्वेद में भी रक्त के लिये 'असृज्' शब्द है। यह कभी 'असृ' (असर्) रहा होगा। इसका दूसरा रूप 'असन्' है। ऋग्वेद में 'असृज्' का पंचमी और षष्ठी एकवचन 'अस्नस्', षष्ठी बहुवचन 'अस्नाम्' होता है। इससे 'असन्' रूप की पुष्टि होती है। यह तथ्य पाणिनि या संस्कृत के किसी अन्य व्याकरणकार को नहीं सूझा। वाकरनागल ने ही पहले पहल इस तथ्य का पता लगाया, और यह भी खत्ति भाषा का आविष्कार होने से बहुत पहिले। यह नियम प्रायः सभी पुरानी आर्ष भाषाओं में मिलता है। वेद में 'ऊधस्', 'ऊधर्' और 'ऊधन्' रूप गोस्तन (udder) के लिये मिलते हैं। विद्वान् और विदुर का एक ही अर्थ है। विदुर का एक रूप विदुल भी पाया जाता है। दूसरा रूप विदुष् भी है। इन सबका अर्थ 'विद्वान्' है। धनुष का संस्कृत में धन्वन् और धनुर् रूप भी मिलते हैं। अब और देखिये वै० अश्मन् का अर्थ 'पत्थर और आसमान' है। इसका दूसरा रूप भी कभी 'अश्मर्' रहा होगा, यद्यपि संस्कृत में यह रूप मिलता नहीं है। इस शब्द के प्राचीन अस्तित्व का प्रमाण अश्मरी 'पथरी रोग' का सुश्रुत आदि वैद्यक के ग्रन्थों में पाया जाना है। 'अश्मरी' 'अश्मर्' शब्द से ही निकल सकता है। ऐसे अन्य बीसियों शब्द दिये जा सकते हैं जो 'र्' और 'न्' में समाप्त होते हैं। इतना ही नहीं, कुछ संस्कृत शब्द जो कभी 'र्' में समाप्त होते थे, उनमें एक और प्रत्यय 'इत्' जोड़ दिया गया और 'र्' का रूप ऋ हो गया। ऐसा एक शब्द 'यकन' है जो पाली में 'यकृत्' का रूप है। शब्दों का षष्ठी का रूप बहुधा मूल रूप होता है। संस्कृत या वैदिक में षष्ठी में 'यक्नस्' पाया जाता है। इस 'यक्न' का पाली में मूल रूप 'यकन' हो गया। यह शब्द कभी 'यकर्' रहा होगा। इसके रूप लैटिन और ग्रीक में मिलते हैं। लैटिन में इसका रूप जेकुर (येकुर्) और ग्रीक में 'ऐपार्' और अवेस्ता में 'याकर्स' हैं। इन सब में 'र्' है। सो निश्चय ही 'यकृत्' का एक रूप कभी 'यकर्' रहा होगा। ऐसा दूसरा शब्द 'शकृत्' है। इसका एक रूप 'शकर्' रहा होगा, और दूसरा 'यकन' की भाँति 'शकन' या 'शकन्'। अब वाकरनागल के इस नये आविष्कार का माहात्म्य देखिये कि 'शकन' न मालूम कब का मर चुका है। वैदिक या संस्कृत में यह शब्द मिलता ही नहीं। किन्तु वाह री देशी प्राकृत! इस जनता की बोली में 'छगण' शब्द रह गया है। इसका अर्थ है 'गोमय, गोबर'। इससे देशी प्राकृत में 'छगणिया' शब्द निकला है। जिसका अर्थ है, 'गोइंठा, कंडा।' इससे स्पष्ट प्रमाणित हुआ कि अवश्य कभी कहीं 'शकृत्' का एक रूप 'शकन्' भी रहा होगा। इस छगण शब्द के प्राकृत ग्रन्थों में मिलने से यह निदान प्रमाणित हो गया कि इसका पूर्वज 'शकन' रहा होगा। 'छगण' हिन्दी में भी आ गया है और इसका अर्थ हिन्दी-शब्द-सागर में 'गोबर, कंडा' दिया गया है। वाकरनागल को लाख बार धन्य-धन्य कहिये कि 'शकन' कब का मर गया, कब का दफना दिया गया और सारे साहित्य यें लापता है, किन्तु वाकरनागल ने अपनी तीक्ष्ण ज्ञानचक्षु और प्रतिभा से उसे कबर से निकाल लिया तथा जीवित कर दिया। आज यह शब्द जीता जागता खड़ा है, और पुकार-पुकार कर बता रहा है: 'हिन्दी का 'छगण' मेरा वंशज है। मैं कभी बोला जाता था। किन्तु क्यों और कैसे मरा, यह स्वयं मैं नहीं जानता।' बताइये इस प्रकांड ज्ञानी को, जो भारतीय प्राचीन आर्य भाषा के भूत, वर्तमान और भविष्य के पर्दे खोल गया है, क्या कहा जाय? इसके सामने हमारे परम पंडित पानी भरेंगे। संस्कृत और वैदिक भाषाओं का ऐसा महापंडित अभी तक दूसरा न जन्मा।

अब एक और आश्चर्य देखिये। जमीन शब्द फारसी से हिन्दी में आ गया है। स्वयं ऋग्वेद में पृथ्वी के लिये 'ज्मा' शब्द आया है। इससे एक रूप निकला है जामर्य 'जमीन संबंधी।' इसका रूप अवेस्ता की भाषा में 'जेमइनि' है जो बाद को 'जमीन' हो गया। इससे यह मालूम हुआ कि यह नियम सभी भारोपा भाषाओं के लिये लागू है। इसी प्रकार हिन्दी का 'नाड़ा' शब्द (जिसका अर्थ इजारबंद है) संस्कृत 'स्नावत्' 'स्नायु' अवेस्ता में 'स्नावरे' रूप में हैं। इस हिसाब से 'नाड़ा' की व्युत्पत्ति 'स्नावन्' के दूसरे आर्य रूप 'स्नावरे' से है। वाकरनागल ने अपने प्रखर ज्ञानचक्षु से खत्ति (Hittite) भाषा के आविष्कार के पहले ही यह 'र्' और 'न्' के परस्पर परिवर्तन का नियम स्वयं प्राचीन भारतीय भाषाओं में देख लिया, और उसका स्वरूप हमारे सामने रख दिया।

इस आविष्कार का लाभ हिन्दी के लिए भी महान् है। सब आर्य भारतवासियों का परम कर्तव्य है कि इस जर्मन ऋषि को कोटिशः प्रणाम करें। इसके ऋण से वैदिक और संस्कृत भाषायें मुक्त नहीं हो सकतीं। जब तक उक्त भाषाओं का पठन-पाठन रहेगा तब तक वाकरनागल का ग्रन्थ 'प्राचीन भारतीय भाषाओं का व्याकरण' अमर रहेगा। म तो भारतेंदु की शैली पर यही कहूँगा :—

इन संस्कृतज्ञ जर्मनन पै कोटिन हिन्दू वारिये।

और विद्वान् अपने विषय के भले ही अधूरे हों पर जर्मन पंडित अपने विषय के सौ-सैकड़ा पूरे होते हैं, यह हमें कभी भूलना न चाहिए। यही नम्र निवेदन है। वराहमिहिर ने ठीक ही लिखा है :—

म्लेच्छा हि यवनास्तेषु सम्यक् शास्त्रमिदं स्थितम्।
ऋषिवत् तेपि पूज्यंते...... ....॥

[अप्रैल १९५७ की सरस्वती में डा० वासुदेवशरण अग्रवाल का एक पत्र छपा है। उसमें एक स्थान पर आया है :—"मेरी दृष्टि से वाकरनागल.....ने न कभी लिखा न सोचा, मुझे इनसे क्या लेना था, मैं अब भी नहीं समझ पाया।" यह वाक्य पढ़कर मेरे मर्म में बड़ी चोट पहुँची। हमारे विद्वान् एक जर्मन विद्वान् को, जो व्याकरण के क्षेत्र में अपना जोड़ नहीं रखता, क्योंकर इस प्रकार अवहेलना कर सकते हैं। फिर ख्याल आया कि वाकर-नागल के वैदिक तथा संस्कृत व्याकरण का अभी अँगरेजी में अनुवाद नहीं हो पाया है, अतः डा० अग्रवाल उसे पढ़ने से वंचित रह गये हैं। इस कारण वे उनके सम्बन्ध में ऐसी हेय सम्मति देने का साहस कर सके हैं। वाकर-नागल का ग्रन्थ पढ़ जाने पर ऐसी सम्मति कोई नहीं दे सकता। डा० साहब की सम्मति से प्रेरित होकर यह छोटा लेख लिखा है जिससे हिन्दी-भाषी पाठक जर्मन विद्वानों के अगाध पांडित्य तथा वैदिक; संस्कृत, हिन्दी आदि पर उनके महान् उपकार से परिचित हो सकें।

—लेखक]

१९५७

❀ ❀ ❀

प्राचीन भारत में पुलिस

पं० गंगाशंकर मिश्र

जनता के जानमाल की रक्षा राज्य का प्रथम कर्त्तव्य है। प्रजा का परिपालन और दुष्टों का निग्रहण शुक्र ने राजा का परम धर्म बतलाया है—**नृपस्य परमो धर्मः प्रजानां परिपालनं, दुष्टनिग्रहणं नित्यं** इसके लिए ही पुलिस रखनी पड़ती है। प्राचीन भारत में पुलिस के पूरे प्रबन्ध का पता लगता है। पुलिस दो प्रकार की होती है—एक तो साधारण और दूसरी उसकी सहायता करने के लिए खुफिया। साधारण पुलिस के दो भेद मिलते हैं—एक तो शहरों की और दूसरी गाँवों की। 'शहर कोतवाल[१]" के लिए कौटल्य ने 'नागरिक' शब्द का प्रयोग किया है। आजकल इसका अर्थ होता है—'नगर का वह निवासी, जिसे निर्वाचन आदि का अधिकार प्राप्त हो।' नगर-निवासियों के लिए 'वात्स्या कामसूत्र' में 'नागरक शब्द भी आया है। परन्तु इससे अभिप्राय है शहर के शौकीनों से जो गाँवों के गँवारों से भिन्न हैं। 'नागरिक' शब्द के सम्बन्ध में एक बात और ध्यान रखने योग्य है। वह नगर का अध्यक्ष है। 'पुलिस' शब्द भी लैटिन 'पोलीशिया' से निकला है, जिसका सम्बन्ध 'पॉलिस' अर्थात् नगर से है। नागरिक का पद बड़ी जिम्मेदारी का पद माना गया है। 'अर्थशास्त्र' के द्वितीय अधिकरण के 'नागरिक प्रणिधि' नामक ३६ वें अध्याय में इसके कार्यों का तथा पुलिस के नियमों का पूरा विवरण मिलता है। कई कुलों की रक्षा के लिए इसे एक 'गोप' (चौकीदार) नियुक्त,

१—प्राचीन शब्द 'कोटपाल' से ही बिगड़कर 'कोतवाल' शब्द बना है। 'कोट' दुर्ग या किला को कहते हैं, उसका रक्षक 'कोटपाल' हुआ। बंगाल के 'पाल' वंशीय राजाओं के प्राचीन लेखों में 'कोटपाल' का कई स्थानों पर उल्लेख मिलता है।

करना चाहिए, उसे सबमें रहनेवाले स्त्री-पुरुषों के वर्ण, गोत्र, नाम, आय-व्यय और उनकी संख्या जाननी चाहिए। गोपों के ऊपर बड़े-बड़े हलकों में 'स्थानिक' (थानेदार) रखा जाय। इन अफसरों को सब बातों का पूरा-पूरा पता मिलते रहना चाहिए। शहर की रक्षा के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि 'बदमाशों को वहाँ न घुसने दिया जाय।' इसके लिए प्रत्येक धर्मशाला या सराय के निरीक्षक का यह कर्त्तव्य है कि वह ऐसे तपस्वी, श्रोत्रिय आदि को छोड़कर, जिन्हें वह स्वयं जानता है, बाकी सब ठहरनेवालों की सूचना गोप को देता रहे। व्यापारी लोग अपने यहाँ काम करनेवाले या यात्रियोंको भले ही अपनी दूकानों में ठहरा लें पर जो देशकाल के विपरीत सौदा बेचनेवाला हो, या परायी चीज का व्यवहार करता हो, उसकी सूचना नागरिक को अवश्य देनी चाहिए। इसी तरह मद्य बेचनेवाले, मांस बेचनेवाले, पका अन्न बेचनेवाले और वेश्याएँ भी अपने परिचित आदमियों को भले ही ठहरा लें, पर जो खूब मद्य पीते हों या रुपया उड़ाते हों, उनकी सूचना गोप या स्थानिक (थानेदार) को दे दी जाय।

यदि हथियार आदि से लगे हुए घावों की कोई छिपे तौर पर चिकित्सा कराता हो, या रोग अथवा मरी आदि फैलानेवाले द्रव्यों का छिपाकर उपयोग करता हो, तो चिकित्सक को चाहिए कि उसकी सूचना स्थानिक को दे दे। यदि वह ऐसा न करे तो स्वयं अपराधी समझा जाय। इसी तरह जिस घर में यह कार्य हो, उसका मालिक यदि सूचित न करे तो उसे भी दंड दिया जाय। घर के मालिक को चाहिए कि 'वह घर से जानेवाले और घर में आनेवालों की सूचना गोप को देता रहे।' सूचना न देने पर यदि वे लोग रात में कहीं चोरी करें तो मालिक-मकान भी उसके लिए जिम्मेदार माना जाय। नगर के भीतर या बाहर बने हुए देवालयों, तीर्थस्थानों या श्मशानों में किसी हथियार आदि के घाव लगे हुए, निषिद्ध वस्तुओं को पास रखनेवाले, शक्ति से अधिक भार उठाये हुए, डरे या घबराये हुए, घोर निद्रा में सोये हुए, लम्बा सफर करने के कारण थके हुए या अन्य अजनबी आदमियों पर निगाह रखनी चाहिए। इसी प्रकार नगर के भीतर खाली पड़े हुए मकानों में, शिल्पशालाओं में, मद्य की दूकानों में पका मांस बेचनेवाले होटलों में, जुआरियों तथा पाखंडियों के रहने के स्थानों में भी बदमाशों की देख-रेख रखनी चाहिए। रात के प्रथम और अन्तिम भाग की ६-६ घड़ियों को छोड़कर दोनों बार बाजे (घंटा या तुरही) का ऊँचा शब्द करना चाहिए, जिसमें कि उस समय के बीच कोई भी आदमी सड़कों पर न निकले, जो निषिद्ध समय पर निकले उसे दंड दिया जाय। ऐसे समय पर जो पुरुष शंकनीय स्थानों में पाये जायँ, जिनके पास संदिग्ध वस्तु या चिह्न हों या जिनके अपराधों का पहले से पता हो, उन्हें पकड़कर उनसे पूछना चाहिए कि 'तुम कौन हो, कहाँ से आये हो, किसके हो और यहाँ तुम्हारे आने का क्या प्रयोजन है?' इन प्रश्नों का उत्तर मिलने पर उसकी व्यवस्था की जाय। परन्तु यदि कोई उस निषिद्ध समय में प्रसूता स्त्री, चिकित्सक, शव उठाने, हाथ में प्रकाश लेकर जाने, सूचना आदि देने या आग लग जाने के कारण बाहर निकले और जिसके पास कोतवाल की मुहर की हुई आज्ञा हो, वह न रोका जाय।

नागरिक (कोतवाल) का यह कर्त्तव्य है कि वह सदा उदक स्थान (नदी, तालाब, कुएँ आदि), मार्ग (गली सड़कें), भूमि (स्थलप्रदेश), छन्नपथ (सुरंगादि), वप्र (सफील, पियाऊ), प्राकार (परकोटा) और रक्षा बुर्ज, खाई आदि की अच्छी तरह देख भाल करता रहे। खोये हुए, भूले हुए तथा कहीं पर स्वयं छूटे हुए भूषण, अन्य सामान या प्राणियों को भी उस समय तक सुरक्षित रखे जब तक कि उसके मालिक का ठीक-ठीक पता न लग जाय। जेल (बन्धनागार) का प्रबन्ध भी उसीको करना चाहिए। बालक, बूढ़े, बीमार, अनाथों को वह राजा की जन्मगाँठ आदि के अवसरों पर छोड़ता रहे। नगर में आग न लगने पाये और लगने पर उसके बुझाने का प्रबन्ध किया जाय, यह भी उसीका काम है। शहर की सफाई रखने की भी जिम्मेदारी उसी पर है। सड़क पर मिट्टी या कूड़ा-करकट डालनेवालों, कीचड़ करनेवालों, राजमार्ग, देवालय, कुआँ, तालाब आदि को गन्दा करनेवालों को पकड़कर दंड देना उसका कर्त्तव्य है। जो मरे हुए पशुओं को नगर के समीप या बीच में छोड़ दे, उसको भी वह दंड दे। इसी तरह जो नियत मार्गों से मुर्दे न ले जायँ या जो श्मशान भूमि को छोड़कर किसी दूसरी जगह मुर्दे जलायें, उनको भी पकड़कर वह दंड दे। म्युनिसिपल और पुलिस दोनों के अधिकार एक ही अफसर को देकर

बड़ी बुद्धिमत्ता दिखलाई गई है। आजकल ऐसा न होने से दोनों विभागों में प्रायः खटपट होती रहती है और किसीका भी काम उचित रूप से नहीं होता। शुक्र लिखते हैं कि 'घरों की पंक्ति के सिरे पर द्वार (चौकी) कायम करना चाहिए। यामिक, प्रहरी (पहरुआ या पुलिस) रात में डेढ़-डेढ़ घंटे पर गलियों में गश्त लगाता रहे और चोर-बदमाशों को दूर रखे—**वीथिषु यामार्द्धे निशि पर्यटनं सदा। कर्त्तव्यं यामिकैरेव चौर-जारनिवृत्तये॥** इन यामिकों को प्रतिदिन बदलते रहना चाहिए, जिससे ऐसा न हो कि उनका आसपासवालों से अधिक मेल-जोल हो जाय। लोगों को अदालत में हाजिर करना भी पुलिस का ही काम है। 'राज-पुरुष' अदालत का एक अंग माना गया है। 'प्रतिहारक' भी इसी को कहते हैं। शुक्र के शब्दों में इसको हथियार चलाने में कुशल, दृढ़ शरीरवाला, फुर्तीला, ठीक रीति से सम्मन तामील करनेवाला, पर सत्य, विनीत अथवा नम्र होना चाहिए—**शस्त्रास्त्रकुशलो यस्तु दृढांगश्च निरालसः। यथायोग्यं समाहूयात् प्रणम्रः प्रतिहारकः॥** गाँवों के चौकीदार को जो लोग वहाँ आयें या बाहर जायें उनसे पूछताछ करनी चाहिए और जमानत लेकर उनको छोड़ना चाहिए। पर इसका यह अभिप्राय नहीं है कि भले आदमियों को तंग किया जाय। जिनका चरित्र-शील विख्यात है, उन्हें ऐसे ही आने-जाने देना चाहिए '**निर्गच्छन्ति च ये ग्रामाद् ये ग्रामं प्रविशन्ति च। तान् सुसंशोध्य यत्नेन मोचयेद्दत्तलग्नकान्॥ प्रख्यातवृत्तशीलांस्तु ह्यविमृष्य विमोचयेत्।** बड़े-बड़े गाँवों में एक 'साहसाधिप' जमादार या दारोगा भी रहना चाहिए, जो बदमाशों को वहीं दंड दे सके, पर इसको न अधिक क्रूर और न अधिक नम्र ही होना चाहिए '**नातिक्रूरो नातिमृदुः साहसाधिपतिश्च यः।**' राजा को नगरों-नगरों, गाँवों-गाँवों में 'ग्रामाध्यक्ष' (मुखिया), साहसाधिप (दारोगा), भागहार (मालगुजारी वसूल करनेवाला), लेखक (पटवारी), शुल्कग्राह (चुंगी वसूल करनेवाला) और प्रतिहारी (चौकीदार) इन ६ कर्मचारियों को नियुक्त करना चाहिए, **षट्कमेतन्नियोक्तव्यं ग्रामे ग्रामे पुरे पुरे।** यात्रियों के आराम के लिए मार्गों की रक्षा बड़ी आवश्यक है। मार्ग में जो-जो पीड़ा देनेवाले हों उनका नाश कर देना चाहिए—**पान्थप्रपीडका ये ये हन्तव्यास्ते प्रयत्नतः।** सड़कों पर जो पान्थशाला (सराय) बनी हों, उनमें भी ठहरनेवालों के पूरे पते आदि वहाँ के अध्यक्ष को लिखना चाहिए, और उनकी रक्षा के लिए प्रहरी रखना चाहिए। वह सबेरे उन्हें जगाकर ग्राम की सीमा तक पहुँचा दे—**कुर्यात् सहायं सीमान्तं तेषां ग्राम्यजनः सदा।** इस तरह उनकी रक्षा की जिम्मेदारी दूसरे हलके के चौकीदार पर हो गई।

साधारण पुलिस को अपराधियों के ढूँढ़ निकालने में सहायता देना खुफिया का काम है। इसके लिए 'गुप्तचर' या 'गूढ़ पुरुष' शब्द आते हैं। कौटिल्य ने इनके कई भेद बतलाये हैं। प्रगल्भ छात्र रूप में रहनेवाला गुप्तचर 'कापटिक' कहलाता है। इसको धन देकर और सत्कार द्वारा उत्साहित करते रहना चाहिए कि 'देखो, जहाँ कुछ हानि होती हो, हमें बतलाना।' धन के लोभ में फँसाकर बेचारे विद्यार्थियों से आजकल भी जासूसी कराई जाती है। संन्यासी वेष में रहनेवाला गुप्तचर 'उदास्थित' कहलाता है। उसे अपने साथ धन और विद्यार्थियों को लेकर जहाँ कृषि, पशुपालन तथा व्यापार के स्थान हों वहाँ जाकर डेरा जमाना चाहिए और रोज भंडारे करना चाहिए। जो रोज जीमने पहुँचें, उनसे कहना चाहिए कि तुम सरकारी काम करो, जब तुम्हारे भत्ते का समय आये तब यहाँ आ जाना। किसान के वेष में रहनेवाला गुप्तचर 'गृहपतिक' कहलाता है। वह कृषि के लिए निर्दिष्ट भूमि में जाकर 'उदास्थित' की तरह काम करे। गरीब व्यापारी के वेष में रहनेवाला गुप्तचर 'वैदेहक' कहलाता है। उसे व्यापारी अड्डों पर रहना चाहिए। मुंडित तथा जटिल वेष में रहनेवाला गुप्तचर 'तापस' कहलाता है। उसे कहीं नगर के पास ही रहकर धूनी रमानी चाहिए। महीने-दो महीने में वह प्रकाश रूप से दो-एक मुट्ठी अन्न खाता रहे, पर छिपे-छिपे चाहे हलुआ-पूड़ी ही उड़ाये। इसके शिष्यरूप में पास रहनेवाले चर यह प्रसिद्ध कर दें कि 'यह बड़ा महात्मा योगी है और भविष्य में होनेवाली सम्पत्ति को बतला देता है।' उसके पास आनेवाले लोगों के शारीरिक चिह्नों को अच्छी तरह नोट कर लें और आपस में इशारों से काम चला लें। जीविका की कामना रखनेवाले, दरिद्र प्रौढ़ा विधवाओं को भी इस काम पर रखना चाहिए। वह 'परिव्राजिका' या 'भिक्षुकी' रूप में घरों में घुस जायें और भीतरी बातों का पता लगा लायें। बाल सँवारने, गाने-बजानेवालियों के रूप में भी वे घरों में प्रवेश करें। खाना पकाने, स्नान कराने

हाथ-पैर आदि दबाने, बिस्तर बिछाने, हजामत बनाने, कपड़ा पहनानेवालों आदि के रूप में रहकर गुप्तचरों को पता लगाना चाहिए। कुबड़े, बौने, जंगली, गूंगे, बहरे, मूर्ख, अन्धे आदि के वेष में रहकर भी उन्हें अपना काम निकालना चाहिए। यह सब काम तो नीच हैं, परन्तु इस पर बड़ा जोर दिया गया है कि 'इन सबके लिए ऐसे लोगों को रखना चाहिए जो स्वयं पवित्र हों।' जब तीन गूढ़ पुरुष, जो आपस में एक दूसरे को न जानते हों किसी समाचार को एक ही तरह से बतायें, तभी उसे ठीक समझना चाहिए। जो बार-बार परस्पर विरुद्ध समाचार लायें, उन्हें अकेले में पिटवाया जाय अथवा नौकरी से अलग कर दिया जाय (अ० शा० १, अध्याय ११, १२)। शुक्र ने लिखा है कि जो राजा झूठे खुफिया की खबर नहीं लेता है, वह म्लेच्छ और प्रजा का प्राण तथा धन हरनेवाला है—**असत्यवादिनं गूढं चारं नैव च शास्ति यः। स नृपो म्लेच्छ इत्युक्तः प्रजाप्राणधनापहः॥** पर खुफिया का काम भी बड़ा कठिन है, उसे कितने ही लोगों का बैर लेना पड़ता है, इसलिए राजा का यह भी कर्तव्य है कि अफसरों और सरकारी विभागों की घुड़की-धमकी से उसकी रक्षा करता रहे—**प्रकृतिभ्योधिकृतेभ्यो गूढचारं सुरक्षयेत्॥**

खुफिया पुलिस का खर्च सरकारी खजाने को ही उठाना पड़ता था। साधारण पुलिस के बड़े-बड़े अफसरों की तनखाहें भी सरकार की ओर से ही दी जाती थीं। पर प्रहरी (चौकीदार) आदि का भार जनता पर ही रहता था। खजाने में भी जनता का ही रुपया जाता है और इस तरह भी उसे ही खर्च करना पड़ता है। पर इसमें एक बड़ा लाभ यह है कि जनता जिनको देती है उनपर स्वयं निगरानी रख सकती है। प्रहरी गाँव के ६ मुख्य कर्मचारियों में माना गया है। उसका भी हिस्सा गाँव के अन्न में लगता है। आजकल भी गाँवों के चौकीदार इस परम्परा को चलाये जाते हैं, पर गाँववालों के प्रति उनकी वह जिम्मेदारी नहीं है, जो पहले थी। तब जहाँ ही उसके काम में गफलत हुई कि गाँववालों ने अन्न देना बन्द किया। उसका तुरंत प्रभाव पड़ता था। पर आजकल होता क्या है कि रात को चौकीदार खर्राटे लगाता है और हर महीने के पहले सप्ताह में थाने जाकर अपनी पूरी तलब ले आता है। उसके विरुद्ध जनता की शिकायत सुनता ही कौन है? इस तरह पहले एक ओर तो उस पर नीचे से जनता का नियंत्रण रहता था और ऊपर से राजा का, जिसकी ओर से वह नियुक्त होता तथा अधिकार प्राप्त करता था। एक बड़ा कड़ा नियम तो यह बना हुआ था कि 'यदि चोरी का माल न मिले तो उसकी कीमत राजा को अपने खजाने से देनी होगी'—**अनवाप्य च स्वकोशादेव दद्यात्** (विष्णुस्मृति ६-६६-६७)। यह बड़ा प्राचीन नियम है जिसका उल्लेख गौतम, आपस्तम्ब आदि सूत्रों में भी मिलता है। इस पर राजाओं ने यह नियम बना रखा था कि यदि चोरी के माल का पता न लगे तो उसका मूल्य वहाँ के पुलिसवालों के वेतन से काट लिया जाय—**चौररक्षाधिकारिभ्यो राजाऽपि हृतमाप्नुयात्।** (अग्निपुराण २२३—२२)।

चोरियाँ रोकने में इसका बड़ा प्रभाव पड़ता था। पुलिस के दुर्गुणों पर कड़ी निगाह रखी जाती थी और उनको दंड देने की पूरी व्यवस्था थी। कौटिल्य ने लिखा है कि यदि कोई पुलिस कर्मचारी दासी, वेश्या या कुलीन स्त्री के साथ बलात्कार करे तो उसे क्रम से प्रथम साहस, मध्यम साहस और प्राणदंड दिया जाय। यदि मद्य पीकर वह प्रमाद करे तो उसके अपराधानुसार 'उसे दंड दिया जाय' (अ० शा० २, ३६, ५०, ५५)। आजकल पुलिस में दो बड़े दोष पाये जाते हैं, झूठा मुकदमा गढ़ लेना या किसी से जबर्दस्ती उसका बयान लिखवा लेना। शुक्र ने इन दोनों को ध्यान में रखा है और लिखा है कि साहस (डकैती, वध आदि) के मामलों को छोड़कर राजा या पुलिस को अपनी ओर से कभी मुकदमा न चलाना चाहिए,—नोत्पादयेत् स्वयं कार्यं राजा नाप्यस्य पूरुषः। यदि किसीसे कोई कुछ जबर्दस्ती लिखवा ले, तो उसे चोर की तरह दंड देना चाहिए—बलाद् गृहणन्ति लिखितं **दंडयेत् तांस्तु चौरवत्।** स्वामी के कार्य में लोभ से घूस कभी न लेना चाहिए— **उत्कोचग्रहणं नव स्वामिकार्याविलोभनम्।** सारे पुलिस विभाग का एक प्रधान अध्यक्ष रहता था, जो 'राष्ट्रपाल' (डाइरेक्टर जनरल आफ पुलिस) कहलाता था। कौटिल्य ने इसका १२००० पण, (एक प्राचीन चाँदी का सिक्का) वार्षिक वेतन बतलाया है (५-३-८)। इन सब पर राजा का निरीक्षण रहता था। शुक्र लिखते हैं कि उसे हर साल गाँवों, पुरों, देशों (प्रान्तों) में जाकर देखना चाहिए कि अधिकारीगण

(अफसरलोग) प्रजा में किसे सुख देते हैं और किसे दुख। इसका विचार करके ही व्यवहार करना चाहिए और उसे अपने अफसरों का नहीं बल्कि प्रजा का पक्ष लेना चाहिए—**ग्रामान् पुराणि देशांश्च स्वयं संवीक्ष्य वत्सरे। अधिकारिगणैः काश्च रंजिताः काश्च कर्षिताः॥ प्रजास्ताः साधुभूतेन व्यवहारं विचिन्तयेत्। न भृत्यपक्षपाती स्यात् प्रजां पक्षं समश्रयेत्॥** (१, ३७४, ७५)।

१९५७

❀ ❀ ❀

अमरीकन गृहिणी की समस्याएँ

श्रीमती शीला शर्मा

गृहिणियों और नारियों की समस्याएँ सभी देशों में बहुत कुछ एक सी ही होंगी क्योंकि देश पृथक् हो जाने से 'माँ का हृदय' और 'पत्नी का हृदय' तो दूसरी तरह का हो नहीं जाता। वह तो सब देशों की प्रत्येक नारी में एक सा ही रहेगा। यदि भिन्न-भिन्न देशों की नारियों में इस संबंध में कुछ ऊपरी भेद दिखलायी देता है तो यह उस देश की सामाजिक अवस्था के कारण ही हो सकता है।

प्रकृति प्रत्येक परिस्थिति में संतुलन उत्पन्न कर देती है। इस क्षेत्र में भी एक विचित्र सा संतुलन दिखलायी पड़ता है। अमरीका में यदि स्त्रियों को बहुत स्वतंत्रता प्राप्त है तो उन्हें उस स्वतंत्रता से उत्पन्न समस्याओं का भी सामना करना पड़ता है। इसके विपरीत हमारे देश में समाज ने स्त्रियों पर अनेकों प्रतिबंध लगा रक्खे हैं। किन्तु, मानों बंधनों से उत्पन्न कष्टों की क्षतिपूर्ति के हेतु, हमारे देश की स्त्रियाँ इन प्रतिबंधों के अन्दर से उत्पन्न सुखों का भोग भी कर रही हैं।

साधारण अमरीकन स्त्री के हृदय में भय ने कितना गहरा स्थान बना लिया है कि उसका हम अनुमान भी नहीं कर सकते। हम भाग्यवादी हैं। बहुत कुछ अपना भय वा अपनी आशंकाएँ भाग्य के नाम पर भगवान् के सिर पर भी डाल देते हैं। बहुत कुछ कष्ट अपने कर्मों का फल समझ कर भोगने के लिए तैयार रहते हैं। ये दो तो वे प्रमुख द्वार हैं जिनके द्वारा हम अपनी बहुत सी आशंकाओं और भयों को बाहर निकाल फेंकते हैं। अमरीका निवासियों की मनोवृत्ति हमसे भिन्न है। इस कारण उनके शरीर तथा व्यक्तित्व पर शंकाओं और भयों का अधिक प्रभाव पड़ता है। विवाह की सफलता-असफलता भी हम भाग्य पर ही छोड़ देते हैं। यही कारण है कि हमारी नारियाँ आशंकाएँ लेकर वैवाहिक जीवन में प्रवेश नहीं करतीं। अमरीका में विवाह रूप और सौंदर्य के दाँव पर होता है। ज्यों-ज्यों वहाँ की स्त्रियों की उम्र बढ़ती है त्यों-त्यों अपने शारीरिक आकर्षण के संबंध में उनके हृदय के अन्तस्तल में संदेह, भय या अविश्वास उत्पन्न होने लगता है। शायद इसी कारण सौंदर्य का उनके जीवन में इतना अधिक महत्त्व हो गया है। भारत में वे स्त्रियाँ भी, जो अपनी युवावस्था में किसी कारणवश अपने शारीरिक आकर्षण के संबंध में चिंतित रहती हैं, अवस्था बढ़ने पर और दो-चार बच्चे हो जाने पर निश्चित हो जाती हैं। अमरीका में उल्टा ही है। वहाँ आयु के साथ ही चिंता बढ़ने लगती है। इसी कारण वे अपने यौवन को पकड़कर रखना चाहती हैं। उन्हें अपने गृहस्थ आश्रम से इतना आश्वासन नहीं मिलता कि वे चिंता छोड़कर थोड़ी ढील डालकर सुख से रह सकें। गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करने के पश्चात् हृदय में दबा हुआ भय उनको हर समय सतर्क करता रहता है। वे अनजाने में ही अपनी गृहस्थी को रूप और सौंदर्य के दाँव दे देकर आगे खींचते रहना चाहती हैं।

साधारण अमरीकन परिवार में माता के प्रति पुत्र का कोई भी उत्तरदायित्व नहीं होता। विवाह होते ही पुत्र अपना घर अलग बसा लेता है, और माँ के घर से उसका केवल एक ऊपरी सम्बन्ध रह जाता है। एक अमरीकन महिला का कहना है कि वहाँ जब कोई लड़का विवाह करता है तो उसको अपना नया

घर बसाने की सबसे बड़ी खुशी यह होती है कि अब जो मन में आयेगा वह करेगा। जो एक थोड़ी बहुत माँ की रोक-टोक थी, वह भी गयी। तात्पर्य यह है कि अमरीका में साधारणतः माँ को यह आश्वासन प्राप्त नहीं है कि बुढ़ापे में मेरा बेटा मेरी देख-भाल करेगा। इधर भारत है, जहाँ 'बुढ़ापे का सहारा', 'बुढ़ापे की लकड़ी', 'आँखों का तारा' बेटे के पर्याय हो गये हैं। यहाँ जो बेटा बूढ़ी माँ की सेवा न करे उसको समाज से ऐसे लांछन मिलते हैं कि और कुछ नहीं तो लोक-लाज के भय से ही उसको अपनी बुढ़िया माँ की सेवा करनी पड़ती है। माँ के मन में बेटे के पैदा होते ही यह बात जरूर बैठ जाती है कि अब मेरा बुढ़ापा सँभालनेवाला आ गया---चाहे बाद में बेटा अयोग्य ही क्यों न निकल जाय। यह वह आश्वासन है जो कि अनेक बन्धनों में रहनेवाली भारत की नारी को प्राप्त है, और अमरीका की साधारण नारी सब सुविधाओं के रहते हुए भी उससे वंचित है।

ये ही छोटे-छोटे आश्वासन हैं जो भारत में स्त्रियों को इतना निश्चिन्त कर देते हैं कि वे विवाह के दो-चार वर्षों के बाद ही अपने रूप-शृंगार की ओर से इतनी लापरवाह हो जाती हैं कि लगता है कि वे युवती ही नहीं हैं। इन्हीं छोटे-छोटे आश्वासनों की कमी अमरीकन बहिनों को शीघ्र ही किसी न किसी 'नर्व्‌स' रोग (स्नायु सम्बन्धी विकारों) का शिकार बना देती है। इस सम्बन्ध में जो सर्वेक्षण हुए हैं उनसे पता चलता है कि संसार में 'नर्व्‌स' (स्नायु) के रोग सबसे अधिक अमरीका की स्त्रियों में होते हैं। जिस देश की स्त्रियों को सभी भौतिक और कानूनी सुविधाएँ प्राप्त हों, असाध्य समझे जानेवाले रोग भी जिस देश में साध्य हों, उस देश की नारी किसी रोग से सबसे अधिक पीड़ित हो, इस पर आश्चर्य ही होता है। यदि नर्व्‌स का रोग (स्नायु विकार) शरीर के किसी अंग की खराबी से उत्पन्न होता तो वहाँ उसकी कोई न कोई सुई निकल आती या चीरफाड़ करके उसको ठीक कर दिया जाता। परन्तु स्नायु-विकार रोग कोई आंगिक (आर्गेनिक) रोग तो है नहीं। स्नायु के संतुलन का आधार तो मानसिक है। मन शान्त है, तो चित्त भी शान्त है। मन अशान्त है तो चित्त भी अशान्त है। और यदि चित्त बराबर अशान्त रहता है तो कुछ समय तक तो सहन-शक्ति सहारा देती है, परन्तु कुछ समय के बाद बिना बात ही घबड़ाहट, अजीब सा चिड़चिड़ापन, अन्दर ही अन्दर एक झुँझलाहट, हाथ-पैरों में पसीना आना, हर समय एक जल्दबाजी आदि मनस्ताप के भांति भाँति के लक्षण प्रकट होने लगते हैं। (प्रत्येक व्यक्ति की प्रकृति के अनुसार भिन्न लक्षण प्रकट होते हैं।) चित्त और मन तभी उद्विग्न होते हैं जब उनमें कोई भय बना हो, कोई चिन्ता बनी हो। आश्चर्य यह है कि उन्हें स्वयं इसका ज्ञान नहीं है कि यह क्या है जो उन्हें मनस्ताप रोग (न्यूरोसिस) का शिकार बनाये हुए है।

अमरीका की बहिनों के पास सब कुछ है, पर इसी आश्वासन की कमी है। यह उनकी सामाजिक व्यवस्था का फल है। भारत की नारी को परिवार की निरन्तर सेवा करने के कारण ही कुटुम्ब से इस आश्वासन की प्राप्ति होती है। अमरीकन महिलाओं को इस सेवा का सुअवसर ही नहीं प्राप्त होता। सम्भव है कि सेवा का अवसर प्राप्त होने पर उनको भी यह आश्वासन मिल सके। यह बात दूसरी है कि इस सेवा की भावना को दूषित करके उसके नाम पर अब हम स्त्रियों की बलि चढ़ाने लग गये हों। पर हमारे इस दोष का कारण हमारी सामाजिक व्यवस्था नहीं, हमारा स्वार्थ है।

महँगाई की समस्या भी एक ऐसी समस्या है जिससे गृहिणी का गहरा सम्बन्ध है। वहाँकी महँगाई का चक्कर वहाँके लोगों का स्वयं निर्मित है, और अब उसमें वे लोग खुद ही फँसकर चक्कर काटते रहते हैं। पहिले सभी प्रकार की आवश्यक और अनावश्यक सुविधाओं को प्राप्त करने के लिए तरह-तरह की मशीनें अपने घर में लगा लीं, और फिर उनके मूल्य का 'इन्स्टालमेंट' चुकाने के लिए घर के बाहर कहीं काम खोजो और नौकरी करो। यदि घर के बाहर ही जाकर काम करना है तो घर के भीतर काम करने में क्या दोष है? तरह-तरह की नयी मशीनों और सुविधाओं को प्राप्त कर लेने पर भी घर के भीतर थोड़ा बहुत काम तो करना ही

पड़ता है, और फिर यह देखकर कि उनके दाम भरने के लिए पुरुष की आय अपर्याप्त है, स्त्री को भी कहीं न कहीं अपने उपयुक्त कोई काम खोजना पड़ता है। माता-पिता दोनों के देर तक घर से बाहर रहने पर अलक्षित बालकों की एक नयी सामाजिक समस्या उत्पन्न हो गयी है। और गृहिणी को उस सुख और संतोष की प्राप्ति नहीं होती जिसे कि गृहणी का हृदय खोजता है और जो परिवार तथा बच्चों के निरंतर साथ रहने, उनकी देखभाल करते रहने तथा उनकी सेवा करने से ही मिल सकता है। घर के बाहर की नौकरी तथा घर के दुहरे काम का प्रभाव भी स्त्रियों के स्वास्थ्य पर बाद में पड़ने लगता है—हालांकि उनके पति भी गृह-कार्य में उनका कुछ न कुछ हाथ बँटाते हैं। परन्तु विश्व के विधान में स्त्री व पुरुषों के दो भिन्न-भिन्न काम हैं। प्रसव के पश्चात् उन्हें केवल कुछ दिनों का अवकाश दे देने से ही उनकी मातृत्व की भावना को शांति नहीं मिल जाती है। महँगाई के भूत, स्वावलम्बन की भावना, नौकरी खो जाने के भय आदि के कारण वह अपनी इस भावना को कुचल-कर प्रसव के बाद अवकाश समाप्त होते ही अपने काम पर चली जाती है। यही कारण है कि सुविधा की इन मशीनों के चक्कर में पड़कर वहाँकी स्त्री स्वयं एक चलती-फिरती मशीन बन गयी है।

एक अमरीकन महिला जो कुछ दिनों के लिए यहाँ आयी है, भारत की नारियों की कढ़ाई-बुनाई, अचार-मुरब्बे डालने या तस्वीरों पर सलमें-सितारे की जड़ाई आदि का काम लेकर बैठने को बड़ी ईर्ष्या से देखती है। उसे ऐसा मालूम होता है कि अमरीका में महिलाएँ यह भूल गयी हैं कि कभी स्त्री को अपना भी इतना समय मिलता है कि वह अपनी रुचि का काम कर सके और अपनी रुचि के अनुसार अपने अन्दर की दबी हुई कला की प्रवृत्ति को साकार रूप दे सके। उनके लिए शायद स्त्रियों के हाथ मशीनों के बटन दबाने के लिए ही बने हैं। यह याद रखना चाहिए कि रुचि का काम करना ही मनोरंजन है। मनोरंजन के नाम पर यहाँ से वहाँ भागना मनोरंजन नहीं है। कृत्रिम मनोरंजन में संतुष्टि की प्राप्ति नहीं होती। केवल उस संतुष्टि की प्राप्ति की आशा से ही वे एक मनो-रंजन के पश्चात् दूसरे मनोरंजन की खोज करती रहती हैं। और यहाँ हमारी स्त्रियाँ घर बैठे ही मनो-रंजन कर लेती हैं। रुचि का कार्य कर लिया, रुचि की बातचीत हो गयी। बस, मनोरंजन हो गया! कभी अरुचि की बात करके झगड़ पड़ें, यह बात दूसरी है।

महरी को प्रति मास आठ रुपये दे देना आठ सौ रुपये की बर्तन साफ कर लेने की मशीन खरीद लेने से अधिक हितकर है, इसका ज्ञान मुझको वहीं हुआ। महरी का पेट भरा और हमको जरा सा अवकाश मिला कि पैर फैलाकर अपनी बुनाई व कढ़ाई उठा लें। कपड़ा धोने की मशीन खरीद लेने से यह अच्छा है कि धोबी कपड़ों की गठरी उठाकर चला जाय। हम पैसे के बल पर अपने स्वार्थ के कारण यदि एकाएक किसी को उसके पेशे से वंचित करना चाहेंगे तो चालू सामाजिक व्यवस्था में असंतुलन उत्पन्न करके बेरोजगारी (अन-एम्प्लायमेंट) की समस्या को ही जन्म देंगे। और समाज की बेरोजगारी की समस्या जब अपना बृहद् रूप धारण करेगी तो जिस धन को बचाने के लिए हमने धोबी की जेब काटकर कपड़ा धोने की मशीन खरीदी है, उस धन को वह हमसे ब्याज सहित वसूल कर लेगी। तब हम सभी महँगाई के चक्कर में पिसते हुए दिखायी देंगे, और उस समय हम यह भूल जायेंगे कि यह हमारी ही करनी का फल है।

आज अमरीका में स्त्रियाँ (अपने परिवारों सहित) खाना बाहर खा रही हैं, और कपड़े घर में धो रही हैं। भारत में हम खाना घर में खाते हैं, कपड़े बाहर धुलवाते हैं। यह बात दूसरी है कि हम असभ्य कहे जायँ। पर यह विशुद्ध सत्य है कि साधारण गृहिणी को स्वयं रसोई बनाकर पति-पुत्रों को भोजन कराने में संतुष्टि की प्राप्ति होगी। कपड़े धोने में, खाना बनाने से कम ही संतोष या सुख मिलेगा। यदि हम कपड़े धोने के काम को परिवार के लिए भोजन बनाने से अधिक सभ्य मानते हैं तो यह कहने में मुझे तनिक भी संकोच नहीं है कि हमारा सभ्यता का दृष्टिकोण ही दूषित है।

जिस अमरीकन महिला के पास मैं ठहरी थी वह बड़ी सम्पन्न थी। भोग व सुविधा की सब प्रकार की सामग्रियाँ और साधन उसके घर में उपलब्ध थे। वह स्वयं डाक्टर थी, और उसका पति भी डाक्टर

था। अपनी घर-गृहस्थी की बातें करते सयम उसने मुझे बतलाया कि अमरीका में ४० प्रतिशत स्त्रियाँ विवाह के बाद भी बाध्य होकर धन उपार्जन करती हैं। मैंने जब उसका कारण पूछा तो मुझे पूरा विश्वास था कि वह उत्तर देते समय 'महँगाई' का नाम अवश्य लेगी। परन्तु उसका उत्तर सुनकर मुझे बहुत ही आश्चर्य हुआ। उसने कहा विवाह के पश्चात् पति वैवाहिक जीवन का उत्तरदायित्व अपने ऊपर नहीं समझते हैं। वे जो धन कमाते हैं उसको अपनी रुचि की चीजों पर व्यय करना चाहते हैं। 'रेस' की महँगी मोटरें, मूवी फिल्म, 'यॉट स्टीमर', ये सब चीजें उनकी रुचि की सूची पर चढ़ी रहती हैं, और उनमें इतना संयम नहीं होता कि वे अपनी इच्छा को रोक सकें। परिणाम यह होता है कि गृहस्थी ढोना स्त्रियों के मत्थे पड़ जाता है। अपनी दोनों लड़कियों की ओर कुछ चिन्ता से देखकर वे कहने लगीं, "इस कारण हमें इस ओर विशेष ध्यान रखना पड़ता है कि लड़कियों में अपने पैरों पर खड़े होने की सामर्थ्य बनी रहे।"

उस समय वहाँ भारत से हजारों मील दूर बैठी हुई मैं एक साथ सोचने लगी कि आखिर हम अपने बालकों को उत्तरदायित्व किस तरह सिखाते हैं। प्रति वर्ष श्रावणी पूर्णिमा को बहिन से राखी बँधवाना पहले तो अवश्य ही बालकों को खिलवाड़ और मिठाई मिलने का एक बहाना मात्र मालूम होता है। परन्तु अवस्था बढ़ने के साथ-साथ उसी खिलवाड़ में उनके हृदयों में यह भाव कैसे स्थान पा जाता है कि हँस-हँसकर राखी बाँधती हुई इस बहिन का समय-कुसमय में उत्तरदायित्व मेरे ही ऊपर है? इसका उत्तर भारत की परम्परा ही दे सकती है। विवाह के पश्चात् केवल पात्र बदल जाता है, भावना वही रहती है।

अमरीका में सबसे अधिक विवाह-विच्छेद स्त्री-पुरुष की रुचि की पटरी न बैठने (इन्कम्पैटिबिलिटी आफ टेम्परामेंट) अर्थात् एक साथ न रह सकने के कारण होते हैं। वास्तव में किसी के साथ रहने या निर्वाह करने के लिए उसके सुख का ध्यान तथा अपनी इच्छाओं का दमन प्रायः निरन्तर करना पड़ता है। और यह सहज रूप से जीवन के हर व्यवहार में बरता जा सके, इसलिए बच्चों को उसका अभ्यास बाल्यकाल से ही हमारे घरों में टोक-टोक कर कराया जाता है। अमरीका में अधिकतर तरुण पति तथा पत्नी दोनों ही, अपनी ही रुचि-पूर्ति में विश्वास रखते हैं। अपनी रुचि और सुख-सुविधाओं को ही प्राथमिकता देते हैं। फिर अन्त में विच्छेद अनिवार्य ही हो जाता है। बालपन से इच्छाओं पर संयम रखने में अभ्यस्त न होने के कारण ही वे अपने आप ही इस समस्या को जन्म देते हैं। अमरीका के परिवारों में यह 'इन्कम्पैटिबिलिटी' एक गहन समस्या है।

ऐसा नहीं है कि अपनी इन सामाजिक समस्याओं की ओर अमरीकावासियों का ध्यान न गया हो। जैसे हम उत्तरोत्तर पश्चिमीय बनते जा रहे हैं, वैसे ही वैसे वे विचारों में उत्तरोत्तर भारतीय बनते जा रहे हैं। सामाजिक पतन हमारा भी हो गया है। हमारे प्रायः सभी स्वस्थ सामाजिक नियम दूषित हो गये हैं। उनमें से दुर्गन्धि निकलने लग गयी है। हमें अपने नियमों को फिर से स्वस्थ करना है। जिस देश के सामाजिक नियम स्वयं अस्वस्थ हों उसको इस बात का अधिकार ही नहीं है कि वह दूसरे देशों के सामाजिक नियमों पर टीका करे। परन्तु हममें और अमरीका में एक महान् अन्तर है।

उन्हें एक बीज बोना है। उसके अंकुर की रक्षा करके उसको वृक्ष का रूप देना है। उन्हें यह देखना है कि उसकी जड़ें अन्दर धँस जायँ, और वह अपनी मांगलिक छाया सारे देश पर फैला सके। हमारे यहाँ यह वृक्ष खड़ा है, किन्तु बीहड़ हो गया है। उसके नीचे बेकार घास-फूस और झाड़ियाँ उग आयी हैं जो उसके पोषक तत्त्वों को हड़प रही हैं और उस वृक्ष को कमजोर कर रही हैं। इसकी डालियाँ मनमाने वन्यरूप से इधर-उधर फैल गयी हैं। हमें केवल इसकी वन्य-डालियों को काट छाँटकर और इसके नीचे उगी झाड़ियों और घास-फूस को उखाड़ फेंककर उसे स्वस्थ बनाना और सुन्दर रूप देना है। नये वृक्ष को उगाने की अपेक्षा एक उगे पेड़ को काट-छाँटकर स्वस्थ करना और सुन्दर रूप देना आसान है। यह बात दूसरी है कि हम अपने आलस्य और मूर्खता के कारण इतना भी न कर सकें।

१९५८

पं० मोतीलाल नेहरू ने अखबार की एक प्रति के पाँच सौ रुपये दिये

श्री मनमोहन गुप्त

मैंने अनेक सम्पादकों, प्रकाशकों तथा पत्र-विक्रेताओं की कहानियाँ पढ़ी हैं, किन्तु इस क्षेत्र में मेरे अनुभव कुछ अजीब हैं। जब कृपलानीजी के सम्पादन में 'इंडिपेंडेंस' (Independence) नाम का एक साइक्लोस्टाइल किया हुआ साप्ताहिक पत्र अँग्रेजी में बनारस से सन् १९२०-२१ में छिपकर निकाला जाता था तब बनारस के सिगरा रोड (जिसे अब शायद विद्यापीठ रोड कहते हैं) पर स्थित श्यामदास के बगीचे वाली कोठी के चील-छतवाले कमरे में मैं उसे छापा करता था। उसे कमरा कहना कमरे का अपमान है। उसे अलमारी ही कहना चाहिये। यानी सारे मकान के ऊपर दो ढालुआ खपरैलें थीं। जहाँ दोनों मिलती हैं, वहाँ उनका जोड़ छिपाने के लिए उसके नीचे एक चपटी छत बना दी गयी थी। इस छत और खपरैल के बीच में एक दुछत्ती (Attic) निकल आयी थी जिसमें कठिनाई से खड़ा हुआ जा सकता था। उसमें घुसने का एक चोर द्वार था। उसीमें बाँस या लकड़ी की सीढ़ी लगाकर चढ़ते थे। वहाँ साइक्लोस्टाइल मशीन थी। उसी पर लोगों की आँखें बचाकर, कान बचाकर, हैन्डिल घुमाकर हम लोग वह पत्र छापते थे। छापनेवालों में एक थे राजाराम भाई। कभी-कभी शायद एक विचित्र भाई भी होते थे। उन राजाराम भाई को बहुत दिनों से देखा नहीं, किन्तु उन विचित्र भाई को अभी उस दिन भी देखा था। वे बड़ी तेजी से बड़ी-सी नई मोटर हाँकते हुए कहीं जा रहे थे। मोटर के सिरे पर सरकारी सिल्क का तिरंगा फहरा रहा था। जोरों से धूल उड़ाती हुई मोटर अवश्य ही किसी जन-सेवा कार्य में भाग रही थी, और मैं धूप से परेशान अपनी 'गरीब निवाज़' यानी साइकिल पर सवार एक सम्पादक के दफ्तर में तगादे की गरज से भागा जा रहा था। उसी समय उनकी एक झाँकी भर मिली थी। अखबारों में यों तो उनका नाम पढ़ता ही हूँ कि उत्तर प्रदेश के माननीय स्वायत्त शासन मंत्री श्री विचित्र नारायण शर्मा।

मैं उम्र में उन दोनों से बहुत छोटा था। मैं हैंडिल घुमा-घुमाकर उसे छापता और फिर दरवाजे-दरवाजे जा-जाकर उसकी प्रतियाँ बेचता। और लोग भी बेचते थे। शायद रुपये में आठ, यानी दो आने की एक प्रति बेचता था। आज, यानी इस महँगाई में भी, यों दो आने का जो अखबार बिकता है उसे देखते हुए उस युग में साइक्लोस्टाइल किये हुए शायद सोलह पृष्ठ के उस अखबार का दाम अधिक ही था। किन्तु जितने छाप लेते थे, बिक सब जाते थे। लोगों ने मान लिया था कि कृपलानीजी की सम्पादन शक्ति अद्भुत है। अन्यथा फुलस्केप आकार के १६ पृष्ठों के अखबार का दो आना देकर उसे कौन लेता जब कि उन दिनों पायनियर' और लीडर' आदि एक-एक आने में, और 'आज' आदि दो-दो पैसे में बिकते थे?

इस प्रकार अखबार छापने और बेचने का प्रथम अनुभव वहीं हुआ। उसकी ओर ग्राहकों का ध्यान आकर्षित करने के लिए तरह-तरह की आवाजें लगाता था। हाकरी बोली में चिल्लाता था—"ब्रिटिश सरकार की छाती कूटनेवाला अखबार इन्डिपेन्डेन्स जरूर लीजिये!" "साम्राज्यशाही के दाँत तोड़नेवाला पत्र अवश्य पढ़िये!"

कई बार पुलिसवालों ने खदेड़ा। मगर पायें तब न! बाल-सुलभ अभ्यास या क्षिप्रता के कारण अँगूठा दिखाकर, जीभ निकालकर, काशी की विश्वविख्यात गलियों में फुर्र हो जाना उन दिनों मेरे लिए बाएँ हाथ का खेल था। काशी की गलियों की महिमा तो स्वामी विवेकानन्द ने अमरीका तक में गायी थी। भला मेरे जैसे एक नन्हें-से छोकरे को छिपाना उनके लिए कौन-सी बड़ी बात थी? एक बार किसी ने दादा यानी कृपलानीजी से कहा भी था कि यह छोकरा एक दिन पकड़ा जरूर जायगा, तो उन्होंने कहा था "पकड़ा वह क्यों जायगा? सरकार सा....की हिम्मत होगी तो मुझी को पकड़ेगी।"

बेचारा पुलिस का सिपाही कैसे जान सकता था कि मैं जिसकी छाती कूटने की बात करता हूँ उससे और मेरे अखबार के सम्पादक से इतना मधुर सम्बन्ध था!

इसके बाद सुखदेव (भगतसिंह के साथ जिनको फाँसी हुई थी), मनीन्द्र बनर्जी (फतेहगढ़ जेल में अनशन से जिनकी मृत्यु हुई), मार्कण्डेय (मनमाद बमकाण्ड में जो शहीद हुए) तथा मैंने मिलकर १९२६ के अन्त से १९२८

के आरम्भ तक एक पत्र 'क्रान्ति की पुकार' नाम से निकाला था। सम्पादक मैं था, यों प्रेरणा तथा परामर्श सभी का होता था।

इसके लिए हमारे पास साइक्लोस्टाइल भी न थी। हाथ से लिखकर ही उसकी प्रतियाँ तैयार करनी पड़ती थीं। वह सचित्र भी था। चित्रकार मनीन्द्र बनर्जी थे। प्रत्येक बार भिन्न चित्र होता था। उसके चित्र इस प्रकार के होते थे कि जैसे किसी भारतीय युवक को अजगर रूप में ब्रिटिश सरकार लीले जा रही है और भारत माता त्रिशूल से उस अजगर को मार रही है, या भारत माता को बेड़ी से जकड़कर कुछ गोरे लिये जा रहे हैं और भारतीय युवक पिस्तौलों से उन गोरों को मार रहे हैं, अथवा जंगली सुअर भारत माता के खेतों को चर रहे हैं, उन वन्य वाराहों के सिर पर अंग्रेजी हैट है, भारतीय युवक बर्छी भाले आदि से उनका शिकार कर रहे हैं आदि आदि।

चित्र रंगीन होते थे। चित्र पहले पेन्सिल से बनाकर फिर उसमें रंग भरे जाते थे। प्रत्येक अखबार की प्रत्येक प्रति में प्रत्येक बार चित्र बनाना पड़ता था और हर बार रंग भी भरना पड़ता था। जब काशी के पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट जितेन्द्र बनर्जी को गोली से घायल करने के अपराध में मनीन्द्र पकड़ लिया गया तो चित्र बनना बन्द हो गया था। अखबार तो निकलता ही रहा। इसी का बंगला अनुवाद करके रवीन्द्र मोहन कार बंगाल में भी उसे निकालते थे। वे चित्रकार और फोटोग्राफर भी थे। हम उनके चित्रों की फोटो लेकर ब्लाक बनवाते और फिर छपाकर सैकड़ों प्रतियाँ बाँट देते थे। किसीके नीचे लिखा होता था "माता धर्मः, माता स्वर्गः, माताहि परमंतपः। "किसी के नीचे लिखा रहता 'माता के हत्यारों को यमद्वार दिखाना ही पुण्य है', 'हत्यारों की हत्या ही परम अहिंसा है।' चित्र भी इन्हीं के अनुसार होते थे। कभी अपने अखबार तथा चित्रों की प्रतियाँ भी गुमनाम महात्मा गांधी को भेज देता था। उनका उल्लेख बिना किये ही गाँधीजी अपने पत्र में उपदेश पूर्ण सन्देश हम लोगों को दिया करते थे। सुखदेव ने तो महात्माजी को जेल से एक खुला पत्र लिखा था जिसका उत्तर भी गांधीजी ने दिया था। फिर कलकत्ते में रवीन्द्र को जब जेल हो गयी तब चित्र बन्द करने पड़े थे। सुखदेव अन्त तक इस पत्र का भाषान्तर करके उसका उर्दू संस्करण लाहौर से निकालते रहे।

ऊपर मैंने बतलाया है कि इंडिपेंडेंस को मैं कैसे बेचता था, किन्तु 'क्रान्ति की पुकार' को बेचने का तरीका और ही था। तब मेरी उमर भी बढ़ गयी थी। मैं चुपके-चुपके सधे हुए लोगों के पास जाता, धीरे से पत्र देता और पैसा लेकर दबे पाँव खिसक जाता। ग्राहक के पास जाता तो भी पुलिस की आँख बचाकर। अखबार कमर से लपेटकर ऊपर से कोट पहिन लेता था। ग्राहक के कमरे में यदि कोई होता तो तब तक चुपचाप बैठा रहता था जब तक कि वह उठकर चला नहीं जाता। किन्तु ग्राहक ज्यों ही आतुरता से व्यग्र चेहरे, जलजलाती आँखों, बड़े-बड़े बालों और जरूरत से बड़े कोट को पहिने हुए छोकरे को देखते थे त्यों ही बुलाकर दूसरे कमरे में ले जाते, तुरंत अखबार लेते और एक आने की जगह जो भी होता देकर कहते 'अच्छा, अब जाओ।'

हमारे श्रेष्ठ ग्राहकों में कई थे। जैसे, एक प्रति के लिए बाबू शिवप्रसाद गुप्त दस से पच्चीस रुपये तक देते थे, चाँद प्रेस के रामरखसिंह सहगल ने पाँच से कम कभी नहीं दिये, कानपुर के गणेश शंकरजी विद्यार्थीजी दस, बीस, कभी-कभी तीस रुपये भी दे देते थे। फिर उनमें भी पंडित मोतीलाल नेहरू सर्वश्रेष्ठ थे। पहले पहल जब मैं पहुँचा तो उनकी अट्टालिका देखकर ही कुछ घबड़ा गया। यों तो बहुत से अट्टालिकावालों को मैंने नजदीक से देखा था, किन्तु यहाँ हर कदम पर टोकना मुझे जरा अखरा। यानी पहले ही साइकिल हाथ में देखकर एक ने कहा—क्या है?

मैंने थूक निगलते हुए कहा—"पंडितजी से मिलना है।"

उसने सिर से पैर तक मुझे देखा और बेधड़क कह दिया 'नहीं हैं।'

निराशा से पस्त हो गया। मैंने पूछा—"कब तक आयेंगे?"

रुखाई से जवाब दिया—"बाहर गये हैं।"

सौभाग्य से दो तीन लड़कियों के साथ वे बाग में दिखाई पड़े। मैंने उँगली से दिखाते हुए कहा—"हैं तो!"

तब उसने पता नहीं—बड़े साहब या बड़े बाबू या बड़े पंडित जी,—ऐसा ही कुछ कहा। मैंने कहा—"हाँ, हाँ, उन्हीं से मिलना है।"

जब मैं उँगली दिखा रहा था तब शायद उन्होंने मुझे देख लिया था। वे आगे बढ़ आये। साथ में लड़कियाँ भी आईं। उन्होंने पूछा—"किससे मिलना है?"

मैंने प्रणाम करने को हाथ उठाया। ध्यान नहीं रहा कि हाथ से साइकिल पकड़े हुए हूँ। खड़रर खम्! पास ही एक गमला था। उसी पर साइकिल गिरी। उन्होंने मेरी लज्जा ढाँकने के हेतु कहा--"कोई बात नहीं। आओ।"

साइकिल उठाकर खम्भे के सहारे खड़ी करके मैं आगे बढ़ गया। आगे वे और पीछे-पीछे मैं। लड़कियाँ वहीं छूट गईं। वे मुझे सीधे एक कमरे में ले गये। कमरे के अंदर से एक दरवाजा था। उसका दरवाजा उन्होंने स्वयं खोला। सामने ही एक शीशा टँगा था। उसकी ओर इशारा करके कहा--"देखो!"

मैंने अपने को देखा। एः हेः! धूल के कारण बिल्कुल भूरा बन्दर बना हुआ था। उन्होंने कहा--"देखा?"

मिनमिनाकर मैंने कहा--"बनारस से यहाँ तक आने में ऐसा हो गया।"

उन्होंने पूछा--"क्या साइकिल से ही आये हो?"

मैंने नम्रता से सिर हिलाकर कहा--"जी हाँ।"

मुझे एक कमरे के अन्दर करके और बाहर से दरवाजा बन्द करते हुए उन्होंने आज्ञा की तौर से कहा--"नहा-धोकर तब निकलना। सब कुछ उसमें है।"

प्रेम से नहाया। कपड़े आदि पर ब्रश किया। बाहर निकला तो देखा कि उसी कमरे में वे बैठे किताब पढ़ रहे हैं। मुझे देखते ही कहा--"रैडी?"

मैंने कहा--"जी हाँ।"

तब उन्होंने पूछा--"चाय पियोगे या काफी?"

मैंने कहा--"कुछ भी नहीं। धन्यवाद।"

जोर देकर कहा--"तो जाओ खाना खा आओ।"

मैंने धन्यवाद देते हुए कहा--"सामान्य जलपान कर लूँगा, नहीं तो आलस पकड़ लेगा। फिर मैं जा नहीं पाऊँगा।"

उन्होंने पूछा--"आज ही जाना जरूरी है?"

मैंने कहा, "जी हाँ।"

एक बार सिर से पैर तक देखा। फिर लम्बी साँस लेते हुए बोले "कैसे आये हो यहाँ?"

मैंने कमरे में चारों ओर एक बार नजर घुमा ली। पता नहीं कि वे कैसे भाँप गये। झट कहा--"कोई डर नहीं। बताओ।"

कमर से लिपटे हुए कागज खोले। दो पन्नेवाले अखबार की तीन प्रतियाँ थीं। एक प्रति उन्हें दी। चित्र को देखा। नाम पढ़ा। नीचे 'हिन्दुस्तान समाजवादी प्रजातंत्र सेना' पढ़ते हुए कहा--"तुम इसके सदस्य हो?"

मैंने कहा--"जी हाँ।"

तब उन्होंने पूछा--"और क्या है?"

मैंने कहा--"सब इसी की प्रतियाँ हैं?"

फिर उन्होंने कैसे तस्वीर बनती है, कैसे लिखता हूँ, आदि-आदि अनेक प्रश्न मुझसे किये। धीरे-धीरे जिरह करके मेरे अनजाने में ही मुझसे सभी बातें निकलवा लीं। जो कुछ भी बात थी वह सब मैंने उन्हें सत्य-सत्य बता दी। उनके व्यक्तित्व और पितातुल्य बर्ताव से तब तक मैं उनके चरणों में इतना बिक चुका था कि यदि वे कहते कि चलो तुम लोगों का अड्डा देख आवें, तो मैं निस्संकोच होकर उन्हें साथ ले जाता। जब सब बातें सुन लीं तो उन्होंने हाथ बढ़ाकर अन्य प्रतियाँ भी ले लीं।

मुस्कराते हुए बोले--"चार प्रतियाँ हैं। कुल चार आने के लिये तुम इतनी दूर साइकिल से आये?"

मैंने बड़ी नम्रता से कहा--"मुझे कोई निश्चय नहीं है कि ये चार आने भी मुझे मिलेंगे।...मैं तो आया था आपको इसी बहाने यह बताने कि देश में कोई भी आन्दोलन हो तो हम भी शक्ति भर सब कुछ करने को तैयार हैं। कारण, आप हमारे देश के चोटी के नेताओं में से हैं।... हाँ, यदि आपसे बातचीत न हो पाती तो अवश्य ही मुझे दुःख होता।"

थोड़ी देर और चुप रहे। फिर घड़ी की ओर देखा। बोले--"मैं सोच रहा हूँ कि दिन डूब रहा है...तुम जाओगे कैसे?...फिर रास्ते में... "

आगे कुछ कहने से पहले ही मैंने कहा--"मुझे जरा भी कष्ट न होगा।"

तब अपनी स्नेहमयी पितृतुल्य आँखें मेरी ओर उठाकर उन्होंने कहा--"आने-जाने का किराया मेरा रहा। अबसे तुम कभी ऐसे नहीं आओगे।"

कहते-कहते ऐसा मालूम हुआ कि उनकी आँखें कुछ नम हो गयी हैं। उनकी चमक बढ़ गयी थी। मैं भी परास्त हो गया था। निःसंकोच मैंने कहा--"जो ऐसी ही आपकी आज्ञा है तो आज भी मैं रेल पर ही वापस जाऊँगा।"

वे जैसे प्रसन्नता से विभोर हो गये, 'फलाने!' "ढिकाने!' आवाज देकर कइयों को बुलाया। बगल में ही खाने का

कमरा था। सामने बैठाकर खिलाया। उस समय न तो वे महान् पंडित मोतीलाल नेहरू थे जिनका दबदबा सारे देश में फैला हुआ था, और न मैं एक अजनबी। हम जैसों के वे पिता थे, और मैं उनका एक लाड़ला बेटा।

खा-पीकर जब प्रणाम करके चला तो वे दूर तक मुझे देखते रहे। चलते समय मेरी मुट्ठी में उन्होंने क्या दिया था इसे मैंने देखा नहीं। चुपके से जेब में रख लिया था। जब रामबाग स्टेशन के टिकटघर के सामने निकालकर गिना तो देखा कि पूरे पचीस रुपये थे।

इसके बाद हम लोगों का उत्साह और बढ़ गया। द्वितीय बार के पत्र में चार पन्ने हो गये थे क्योंकि मनीन्द्र ने फनीन्द्र से (जो बेतिया का था और बाद को सुखदेव आदि के लाहौर षड्यन्त्र में मुखबिर हो गया था, और भुसावल केस के, और अबके एक कम्युनिस्ट की गोली से मरते-मरते बाल बाल बचा था, गोली मरवानेवाले स्वयं चन्द्रशेखर आजाद ही थे) भी कुछ लिखवा लिया था। सुखदेव ने भी लिखा था। चारों पन्ने खचाखच क्रान्ति की पुकार से भरे थे। उस बार की तसवीर भी बहुत अच्छी थी। मार्कण्डेय लिखकर तैयार करते जाते थे और मैं बेचता जाता था। बेचते बेचते मोतीलालजी के पास पहुँचा। इस बार दिक्कत नहीं हुई। बड़े आदमी के नौकर खूब होशियार होते हैं, यानी मालिक का रुख पहिचानते हैं। सीधे पंडितजी के पास ले गये। उनका बस एक प्रश्न था—"रेल से आये हो न?"

मैंने कहा था "जी हाँ।"

पत्र लिया। मैंने एक कापी दी। मेरे मुँह की ओर देखकर आपने कहा—"इस बार एक ही प्रति लाये हो क्या?"

मैंने कहा—"जी हाँ। इस बार ज्यादा लिखा गया, और चित्र बनाने में भी हम लोगों ने बड़ी मेहनत की। कागज भी अच्छा लगाया। अधिक बन न पाया।... क्यों और भी प्रति आपको चाहिए क्या?"

उत्साह बढ़ाते हुए कहा—"हाँ, हाँ, मैंने तुम्हारे और दो ग्राहक बनाये हैं।" यह सुनकर मुझे ऐसा लगा कि मैं बड़ी गलती कर बैठा हूँ। मैं चुप खड़ा रहा। फिर निराशा की साँस लेते हुए मैंने कहा—"मगर उन प्रतियों को अगली बार ही दे सकता हूँ।... यानी अगले बार जब आऊँगा तो इस अंक की दो प्रतियाँ और अगले अंक की तीन प्रतियाँ एक साथ ही लाऊँगा।... चल जायगा न?"

छोटा-सा प्रश्न था—"क्यों?"

मैंने जरा हिचकिचाते हुए कहा—"अन्यथा साइकिल से आना पड़ेगा.... रेल किराया तो आपने अपने लिए प्रति लाने के लिए ही देने को कहा है... अन्य ग्राहक..."

आगे कुछ कहने से पहले ही उन्होंने अपने विशाल हाथ बड़े वात्सल्य से मेरे सिर पर रख दिये। आह! उस दिन उनके वात्सल्यपूर्ण स्पर्श का स्मरण कर आज भी मेरा शरीर पुलकित हो उठता है। न जाने उनकी महानता में कितनी स्निग्धता थी! उनके स्पर्श में जो हृदय को शीतल करनेवाला प्रभाव था, वह बिजली से भी अधिक शक्तिशाली था क्योंकि बिजली का प्रभाव तो क्षणिक होता है, और उनका उस दिन का वात्सल्यपूर्ण क्षणमात्र का स्पर्श मुझे आज भी पुलकित कर देता है।

जब क्षणिक संपर्क के कारण मुझ पर ऐसा सात्विक प्रभाव पड़ा तब इसमें क्या आश्चर्य है कि उनके पुत्र और पुत्रियों में उनकी महानता आज भी जीवित है!

आशीर्वाद प्राप्त करके और दक्षिणा, यानी पत्रों के दाम, लेकर जब चलने लगा तो उन्होंने कहा—"इस बार आने की जरूरत नहीं। मैं स्वयं तुम्हारे यहाँ आऊँगा।"

तारीख आदि दे दी। मैंने अपना ठिकाना बता दिया। साथ साथ कहा—"आप से मैं ही मिल लूँगा।"

निश्चित दिन वे काशी आए थे। मैंने दोनों अंक तैयार करके और उनको बाँधकर बतलाए हुए समय पर उन्हीं के बताए हुए घाट पर दे दिये थे। उन्होंने वहीं रुपए भी दिला दिए थे। साथ में महामना मालवीयजी, महात्मा गांधीजी तथा और भी कई सज्जन थे। वहाँ वे आये थे गंगा-स्नान करने। उनके कारण उस समय वहाँ विशेष कोई भीड़ न थी। तब वे साधारणों में असाधारण थे, न कि असाधारणों में असाधारण, क्योंकि शायद यह बात है १९२७ के जाड़े की। पूरे १००) रुपए थे, जो उस दिन मुझे मिले थे।

इसके बाद ही मनीन्द्र पकड़ा गया, उधर रवीन्द्र भी पकड़े गए थे। हमारे आर्टिस्टों में दोनों जेल में बन्द हो गए थे। चतुर्थ प्रति निकालने में बड़ी दिक्कत हुई। सजधज के साथ पत्र नहीं निकाल पाया। ऊपर से केसों की पैरवी की भी चिंता थी। फिर भी बिना विचार फैलाये काम कैसे चलता? उधर सुखदेव भी संगठन में लगे हुए थे,

फनीन्द्र भी लगे हुए थे। क्या करूँ सोच ही न पाता था। फिर भी कुल दो पृष्ठ का अखबार तो निकाल ही लिया। किन्तु देर हो गई थी। बहुत देर हो गई थी।

लेकर पहुँचा पं० मोतीलाल नेहरू की कोठी में। इस बार वहाँ कुछ अधिक चहल पहल थी क्योंकि उस समय वहाँ पंडित जवाहरलाल भी थे।

मैंने खबर भिजवाई। उस दिन काफी देर तक बैठे रहने के बाद बुलवाया गया। कमरे में मोतीलालजी बैठे थे और पंडित जवाहरलाल खड़े खड़े एक मेज से उठा कर कोई किताब देख रहे थे। मैं जाकर पं० मोतीलाल जी के पास बैठ गया। जवाहरलाल जी ने एक बार मेरी ओर सरसरी तौर से देखा। अखबार निकालूँ या नहीं सोच ही रहा था कि पं० मोतीलालजी ने कहा—"देखो, ये ही हैं।"

यह कहकर वे उठकर कहीं चल दिए। जवाहरलाल जी ने भ्रू कुंचित कर मेरी ओर देखा। फिर कहा—"तो हाँ, आपही सशस्त्र क्रान्ति के प्रचारक हैं?"

उत्तर की प्रतीक्षा बिना किये ही आगे उन्होंने कहा—"तो जनाब! सुनूँ तो वह होगी कैसे? आप समझते हैं कि इन थोड़े से बम पिस्तौलों से और दो चार अफसरों की हत्या करने से ही क्रान्ति हो जायगी?"

ये प्रश्न तथा बात करने का उनका ढंग कुछ ऐसा था कि सिर से पैर तक मैं गरम हो उठा। मैंने कहा—"हर काम ऐसे ही आरम्भ होता है...."

आगे मुझे कहने का मौका न देकर उन्होंने बीच में ही कहा—"आरम्भ होते होते तो बीसियों वर्ष हो गए.. आपने किया क्या?"

मैं भी खड़ा हो गया। मैंने शायद कुछ उत्तेजित होकर कहा "आपने इटली का इतिहास पढ़ा है? मेक्सिको का इतिहास पढ़ा है? अमरीका, रूस, चीन, और किस किस का चाहते हैं? क्या है उनमें? क्या वे एक ही दिन में स्वतंत्र हो गए थे? सबके लिए समय चाहिए। इटली एक छोटा-सा देश, उसी को सोलह सौ वर्ष लगे।"

कुछ ठंडे हुए। फिर शान्त भाव से बोले—"मगर तब किसी को गांधीजी के तरीके नहीं मालूम थे।"

मैंने कहा—"किन्तु गांधीजी के तरीके जितने आसान हैं उतने ही अप्राकृतिक हैं। हमारा तरीका जितना कठिन है उतना ही प्राकृतिक है। सैकड़ों वर्ष तक असहयोग आन्दोलन चल नहीं सकता, मगर हजारों वर्ष तक क्रांतिकारी आन्दोलन चल सकता है। जब-जब लोगों में क्षोभ होगा, तब-तब उसका प्रदर्शन हो कर ही रहेगा। ..हाँ, संगठन चाहिए। सो तो गांधीजी के आन्दोलन में भी चाहिए। न अकेले गांधीजी ही स्वराज्य ला सकते हैं और न हमारे जैसे दो चार नवयुवक ही।" वे शांत भाव से सुन रहे थे। मेरी हिम्मत बढ़ी। मैंने कहा—"जिस प्रकार से जनसंगठन किए बिना गांधीजी नहीं सफल हो सकेंगे उसी प्रकार सेना, यानी सैनिक तथा नवयुवक संगठनों के बिना हम भी नहीं बढ़ सकते हैं।"

उस दिन जो बातें हुईं उनका इतना ही सारांश मुझे आज याद है। इतने में पं० मोतीलालजी आ गए। रुपये दिए, अखबार लिया। मैंने दोनों को प्रणाम किया, और चल दिया। क्योंकि नौकर ने आकर सूचना दी थी कि मिर्जापुर के एक नाटे कद के मुसलमान बैरिस्टर आ रहे हैं।

पता नहीं कि गांधीजी के अहिंसक युद्ध के प्रमुख संचालक और आज सारी दुनिया की रहनुमाई करनेवाले को उस दिन के अजनबी का स्मरण है या नहीं। किन्तु यदि आज पं० मोतीलाल जीवित होते तो उन्हें अवश्य याद होती। उस दिन उन्होंने एक पन्ने के अखबार के लिए पूरे पाँच सौ रुपये दिए थे!

* * *

पाणिनि के नये उत्तराधिकारी

डा० उदयनारायण तिवारी

जब से यूरोप तथा अमरीका में विवरणात्मक (Descriptive) भाषा-शास्त्र के अध्ययन का आरम्भ हुआ है, तब से संस्कृत के वैयाकरण पाणिनि का महत्त्व बढ़ गया है। संस्कृत व्याकरण के क्षेत्र में पाणिनि, कात्यायन तथा पतञ्जलि सर्वोपरि माने जाते हैं तथा 'मुनित्रय' के नाम से विख्यात हैं। पाणिनि के पूर्व के अनेक वैयाकरणों के नाम तो मिलते हैं किन्तु उनकी कृतियाँ आज उपलब्ध नहीं हैं; किन्तु पाणिनि के सर्वांगीण पूर्ण व्याकरण को देखकर यह सहज हीं में अनुमान किया जा सकता है कि उनके बहुत पूर्व ही, भारत में, व्याकरण की शास्त्ररूप में प्रतिष्ठा हो चुकी होगी। यूरोप के लोग अपनी सभ्यता एवं संस्कृति का संयोग-सूत्र ग्रीक से जोड़ते हैं। उच्च सांस्कृतिक दृष्टि से संसार की पाँच भाषाएँ—प्राचीन चीनी, संस्कृत, अरबी, ग्रीक तथा लैटिन—श्रेष्ठ मानी जाती हैं। यूरोप की आधुनिक भाषाओं के व्याकरण में, वाक्य को आठ भागों—संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया, अव्यय, उपसर्ग, संयोजक, विस्मयादिसूचक—में वर्गीकृत करने की पद्धति, वस्तुत; ग्रीक से, लैटिन द्वारा होते हुए आई है। पहले यूरोप के लोगों को इस बात का अभिमान था कि ग्रीक लोग दर्शन से लेकर भाषा तक के चिन्तन के क्षेत्र में विश्व में अप्रतिम हैं किन्तु इधर जब से अमरीका के विद्वानों ने भाषा-शास्त्र का सूक्ष्म अध्ययन करना आरम्भ किया है तब से यह स्पष्ट हो गया है कि कम से कम भाषा के क्षेत्र में जितना सूक्ष्म एवं गम्भीर चिन्तन प्राचीन भारत में हुआ था उतना कहीं अन्यत्र नहीं हुआ। सन् १७८६ ई० में बंगाल की एशियाटिक सोसायटी के सम्मुख संस्कृत को ग्रीक तथा लैटिन से अधिक समृद्ध एवं पूर्ण बतलाते हुए विलियम जोन्स ने कहा था—

व्याकरण-विषयक रूपों तथा धातुओं में संस्कृत, ग्रीक एवं लैटिन में इतना घनिष्ठ सम्बन्ध है जो आकस्मिक नहीं हो सकता। इनमें पारस्परिक इतना अधिक सम्बन्ध है कि कोई भी भाषाशास्त्री इनका परीक्षण करके इस परिणाम पर पहुँच सकता है कि इन तीनों का स्रोत एक है। यद्यपि इस बात के लिए प्रमाण का अभाव है तथापि इसकी सहज में ही कल्पना की जा सकती है कि गॉथिक तथा केल्टिक का भी मूल स्रोत वही है जो संस्कृत का है।

यूरोप में, जोन्स के इन शब्दों का मंत्रवत् प्रभाव पड़ा। यद्यपि जोन्स के इस कथन के पूर्व ही संस्कृत यूरोप में पहुँच चुकी थी, तथापि विद्वानों ने इसके महत्त्व पर ध्यान नहीं दिया था। उस समय तक यूरोप के भाषाशास्त्री अपनी मातृ-भाषाओं का हिब्रू तथा अरबी से ही सम्बन्ध जोड़ने में व्यस्त थे। जोन्स की विचारधारा ने यूरोप के भाषाशास्त्रियों का स्पष्ट रूप से मार्ग प्रदर्शन किया और वे भाषा के सम्बन्ध में वैज्ञानिक ढंग से विचार करने के लिए बाध्य हुए। भाषा-शास्त्र के लिए इसका परिणाम भी अत्यधिक शुभ हुआ और यूरोप के विद्वानों ने भारोपीय परिवार की भाषाओं[1] का, गम्भीर, तुलनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन प्रस्तुत किया। किन्तु इतना होते भी, भाषा तथा व्याकरण-शास्त्र के सम्बन्ध में पाणिनि ने जो अभूतपूर्व कार्य किया था उसका, यूरोप के विद्वान्, पूर्ण रूप से मूल्यांकन न कर सके। इधर जब से यूरोप तथा अमरीका के भाषाशास्त्री, भाषा के अन्तस्तल में प्रवेश करने का प्रयत्न करने लगे तथा जब उन्होंने देखा कि प्रत्येक भाषा का अपना गठन अथवा अपना ढाँचा होता है, इस ढाँचे का पता केवल उस भाषा के विविध तत्त्वों के सूक्ष्म विश्लेषण से ही ज्ञात हो सकता है और वास्तव में इस ढाँचे की सूत्ररूप में व्याख्या ही उस भाषा के व्याकरण का मुख्य विषय है, तब उन्हें पाणिनि का महत्त्व ज्ञात हुआ। उन्होंने इस बात का अनुभव किया कि आधुनिक भाषाओं के विश्लेषण के लिए जिस प्रक्रिया (Methodology) की आवश्यकता है उसकी पूर्ण परिणति तो भारत में, ईसा के जन्म से पाँच सौ वर्ष पूर्व[2] पाणिनि की कृति अष्टाध्यायी में हो चुकी थी। इस तत्त्व के ज्ञात होते ही यूरोप तथा अमरीका के भाषाशास्त्री पाणिनि का दाय अथवा उत्तराधिकार प्राप्त करने में संलग्न हो गये।

---

[1] भारोपीय के अन्तर्गत मुख्य रूप से केल्तिक, इतालीय, ग्रीक, आर्मनीय, आल्बनीय, बाल्तोस्लाविक, ट्यूटनिक या जर्मेनिक, आर्यभाषा (संस्कृत तथा इरानीय) हत्ती या खत्ती एवं तोखारीय भाषाओं की गणना है।

[2] यूरोप के तथा अनेक भारतीय विद्वान् पाणिनि का समय यही मानते हैं, यद्यपि कई भारतीय विद्वान् इसके पक्ष में नहीं हैं।

ऊपर के तथ्य को समझने के लिए हमें यूरोप तथा अमरीका में भाषाशास्त्र के इतिहास को संक्षेप में समझना पड़ेगा। इसके साथ ही पाणिनि तथा ग्रीक एवं लैटिन वैयाकरणों के विवरण के अन्तर को भी जानना होगा। जहाँ तक पाणिनि की कृति का प्रश्न है, उसका धर्म तथा दर्शन से कोई सम्बन्ध नहीं है। यह उस युग में, शिष्ट लोगों में प्रचलित भाषा का विवरण है। इसके विपरीत ग्रीक एवं लैटिन के व्याकरण पर धर्म एवं दर्शन की स्पष्ट छाप है और पाणिनि के व्याकरण की भाँति विवरणात्मक भी नहीं। पाणिनि तथा संस्कृत के सम्बन्ध में जो अनेक भ्रान्तिपूर्ण बातों का प्रचार हमारे देश में हो गया है, उनमें से एक यह है कि संस्कृत कृत्रिम तथा मृत भाषा है और पाणिनि ने इसका व्याकरण लिखकर इसकी समाधि खड़ी कर दी है। यह विचारधारा गत शताब्दि के कतिपय यूरोपीय विद्वानों के उर्वर मस्तिष्क से प्रसूत होकर भारत पहुँची और आज भी उनके मानस पुत्र इसकी रट लगाये जा रहे हैं। सच बात तो यह है कि पाणिनि ने जिस संस्कृत का व्याकरण लिखा था वह उस युग में उसी रूप में सजीव भाषा थी जिस रूप में आज हिन्दी, अँगरेजी, फ्रेंच, जर्मन तथा रूसी हैं। जिस प्रकार आधुनिक भाषाओं में सामाजिक स्तर के अनुसार यत्किंचित् भेद है उसी प्रकार पाणिनि काल की संस्कृत में भी रहा होगा। पाणिनि ने उस युग के ब्राह्मण-गुरुकुलों में प्रचलित शिष्ट उदीच्य (पश्चिमी पंजाब की) भाषा को लेकर उसका विवरणात्मक व्याकरण तैयार कर दिया। आज अँगरेजी, फ्रेंच, हिब्रू तथा अमरीका की विविध बोलियों के विवरणात्मक व्याकरण लिखे जा रहे हैं।

ऊपर यह कहा जा चुका है कि संस्कृत की उपलब्धि के बाद यूरोप में भाषाशास्त्र के वैज्ञानिक अध्ययन का सूत्रपात हुआ था। इस अध्ययन पर प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से पाणिनि का प्रभाव परिलक्षित होता है। सर्वप्रथम हमें यह प्रभाव फ्रेडरिक मूलर (१८७६–१८८८) तथा फिक (१९१०) की भारोपीयेतर भाषाओं की कृतियों में दृष्टिगोचर होता है। यूरोप के इस युग के अनेक विद्वानों ने भाषा एवं ध्वनि का वैज्ञानिक अध्ययन किया जिनमें वॉन हम्बोल्ट (१८३६-१८३९), स्टिथल (१८६०), वॉन डेर गैबेलेंज, वुण्ड (१९००–१९०९), हेमहोल्ज (१८३३), केम्पलेन (१७९१), विलिस (१८३०) के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। १९वीं शताब्दि के अन्त तक में इस रूप में भाषाशास्त्र के अध्ययन की प्रगति हुई थी। वस्तुतः इसने बीसवीं शताब्दि के भाषाशास्त्रियों के मार्ग को प्रशस्त किया। यह बात अमरीका तथा यूरोप, दोनों के सम्बन्ध में कही जा सकती है। अमरीका के प्रसिद्ध भाषाशास्त्री स्वर्गीय ब्लूम फील्ड, १९वीं शताब्दि के अन्तिम चरण में, भाषाशास्त्र की गति-विधि पर प्रकाश डालते हुए लिखते हैं—"इस युग में, एक ओर, ऐतिहासिक तुलनात्मक तथा दूसरी ओर दार्शनिक विवरणात्मक भाषा-सम्बन्धी विचारधारा के समन्वय से कतिपय ऐसे सिद्धान्त सामने आये जो १९वीं शताब्दि के भारोपीय भाषाओं के अध्येताओं को उपलब्ध न हो सके थे। इन सिद्धान्तों के हरमन पाउल की कृति में हमें दर्शन होते हैं। प्रायः भाषा-सम्बन्धी सभी ऐतिहासिक अध्ययनों का आधार दो या दो से अधिक विवरणात्मक-सामग्री की तुलना होती है। इन अध्ययनों की शुद्धता वस्तुतः सामग्री पर निर्भर करती है।"

१९वीं शताब्दि के अन्तिम चरण के सबसे प्रतिभाशाली भाषाशास्त्री फर्डिनेण्ड डि सासे (१८५७ से १९१३) थे जिन्होंने भाषा के गठन-सम्बन्धी अध्ययन तथा विवरणात्मक वर्णन पर विशेष बल दिया। इसी समय ध्वनि-ग्राम (Phoneme) का अनुसन्धान हुआ जिससे भाषा के विश्लेषण का कार्य सरल हो गया। इसके आविष्कर्त्ता दो रूसी भाषाशास्त्री बॉडविन डि कुर्तने तथा उनके शिष्य क्रुजेवस्की (१८८१) थे। प्राहा विचार-शैली (Prague School) के भाषाशास्त्री, रोमन याकोब्सन तथा त्रुबेस्क्वाय, अपने नवीन अनुसन्धानों से आज भी भाषाशास्त्र को प्रगति दे रहे हैं। अमरीका तो आज ध्वनि-शास्त्र तथा गठन-सम्बन्धी (Structural) एवं विवरणात्मक-भाषाशास्त्र (Descriptive linguistics) के अध्ययन का विराट् केन्द्र हो रहा है। यहाँ एक ओर तो बाइबिल के अनुवाद के लिए मिशनरियों ने ध्वनि एवं भाषाशास्त्र के अध्ययन का केन्द्र स्थापित कर रखा है तो दूसरी ओर यहाँ के प्रत्येक विश्वविद्यालय में भाषाशास्त्र के गम्भीर अध्ययन का कार्यक्रम चल रहा है। अमरीका की पिछली पीढ़ी के भाषाशास्त्रियों में फ्रैंजबोआ, लिओनार्ड ब्लूमफील्ड, एडवर्ड सापिर तथा बेंजामिन ली हूर्फ प्रसिद्ध हैं। वर्त्तमान पीढ़ी के भाषाशास्त्रियों में पेन्सिलवानिया विश्वविद्यालय के प्रो० जैलिग हैरिस तथा कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय की कुमारी मेरी हास का स्थान

बहुत ऊँचा है। मिशनरी भाषाशास्त्रियों में पाइक तथा नाइडा प्रसिद्ध हैं। प्राहा तथा अमरीका के अतिरिक्त डनमार्क में भी भाषाशास्त्र के अध्ययन का एक केन्द्र है जो "ग्लास मेटिक" विचारधारा के नाम से प्रसिद्ध है। 'ग्लॉस' ग्रीक भाषा का शब्द है। इसका अर्थ है 'भाषा'। इस विचारधारा के भाषाशास्त्रियों में लुई हेमसेल, एच० जे० उदाल एवं कुमारी जोर्गेन जोर्गेन्सन मुख्य हैं।

ऊपर ध्वनि-ग्राम (फोनीम) शब्द का व्यवहार किया गया है। यहाँ इसे स्पष्टतया समझ लेना आवश्यक है। हिन्दी में **पता, पत्ता, पुर, पुण्य** तथा **पौत्र** में प्रयुक्त प-ध्वनि को हम ओष्ठत्र के नाम से अभिहित करते हैं, किन्तु यदि हम इन शब्दों में प-ध्वनि का विश्लेषण करें तो ज्ञात होगा कि यद्यपि सुनने में प-ध्वनि सर्वत्र समान प्रतीत होती है किन्तु इनमें पारस्परिक भिन्नता है जो इनके उच्चारण-प्रयत्न की भिन्नता के कारण है। इनमें 'पता' के 'प' के उच्चारण में दोनों होंठ उतनी सघनता से नहीं मिलते जितना 'पत्ता' के 'प' के उच्चारण में। इसी प्रकार 'पुर', 'पुण्य' तथा 'पौत्र' की प-ध्वनि की भी दशा है। यदि हम ऊपर के शब्दों में प-ध्वनि का विश्लेषण करें तो इन्हें क्रमशः 'प' 'प^{१}, प^{२}, प^{३}, प^{४} के रूप में लिख सकते हैं। यहाँ 'प' के साथ जो १,२,३, ४ अंकों का प्रयोग किया गया है, वह केवल उच्चारण की भिन्नता प्रदर्शित करने के लिए है, गणितीय-मान प्रदर्शित करने के लिए नहीं। सूक्ष्म विश्लेषण से प-ध्वनि में चाहे जितना भी अन्तर हो किन्तु इनकी निर्माण-पद्धति तथा इनके ध्वन्यात्मकरूप एक वर्ग के अन्तर्गत हैं। दूसरे शब्दों में ये ओष्ठत्र ध्वनियाँ हैं और कोई भी हिन्दी-भाषा-भाषी इन पाँचों शब्दों के 'प' के उच्चारण में किसी प्रकार के अन्तर का अनुभव नहीं करता। यहाँ यह बात स्पष्ट रूप से समझनी चाहिए कि "प" ध्वनिग्राम वस्तुतः एक वंश का परिचायक है और इसके अन्तर्गत अलग-अलग भाषण-ध्वनियों, प^{१}, प^{२}, प^{३}, प^{४} की सत्ता सदस्य के रूप में वर्त्तमान है। यदि हमें व्यावहारिक रूप में 'प' ध्वनिग्राम का ज्ञान न हो तो हमें प^{१}, प^{२} प^{३} प^{४} आदि के लिए अन्य प्रतीकों अथवा वर्णों का निर्माण करना पड़े और तब हमारी वर्णमाला भी चीनी और जापानी की भाँति ही जटिल हो जाय।

महर्षि पाणिनि ध्वनिग्राम से पूर्णतया परिचित थे और उन्होंने चौदह माहेश्वर-सूत्रों के अन्तर्गत इन्हें बाँधा था।* यही बात ध्वनिशास्त्र (Phonetics) के सम्बन्ध में भी है। पाणिनि ने अपने व्याकरण में वर्णों के उच्चारण-स्थान, मात्राकाल, उदात्त, अनुदात्त, स्वरित आदि के सम्बन्ध में भी विचार किया है। पदग्राम (Morpheme) का भी पाणिनि को ज्ञान था और शब्दों की विश्लेषणात्मक पद्धति के तो वे पूर्ण ज्ञाता थे। इसी प्रकार उन्होंने जो परिभाषाएँ दी हैं, वे एक रूप से उदाहरणों में लागू होती हैं और उनके अपवाद' नहीं मिलते। संक्षेप में भाषा के अध्ययन के लिए जिस प्रक्रिया को विवरणात्मक भाषा-शास्त्री (Descriptive Linguists) बीसवीं शताब्दि के प्रथम चरण से अपनाने लगे हैं वह पाणिनि को ईसा से ५०० वर्ष पूर्व ही ज्ञात थी। इस बात का अनुभव करके आज अमरीका का भाषाशास्त्री महर्षि पाणिनि के प्रति नतमस्तक हो जाता है और भावातिरेक से, उसके हृदय से श्रद्धासंवलित उद्गार निकल पड़ते हैं। इस शताब्दि के महान् भाषाशास्त्री स्वर्गीय ब्लूमफील्ड ने अपनी पुस्तक में कई स्थानों पर इस प्रकार के उद्गार प्रकट किये हैं। आप लिखते हैं—

(वास्तव में) वह भारत देश था जहाँ ऐसे ज्ञान का उदय हुआ जो यूरोप के लोगों की भाषा-सम्बन्धी विचार-धारा में क्रान्तिकारी परिवर्तन उपस्थित करनेवाला था।....जिस प्रकार आज हमारे देश में विभिन्न वर्ग के लोगों की भाषा में अन्तर है, उसी प्रकार (प्राचीन काल में) हिन्दुओं में भी विभिन्न सामाजिक स्तर के लोगों की भाषा में अन्तर था। उस समय कुछ ऐसी परिस्थिति आ गई थी कि उच्चवर्ग के लोग निम्नवर्ग के लोगों की भाषा को अपनाने के लिए बाध्य हो रहे थे। ऐसी स्थिति में हिन्दू वैयाकरणों का ध्यान वैदिक भाषा की ओर से उच्चवर्ग के लोगों की भाषा की ओर गया और वे उस भाषा के नियम उपनियम बनाने में प्रवृत्त हुए जिसे आज संस्कृत कहते हैं। समय की प्रगति से इस भाषा के व्यवस्थित व्याकरण एवं कोष का निर्माण हुआ। (ऐसा प्रतीत होता है कि) पाणिनि के व्याकरण की रचना के पूर्व वैयाकरणों की कई पीढ़ियाँ गुजर गई होंगी। पाणिनि के व्याकरण की रचना ३५०

*आधुनिक भाषाविद् 'ड०' को ध्वनिग्राम नहीं मानते। इनके अनुसार अनरूपता (Symmetry) के लिए महर्षि ने इसे रखा है।—लेखक

ई० पूर्व—२५० ई० पू० में हुई होगी। यह व्याकरण वस्तुतः मानव-ज्ञान का सर्वोत्कृष्ट प्रतीक है। इसमें वैयाकरण ने अपनी भाषा में शब्दरूपों, क्रियारूपों एवं शब्द-निर्माण-सम्बन्धी सूक्ष्मातिसूक्ष्म नियम दिये गये हैं। आज तक संसार की किसी भी भाषा का इतना पूर्ण विवरण उपलब्ध नहीं है। आगे चलकर, ब्राह्मण-संस्कृति से ओतप्रोत भारत की, संस्कृत जो साहित्यिक एवं राज्यभाषा बनी, उसका आंशिक कारण पाणिनि का व्याकरण भी था। जब भारत में संस्कृत किसीकी मातृभाषा नहीं रह गई, उसके बहुत दिनों बाद तक (इसी व्याकरण के कारण) यह विद्वानों तथा धर्म की भाषा रही।...यदि यूरोप के विद्वानों को संस्कृत के विवरणात्मक व्याकरण की भाँति ही ग्रीक एवं लैटिन के व्याकरण उपलब्ध होते तो भारोपीय भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन आज की अपेक्षा कहीं अधिक तीव्रगति एवं शुद्ध रूप में होता।

अपने सन् १९४० के दिसम्बर के एक लेख में, प्रसिद्ध भाषाशास्त्री स्वर्गीय श्री बेंजामिन ली हूर्फ, भाषाशास्त्र के विषय में अपने विचार प्रकट करते हुए, पाणिनि के सम्बन्ध में लिखते हैं—

यद्यपि भाषाशास्त्र बहुत प्राचीन विज्ञान है तथापि इसका आधुनिक प्रयोगात्मक रूप, जो अलिखित भाषा के विश्लेषण पर जोर देता है, सर्वथा आधुनिक है। जहाँ तक हमें ज्ञात है, आज के रूप में ही, ईसा से कई शताब्दि पूर्व, पाणिनि ने, इस विज्ञान का शिलान्यास किया था। पाणिनि ने उस युग में वह ज्ञान प्राप्त कर लिया था जो हमें आज उपलब्ध हुआ है। (संस्कृत) भाषा के वर्णन अथवा संस्कृत भाषा को नियमबद्ध करने के लिए पाणिनि के सूत्र बीजगणित के जटिल सूत्रों (फार्मूलों) की भाँति हैं। ग्रीक लोगों ने वस्तुतः इस विज्ञान (भाषाशास्त्र) की अधोगति कर रखी थी। इनकी कृतियों से ज्ञात होता है कि वैज्ञानिक विचारक के रूप में, हिन्दुओं के मुकाबले में, ये (ग्रीक लोग) कितने अधिक निम्नस्तर के थे। (सच तो यह है कि) उनकी भ्रान्तिपूर्ण विचारधारा का प्रभाव प्रायः दो सहस्र वर्षों तक चलता रहा। (वास्तव में) १९-वीं शताब्दि के आरम्भ से, जब से पश्चिम ने पाणिनि को प्राप्त किया है तभी से, आधुनिक वैज्ञानिक भाषाशास्त्र आरम्भ होता है।

सम्प्रति अमरीका के कई विश्वविद्यालयों में भाषाशास्त्र के अध्ययन का कार्य अत्यधिक तीव्रगति से चल रहा है। यद्यपि मुख्य रूप से इस अध्ययन का आधार विवरणात्मक भाषाशास्त्र है तथापि यहाँ के अधिकांश भाषाशास्त्री संस्कृत भाषा तथा पाणिनि से पूर्णतया परिचित हैं तथा वे अपना संयोग सूत्र पाणिनि से जोड़ने एवं उनका उत्तराधिकारी बनने में गौरव का अनुभव करते हैं। क्या पाणिनि के वास्तविक उत्तराधिकारी भी इनसे शिक्षा लेंगे?*

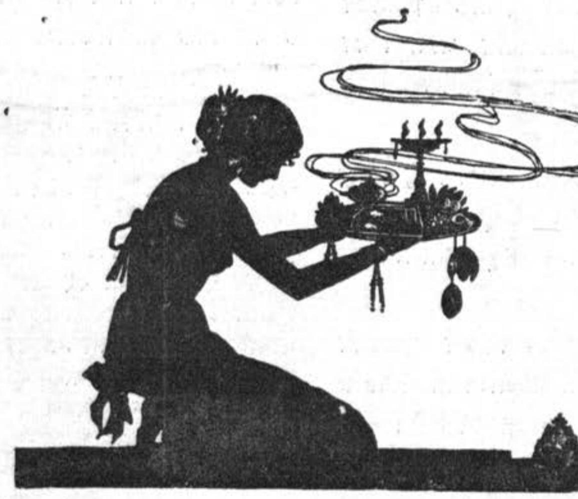
---

*अभी हाल में लेखक को अमरीका की भाषाशास्त्र सम्बन्धी, दो परिषदों में भाग लेने का अवसर मिला। इनमें से एक परिषद् अमरीका की राजधानी वाशिंगटन में गत १९,२०,२१ नवम्बर १९५८ को नृ-विज्ञान (Anthropology) के वार्षिक अधिवेशन के अवसर पर हुई थी। दूसरी परिषद् अमरीका की लिंग्विस्टिक सोसाइटी के अवसर पर गत २९,३० तथा ३१ दिसम्बर को न्यूयार्क में हुई थी। इन दोनों अवसरों पर लेखक को अमरीका के कई प्रसिद्ध भाषाशास्त्रियों से मिलने का असुवसर मिला। आज अमरीका के अनेक भाषाशास्त्री पाणिनि के व्याकरण के गम्भीर अध्ययन की चिन्ता में हैं। वे भाष्य तथा विविध टीकाओं सहित इस व्याकरण का अनुवाद अँगरेजी में प्राप्त करने के लिए उत्सुक हैं। हिन्दी की अभिवृद्धि के लिए इस प्रकार के अनुवाद की आवश्यकता आज हिन्दी को है। एक बात और। मध्य देश के काशी, प्रयाग जैसे नगरों में आज ऐसा प्रबन्ध नहीं है जहाँ पाणिनि के युवक अध्येता विवरणात्मक भाषाशास्त्र का ज्ञान प्राप्त करें तथा विवरणात्मक भाषाशास्त्र के ज्ञाता पाणिनि के व्याकरण तथा उसकी पद्धति का। यू० पी० सरकार से मेरा अनुरोध है कि वह काशी, प्रयाग अथवा उत्तर प्रदेश के किसी भी विश्वविद्यालय में या उसके बाहर इसके लिए कोई केन्द्र स्थापित करे जिसमें पाणिनि का उत्तराधिकार उनके देशवासियों को भी मिले।

—लेखक

१९५९

❀ ❀ ❀



सरस्वती

का

प्रथम वर्ष का

सम्पादक-मंडल

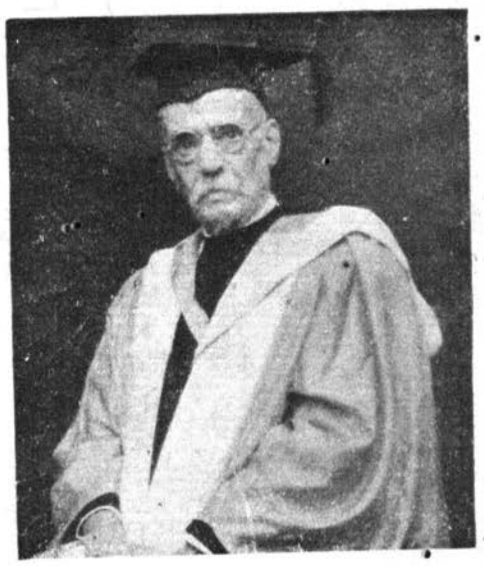
(नागरीप्रचारिणी सभा, काशी द्वारा नियुक्त)



पंडित किशोरीलाल गोस्वामी



बाबू राधाकृष्णदास



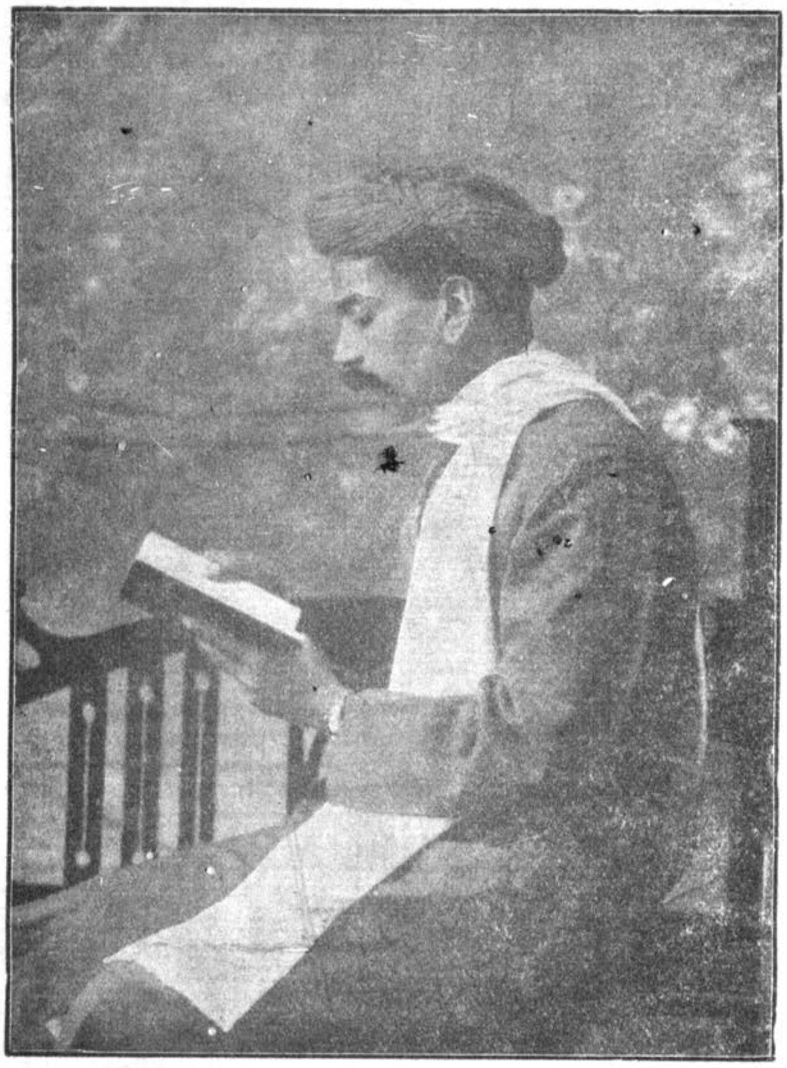
बाबू श्यामसुंदरदास



बाबू जगन्नाथदास रत्नाकर



बाबू कार्तिकप्रसाद खत्री



श्री मैथिलीशरण गुप्त
(यह ऐतिहासिक चित्र उस समय का है जब गुप्तजी अपने आरंभिक युग में सरस्वती में लिखा करते थे)

सरस्वती हीरक जयन्ती विशेषांक के लेखकों तथा कवियों का संक्षिप्त परिचय

१—अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी

जन्म १८८० ई०। ये अँगरेजी, संस्कृत, प्राकृत और उर्दू के ज्ञाता हैं। "हिन्दी बंगवासी" और "भारत-मित्र" के सम्पादक थे। "स्वतंत्र" दैनिक तथा "नृसिंह" मासिक का संपादन और संचालन भी किया। हिन्दी-कौमुदी, हिन्दी पर फारसी का प्रभाव, अभिनव हिन्दी व्याकरण, हिन्दुओं की राजकल्पना आदि आपकी लिखी पुस्तकें हैं। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के २६वें अधिवेशन के सभापति। उत्तर प्रदेश की विधान परिषद् के सदस्य छः वर्ष रहे। हिन्दी के वर्तमान ज्येष्ठतम पत्रकार और साहित्यिक एवं वैयाकरण।

२—डा० अख्तर हुसेन रायपुरी

रायपुर (मध्य प्रदेश) निवासी हैं। अध्यापन-कार्य करते हैं। "आग और आँसू" कहानी-संग्रह प्रकाशित हो चुका है।

३—अनूप शर्मा, 'अनूप' एम० ए०, एल० टी०

आपकी शिक्षा सीतापुर, लखनऊ और वाराणसी में हुई। आप 'अनूप' नाम से कविता करते हैं। आप देव-पुरस्कार-विजेता हैं। सुमनांजलि, सिद्धार्थ, शर्वाणी, 'फेरि मिलिबो' (ब्रजभाषा गद्य) और सिद्धशिला आदि आपकी लिखी पुस्तकें हैं। अधिकांश जीवन भर अध्यापक और मुख्य अध्यापक रहे। रेडियो में भी कई वर्ष रहे। अब अस्वस्थ होकर लखनऊ में रहते हैं।

४—डा० अमरनाथ झा

डा० गंगानाथ झा के द्वितीय पुत्र। प्रयाग विश्वविद्यालय की बी० ए० परीक्षा में सर्वप्रथम आये थे और छात्रावस्था में ही विश्वविद्यालय में अँगरेजी के अध्यापक हो गये थे। आप प्रयाग विश्वविद्यालय में अँगरेजी विभाग के अध्यक्ष हुए और बाद में कई वर्ष तक विश्वविद्यालय के उपकुलपति भी रहे। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के अबोहर अधिवेशन के सभापति थे। हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी के भी उपकुलपति रहे। कई वर्ष उत्तर प्रदेश सेवा-आयोग के अध्यक्ष रहे। बाद में बिहार के सेवा-आयोग के अध्यक्ष होकर पटना चले गये जहाँ उनकी मृत्यु हुई। अँगरेजी और हिन्दी के प्रथम श्रेणी के लेखक और वक्ता, तथा हिन्दी-आन्दोलन के एक मान्य नेता।

५—अमृतलाल नागर (हजरत तस्लीम लखनवी)

जन्म १९१६ ई०। हिन्दी के प्रमुख कहानीकार और उपन्यास-लेखक। हजरत तस्लीम लखनवी के नाम से हास्य-रस की रचनायें लिखी हैं। बूँद और समुद्र, शतरंज के मोहरे, सुहाग के नूपुर, महाकाल, सेठ बाँकेमल, नवाबी मसनद, एटमबम, एक दिल हजार दास्ताँ, गदर के फूल आदि पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। फिल्म और रेडियो में भी काम कर चुके हैं। हिन्दी रंगमंच के सक्रिय समर्थक।

६—अयोध्यासिंह उपाध्याय, हरिऔध

जन्म सन् १८६५ ई० में निजामाबाद (आजमगढ़) में, सनाढ्य ब्राह्मण परिवार में। मिडिल पास कर कुछ दिनों वाराणसी में अँगरेजी की शिक्षा प्राप्त की। घर पर उर्दू, फारसी और संस्कृत का अध्ययन किया। नार्मल पास कर पहले अध्यापकी, फिर कानूनगोई पास कर गिरदावर कानूनगो प्रद पर पहुँच कर अवकाश प्राप्त किया। हिन्दू विश्वविद्यालय में हिन्दी के प्राध्यापक रहे। प्रियप्रवास पर मंगलाप्रसाद पारितोषिक प्राप्त हुआ। हि०सा० सम्मेलन के दिल्ली अधिवेशन के सभापति थे। प्रियप्रवास, रस-कलस, वैदेही-वनवास, चोखे चौपदे, चुभते चौपदे, रुक्मिणी-परिणय, ठेठ हिन्दी का ठाठ, अधखिला फूल, हिन्दी भाषा और उसके विकास का इतिहास आदि प्रकाशित रचनाएँ हैं।

७—आनंदीप्रसाद श्रीवास्तव

जन्म इलाहाबाद जिले के एक कायस्थ जमींदार परिवार में। बी० ए० तक शिक्षा प्राप्त की। कुछ दिनों कायस्थ पाठशाला में हिन्दी-अध्यापक रहे। इण्डियन प्रेस के साहित्य-विभाग में भी कुछ दिनों तक रहे। अछूत नाटक, मकरंद (कहानी संग्रह) आदि आपकी लिखी पुस्तकें हैं। आप एक खंडकाव्य लिख रहे थे। एक दिन घर से निकले और फिर वापस नहीं आये।

८—आरसीप्रसाद सिंह

जन्म १९११ ई० में। आप बिहार के प्रमुख कवियों में हैं। आरसी, संचयिता, कलापी, नयी दिशा, पांचजन्य, जीवन और यौवन, चंदामामा और आजकल आदि आपकी लिखी पुस्तकें हैं।

९—इन्द्र विद्यावाचस्पति

स्वामी श्रद्धानन्द जी के पुत्र। जन्म १८८९ ई० में। अपने पिता द्वारा स्थापित गुरुकुल, काँगड़ी में आपकी पूरी शिक्षा हुई। स्नातक होने के बाद वहीं अध्यापक हो गये और अन्त में वहाँके उपकुलपति पद से अवसर ग्रहण किया। पत्रकारिता और राजनीति में वे सक्रिय भाग लेते थे। कांग्रेस के आन्दोलन में चार बार जेल गये। वे कई वर्ष तक संसद (राज्य-सभा) के सदस्य भी रहे। उन्होंने कई पत्रों का सम्पादन किया किन्तु 'वीर अर्जुन' के

सम्पादक के रूप में उन्हें सबसे अधिक प्रसिद्धि मिली। हिन्दी-पत्रकार-सम्मेलन के सभापति भी रह चुके थे। अपराधी कौन, नैपोलियन बोनापार्ट बिस्मार्क, गैरीबाल्डी, मुगल साम्राज्य का पतन, आर्य-समाज का इतिहास, जीवन-संग्राम, भारतीय उपनिषदों की भूमिका, स्वतंत्र भारत की रूपरेखा, राष्ट्रीयता का मूलमंत्र, भारत में ब्रिटिश साम्राज्य का उदय, जीवन-ज्योति आदि आपकी लिखी पुस्तकें हैं। आपका स्वर्गवास सन् १९६० ई० में हुआ।

१०—इलाचन्द्र जोशी

हिन्दी के प्रमुख कहानीकारों और उपन्यास-लेखकों में आपकी गणना की जाती है। जन्म अल्मोड़ा में सन् १९०२ ई० में। विश्वमित्र, विश्ववाणी, धर्मयुग तथा संगम के सम्पादक रह चुके हैं। जहाज के पंछी, परदे की रानी, संन्यासी, घृणामयी, धूपलता, विजनवती, साहित्य-सर्जना आदि आपकी लिखी पुस्तकें हैं। इस समय आप लखनऊ के आकाशवाणी-संस्थान में काम करते हैं।

११—'उग्र', पाण्डेय बेचनशर्मा,

जन्म सीखड़ (मिर्जापुर) में। आपकी शिक्षा काशी में हुई। आप मतवाला और विक्रम के सम्पादक रह चुके हैं। महात्मा ईसा, शराबी, चाकलेट, घंटा, बुधुवा की बेटी, दिल्ली का दलाल, चन्द हसीनों के खतूत, चार बेचारे, जीजी जी, रेशमी और पंजाब की महारानी आदि आपकी लिखी पुस्तकें हैं। आपने प्रारंभ में उग्र राजनैतिक कहानियाँ लिखी थीं, जिनका संग्रह जब्त कर लिया गया था। सिनेमा के लिए भी आप लिखते हैं। आजकल आप दिल्ली में निवास करते हैं।

१२—डा० उदयनारायण तिवारी

जबलपुर विश्वविद्यालय में हिन्दी-विभाग के अध्यक्ष। जन्म पीपरपांती (बलिया) में सन् १९०५ ई० में। अर्थशास्त्र, हिन्दी, पाली और भाषाविज्ञान में एम० ए०। अंतिम विषय में डी० लिट० की उपाधि प्राप्त की। उसके विशेष अध्ययन के लिए अमेरिका भी गये। आप हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के प्रधान मंत्री भी रह चुके हैं। वीर-काव्य संग्रह, कहानी-कुंज, कवितावली रामायण की टीका, भूषण-संग्रह, हिन्दी-साहित्य का इतिहास, भोजपुरी भाषा और साहित्य आदि आपकी लिखी पुस्तकें हैं।

१३—उदयशंकर भट्ट

जन्म इटावा में सन् १८९७ ई० में। काव्यतीर्थ तथा शास्त्री हैं। संस्कृत के अध्यापक भी रह चुके हैं। तक्षशिला, राका, मानसी, विसर्जन, विक्रमादित्य, दाहर अथवा सिंध-पतन, अंबा, सगर-विजय, कमला, अंतहीन अन्त, मत्स्यगंधा, विश्वामित्र आदि आपकी रचित पुस्तकें हैं। आपके जीवन का काफी समय अविभाजित पंजाब में बीता। आप कवि, नाटककार और उपन्यास-लेखक हैं। नाटककार के रूप में विशेष ख्याति मिली है। आप कई वर्ष आकाशवाणी में हिन्दी के कार्यकर्त्ता रहे। इधर आपको नेत्रों का कष्ट हो गया है, और दिल्ली में रहकर विश्राम कर रहे हैं।

१४—उमेशचन्द्र देव

जन्म फर्रुखाबाद में सन् १९०४ ई० में। तिब्बी कालेज के आयुर्वेदाचार्य तथा गुरुकुल के विद्यावाचस्पति। सरस्वती के संपादकीय विभाग में १२ वर्ष तक रहे। मृत्यु १९५१ ई० में हुई। विश्वकवि रवीन्द्रनाथ, वंचिता, प्रतिशोध, अतीत के बिखरे पत्र आदि आपकी लिखी पुस्तकें हैं।

१५—उषादेवी मित्रा—हिन्दी कहानी-लेखिका

जन्म १९०१ ई० में कलकत्ते में। मातामही श्रीमती विनोदिनी देवी। पति इंजीनियर थे जिनका स्वर्गवास हो गया। पहले बँगला में लिखती थीं। हिंदी की सफल कहानी-लेखिका। वचन का मोल, पिया, जीवन की मुसकान, पथचारी, आँधी के छन्द, महावर, सांध्य पूरबीले, नष्ट नीड़ आदि आपकी लिखी पुस्तकें हैं।

१६—एड्विन ग्रीव्स

आप वाराणसी में ईसाई मिशन के अधिकारी थे। आप हिन्दी-प्रेमी थे और नागरीप्रचारिणी सभा के कार्यों में विशेष रूप से रुचि रखते थे। उसकी प्रबन्ध-समिति के सदस्य भी थे। कैथी लिपि सम्बन्धी एक पुस्तिका भी आपने छपाई थी।

१७—कन्नोमल एम० ए०

आप धौलपुर राज्य में न्यायाधीश थे। आपके लेख दर्शन, प्राचीन संस्कृति, इतिहास आदि विषयों पर सरस्वती तथा अन्य पत्रों में छपते थे। आपकी मृत्यु सन् १९३३ ई० में हुई। भारत के धुरंधर कवि आपकी लिखी पुस्तक है।

१८—(सेठ) कन्हैयालाल पोद्दार

जन्म सन् १८७१ ई० में मथुरा के एक समृद्ध परिवार में हुआ। वे संस्कृत तथा साहित्य शास्त्र के बड़े पंडित थे। ब्रजभाषा काव्य के भी बड़े मर्मज्ञ थे। वे अच्छे समीक्षक थे। छंद-शास्त्र, अलंकार आदि में उनकी बड़ी पैठ थी। व्यापार में लगे रहने पर भी वे साहित्य-सेवा के लिए समय निकाल लेते थे। सरस्वती में आरंभ काल से ही लिखते रहे। उनकी पुस्तकों से उनकी आलोचक दृष्टि और पांडित्य का पता लगता है। अलंकार-प्रकाश, काव्य-कल्पद्रुम, मेघदूत-विमर्श, संस्कृत साहित्य का इतिहास उनके अधिक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ हैं। उनके पांडित्य के सम्मान में हिन्दी साहित्य-सम्मेलन ने उन्हें साहित्य-वाचस्पति की उपाधि दी थी, तथा ब्रज साहित्यमंडल ने उन्हें एक अभिनन्दन ग्रंथ भेंट किया था। यह अभिनन्दन ग्रंथ ब्रज और ब्रजभाषा साहित्य का विश्वकोश है। वे कविता भी करते थे। उनकी मृत्यु सन् १९५६ ई० में हुई।

१९—(राजा) कमलानन्द सिंह

आप विहार के बनैली राज की शाखा श्रीनगर राज्य के राजा थे। हिन्दी के लेखक और उन्नायक थे। आप पं० अम्बिकादत्त व्यास के शिष्य थे। उनकी प्रेरणा से ही आपने हिन्दी साहित्य का अध्ययन किया और कविता तथा लेख लिखे। आपने अनेक पुस्तकों का बँगला से हिन्दी में अनुवाद किया। उनका बंकिम बाबू के आनन्दमठ का अनुवाद बहुत प्रसिद्ध हुआ। आपकी मृत्यु ३४ वर्ष की आयु में १९१० ई० में हुई।

२०—कामताप्रसाद गुरु

जन्म सन् १८७५ ई० में (परकोटा) सागर में कान्य-कुब्ज वंश में। आपके पूर्वज कानपुर से वहाँ जा बसे थे। सागर जिले के दांगी राजा के दीक्षागुरु होने से इस परिवार की दी उपाधि, पांडे की जगह, गुरु हो गई। एन्ट्रेंस पास कर कुछ दिनों बन्दोबस्त के दफ्तर में काम किया। पुनः अध्यापक हुए। आप कई स्थानों में अध्यापक तथा डिप्टी-इन्सपेक्टर रहकर नार्मल स्कूल जबलपुर में नियुक्त हो गये। वहाँसे १९२८ में आपने अवकाश ग्रहण किया। बीच में छुट्टी लेकर कुछ दिनों तक आपने सरस्वती और बालसखा के संपादन में सहयोग प्रदान किया था। मध्यप्रदेश के पिछले युग के प्रमुख हिन्दी-उन्नायकों और लेखकों में थे। उस पीढ़ी में माधवराव सप्रे, भानुजी, गंगाप्रसाद अग्निहोत्री, तथा गुरुजी हिन्दी के प्रमुख समर्थक, कार्यकर्त्ता और लेखक थे। गुरुजी अच्छे निबन्धकार थे किन्तु उनकी प्रसिद्धि वैयाकरण के रूप में है। हिन्दी-व्याकरण उनकी स्थायी कीर्ति है।

२१—कार्तिकप्रसाद खत्री

जन्म १८५१ ई० में कलकत्ते में। सन् १८७१ ई० में पिता की मृत्यु से एन्ट्रेंस तक ही शिक्षा प्राप्त कर पाये। 'प्रेमविलासिनी' मासिक और 'हिन्दी-प्रकाशन' साप्ताहिक का आपने प्रकाशन प्रारम्भ किया। जीविका के लिए कुछ समय बिसातखाने की दूकान भी की। रींवा में ११ वर्ष तक महाराजा के मुसाहब रहे। फिर अन्य कई स्थानों में भटक कर वाराणसी को ही स्थायी निवास बनाकर भारत-जीवन का संपादन करते रहे। सरस्वती के प्रथम वर्ष के संपादक-मंडल में आप भी थे। आपकी लिखी लगभग २० पुस्तकें हैं, जिनमें कुछ अनुवाद हैं। इला, प्रमीला, जया, मधुमालती आदि आपके लिखे उपन्यास हैं। आप कुछ दिनों नागरी प्रचारिणी सभा के उपप्रधान भी रहे। मृत्यु ५३ वर्ष की आयु में सन् १९०४ ई० में हुई।

२२—डा० काशीप्रसाद जायसवाल

भारत के प्राचीन इतिहास और पुरातत्व के धुरंधर विद्वान्। जन्म सन् १८८१ ई० में मिर्जापुर में। आप बैरिस्टर और आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के एम० ए० थे। आप छात्रावस्था में ही कविता करने लगे थे तथा हिन्दी-प्रेम के कारण इँगलैंड से भी सरस्वती के लिए लेख लिखते थे। विहार शोध-परिषद् आपके प्रयत्न से ही महत्वपूर्ण कार्य कर प्रसिद्ध हुई। आप 'पाटलिपुत्र' (साप्ताहिक) पटना के कई वर्ष तक सम्पादक रहे। हिन्दू राज-तंत्र पर पहले-पहल उसीमें हिन्दी में लिखा और बाद में आपकी अँगरेजी की पुस्तक इस विषय पर निकली जो सर्वत्र प्रसिद्ध हुई। आपकी मृत्यु सन् १९३७ ई० में ६२ वर्ष की आयु में हुई।

२३—किशोरीलाल गोस्वामी

जन्म सन् १८८६ ई० में बृन्दावन के एक प्रसिद्ध निम्बार्क सम्प्रदाय के आचार्य परिवार में। पितामह बृन्दावन के सर्वश्रेष्ठ विद्वान् एवं आचार्य तथा मातामह वाराणसी के संस्कृत के विद्वान् थे, जिनसे भारतेन्दु जी ने छन्द-शास्त्र सीखा था। किशोरीलालजी का पालन-पोषण और शिक्षण वाराणसी में मातामह के यहाँ हुआ और इसी कारण आप भारतेन्दु के संपर्क में आये। १८९८ ई० में आपने 'उपन्यास' मासिक निकालना प्रारम्भ किया जिसमें आप के लिखे उपन्यास छपते रहे। सरस्वती के प्रथम वर्ष के संपादक-मंडल में आप भी थे। आपने लगभग ६५ उपन्यास लिखे। अन्य विषयों पर भी आपने लिखा है और कवितायें की हैं। इक्कीसवें हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन झाँसी के आप सभापति थे। आपकी मृत्यु सन् १९३२ ई० में ६६ वर्ष की आयु में हुई।

२४—कृष्णकान्त मालवीय

जन्म सन् १८८३ ई० में। आप पूज्य मदनमोहन मालवीयजी के भतीजे थे। आपने वकालत पास की किन्तु आपका जीवन सार्वजनिक सेवा-कार्य में ही बीता। १९१२ ई० में आपने 'मर्यादा' निकाली। बाद में पूज्य मालवीयजी द्वारा स्थापित 'अभ्युदय' का संपादन किया। आपने राजनीति में सक्रिय भाग लेकर जेलयात्रा की। आप केन्द्रीय असेम्बली के सदस्य थे। सुहागरात या बहूरानी को सीख, मनोरमा के पत्र, मातृत्व, संसार-संकट आदि आपकी लिखी पुस्तकें हैं। आपकी मृत्यु सन् १९४१ ई० में ५८ वर्ष की आयु में हुई।

२५—कृष्णदेवप्रसाद गौड़ एम० ए०, एल० टी०

जन्म सन् १८९५ ई० में। आप डी० ए० वी० कालेज के प्राचार्य रह चुके हैं। हास्यरस की रचनायें 'बेढब बनारसी' नाम से लिखते हैं। आजकल उत्तर प्रदेश विधान-परिषद् के सदस्य हैं। आपने हास्य-रस के कई पत्रों का संपादन किया। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन इलाहाबाद और नागरी-प्रचारिणी सभा वाराणसी के पदाधिकारी रह चुके हैं। आप हि० सा० सम्मेलन वाराणसी की स्वागत-कारिणी के अध्यक्ष थे। प्रसाद-परिषद, वाराणसी के प्रधान हैं। साहित्य-संयम, बेढबजी की बहक, बनारसी इक्का, मसूरीवाली, पिकसन की डायरी तथा 'खड़ी बोली कविता की प्रगति' आदि आपकी लिखी पुस्तकें हैं।

२६--केदारनाथ मिश्र, 'प्रभात' एम० ए०

जन्म सन् १९०७ ई० में। आप पटना-निवासी हैं। कलेजे के टुकड़े, श्वेतनील, कलापिनी, कम्पन, संवर्त, कालदहन, कैकेयी, सृजनहार, अर्पण, तप्तगृह आदि आपकी लिखी पुस्तकें हैं।

२७--केशवप्रसाद पाठक एम० ए०

जन्म सन् १९०६ ई० में जबलपुर में। आप वहाँ के नगर-पुरोहित तथा ज्योतिषाचार्य पं० लक्ष्मीप्रसाद पाठक के पुत्र थे। आपने उमर खय्याम की रुबाइयों का हिन्दी पद्य में अनुवाद किया था। आपकी लिखी सब कविताओं का संयुक्त संग्रह साहित्य-संघ, जबलपुर ने 'केशव पाठक की काव्य-कृतियाँ' नाम से प्रकाशित किया है। आपकी मृत्यु सन् १९५७ ई० में ५१ वर्ष की आयु में हुई।

२८--केशवप्रसाद मिश्र

आप (भदैनी) वाराणसी के निवासी थे तथा संस्कृत, पाली, प्राकृत आदि के विद्वान् थे। आप नागरीप्रचारिणी पत्रिका के कई वर्ष तक सम्पादक रहे। आप हिन्दू-विश्वविद्यालय के हिन्दी-विभाग के अध्यक्ष थे। मेघदूत का पद्यात्मक अनुवाद तथा आलोचनात्मक भूमिका आपकी लिखी पुस्तक है।

२९--केशवप्रसाद सिंह

आपके संबंध में कुछ विश्वस्त जानकारी प्राप्त नहीं हो सकी है।

३०--केसरी

आप बिहार के कवि हैं। पूरा नाम कलक्टर सिंह 'केसरी' है। अध्यापन-कार्य करते हैं। आम, महुआ और कदंब आपकी किशोरोपयोगी कविताओं का संग्रह है।

३१--महामहोपाध्याय डा० गंगानाथ झा एम० ए०, डी० लिट्०

आप दरभंगा के मैथिल ब्राह्मण थे। संस्कृत के प्रकांड पंडित तथा हिन्दी-प्रेमी थे। १९०२ ई० में म्योर कालेज इलाहाबाद में संस्कृत के प्राध्यापक नियुक्त हुए। आप संस्कृत कालेज वाराणसी के प्राचार्य नियुक्त होने वाले प्रथम भारतीय विद्वान् थे। प्रयाग विश्वविद्यालय के उप-कुलपति पद पर आप तीन बार निर्वाचित हुए। प्रयाग में द्विवेदी मेला आपके सभापतित्व में हुआ था।

३२--गंगाप्रसाद अग्निहोत्री

जन्म सन् १८७० ई० में नागपुर में। आपके पूर्वज रायबरेली के थे। आपके पिता नागपुर में रेशमी कपड़े के व्यवसायी थे। एन्ट्रेंस तक अध्ययन किया। पिता की आर्थिक कठिनाई के कारण वर्धा में सेटलमेंट अफसर श्री जगन्नाथप्रसाद 'भानु' के अनुग्रह से वहाँ नकलनवीस का कार्य करने लगे। श्री भानु के छन्द-प्रभाकर की रचना में विशेष सहायता की। उन्हींके परामर्श से चिपलूणकर की पुस्तकों का अनुवाद किया। आप कुछ दिनों, छुईखदान और कोरिया (म० प्र०) रियासतों के अधिकारी रहे। आपने शेष जीवन गोरक्षा-विषयक आन्दोलन में व्यतीत किया। मृत्यु सन् १९३१ ई० में ६१ वर्ष की आयु में हुई। संस्कृत कवि-पंचक, मेघदूत, निबन्ध-मालादर्श (अनुवाद), डा० जानसन की जीवनी और नर्मदा-विहार आपकी लिखी या अनुवादित पुस्तकें हैं।

३३--गंगाप्रसाद पाण्डेय

कवि तथा आलोचक। जन्म कोठी रियासत, मध्य भारत में सन् १९१४ ई० में। काव्य-कलना, नीरक्षीर, निबंधिनी, छायावाद, रहस्यवाद, महादेवी वर्मा, कामायनी-एक परिचय, साहित्य-संतरण, आदि आपकी लिखी पुस्तकें हैं।

३४--गंगाशंकर मिश्र

आप हिन्दू विश्वविद्यालय में प्रधान पुस्तकाध्यक्ष थे। बहुत दिनों दैनिक 'सन्मार्ग' के सम्पादक रहे। विद्या-व्यसनी और निबंधकार। भारत का इतिहास, भारत में ब्रिटिश साम्राज्य आदि आपकी लिखी पुस्तकें हैं।

३५--गणेशशंकर विद्यार्थी

जन्म ग्वालियर में सन् १८९१ ई० में एक कायस्थ परिवार में। एन्ट्रेंस पास कर कानपुर करेंसी दफ्तर में कुछ दिनों नौकरी की। २२ वर्ष की आयु में १९१२ ई० में 'प्रताप' साप्ताहिक को संचालित और संपादित करना प्रारम्भ किया। आचार्य द्विवेदीजी को आपने साहित्यिक गुरु बनाया। देश-सेवा के कार्य में आपका अधिकांश जीवन जेल ही में बीता। आप १९वें हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन गोरखपुर के सभापति थे। प्रताप के संपादन के अतिरिक्त कई राजनैतिक तथा साहित्यिक पुस्तकें अनुवादित कीं। १९३१ ई० में हिन्दू-मुस्लिम दंगे शान्त करने के प्रयत्न में आपने जीवन की बलि दे दी।

३६--गांगेय नरोत्तम शास्त्री

जन्म १९०० ई० में वाराणसी में। हिन्दू विश्व-विद्यालय में संस्कृत के अध्यापक रहे। असहयोग आन्दोलन में त्याग-पत्र दे दिया। काशी विद्यापीठ में भी कुछ समय अध्यापक रहे। कलकत्ता में रहते थे। आप कवि और लेखक थे। मृत्यु सन् १९५५ ई० में हुई। गांगेय वाग्बाण, गांगेय दोहावली, गांगेय तरंग, समस्या-पूर्ति चंद्रिका, प्रणय-पूरण, करुणा-तरंगिणी आदि आपकी पुस्तकें हैं।

३७--गिरिजाकुमार घोष (लाला पार्वतीनन्दन)

आप साल्ट रेवेन्यू आफिस में क्लर्क थे। उस नौकरी को छोड़कर इण्डियन प्रेस में मैनेजर हो गये। आपही के समय में सरस्वती का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ था। आपने पार्वतीनन्दन नाम से कहानियाँ लिखीं और बँगला से



रामधारीसिंह 'दिनकर'



चतुर्वेदी द्वारकाप्रसाद शर्मा



परिपूर्णानन्द वर्मा



निराला



राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन



मुंशी प्रेमचंद



घनश्यामदास बिड़ला



भगवतीप्रसाद वाजपेयी



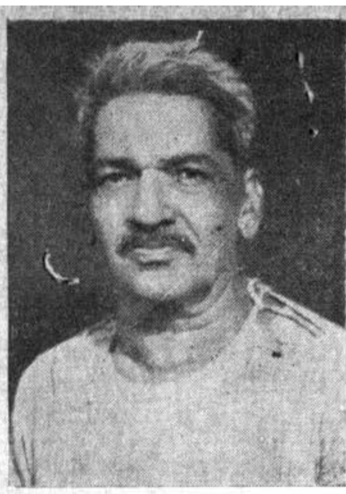
सर्दार पूर्णसिंह



हरवंशराय 'बच्चन'



बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'



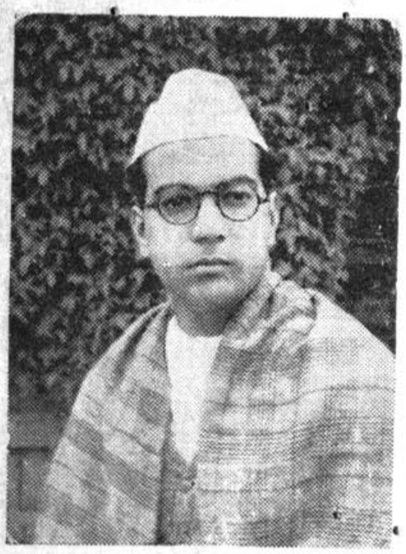
पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी



भगवतीचरण वर्मा



भाई परमानन्द



श्रीमन्नारायण



राजा पंचमसिंह



रघुवंशलाल गुप्त आई० सी० एस०



माखनलाल चतुर्वेदी



रामदास गौड़



महावीरप्रसाद द्विवेदी

अनुवादित कीं। कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ की कहानी का हिन्दी में सर्वप्रथम अनुवाद आपने किया जो सरस्वती में १९०१ ई० में प्रकाशित हुआ। बाद म आपने लीडर प्रेस मे भी मैनेजर का कार्य किया। आपकी मृत्यु ४२ वर्ष की आयु में सन् १९२० ई० में हुई। होमर गाथा, गल्पलहरी, नारी-रत्न-माला, छोटी बहू, लक्ष्मी, बाल-रामायण, सन्त-जीवनी आदि आपकी लिखी या अनुवादित पुस्तकें हैं।

३८--गिरिजाकुमार माथुर

आप अशोकनगर, ग्वालियर निवासी हैं। आप आकाशवाणी में स्टेशन-डायरेक्टर हैं। धूप के धान (कविता-संग्रह) जनमकैद (एकांकी) आपकी रचनाएँ हैं।

३९--गिरिजादत्त शुक्ल 'गिरीश', बी० ए०

आप जौनपुर के निवासी थे और (दारागंज) प्रयाग में स्थायी रूप से रहने लगे थे। आपने बनलता, अरुणोदय आदि साहित्यिक पत्र निकाले। ज्योतिषविषयक ग्रहवाणी का भी प्रकाशन तथा संपादन करते थे। आपका महाकाव्य तारकवध आपकी मृत्यु के कुछ समय पूर्व ही प्रकाशित हो सका। आपने उपन्यास और आलोचना ग्रंथ लिखे हैं। बहता पानी, जगद्गुरु, बाबू साहब (उपन्यास) तथा गुप्तजी की काव्यधारा, महाकवि हरिऔध, (आलोचनात्मक पुस्तकें) आपकी रचनाएँ हैं।

४०--(सर) गिरिजाशंकर वाजपेयी

आप लखनऊ-निवासी थे और पं० शीतलाप्रसाद वाजपेयी सब-जज के सुपुत्र थे। १९११ ई० में आप प्रयाग विश्वविद्यालय की बी० एस-सी० परीक्षा में सर्वप्रथम आये। अतः आई० सी० एस० की शिक्षा प्राप्त करने के लिए आपको छात्रवृत्ति मिली। आप आई० सी० एस० होनेवाले प्रथम कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद आप केन्द्रीय सरकार के प्रधान सचिव बने। बम्बई के राज्यपाल भी रहे। आप सरस्वती में बहुत दिनों पहले लेख लिखते थे। आपकी मृत्यु सन् १९५४ ई० में ६३ वर्ष की आयु में हुई।

४१--गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी, महामहोपाध्याय

जन्म सन् १८८४ ई० में जयपुर में माथुर चतुर्वेदी परिवार में। आप व्याकरणाचार्य हैं तथा महामहोपाध्याय की उपाधि प्राप्त हैं। आप हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के दिल्ली अधिवेशन में दर्शन विभाग के अध्यक्ष निर्वाचित हुए थे। आप महाराजा संस्कृत कालेज, जयपुर के प्राचार्य थे। वहाँसे अवकाश ग्रहण करने पर हिन्दू विश्वविद्यालय में प्राच्यविद्या महाविद्यालय के प्राचार्य पद पर रहे। आजकल आप वाराणसी में निवास करते हैं। धर्म-पारिजात, वैदिक विज्ञान और भारतीय संस्कृति तथा कुछ निबन्ध-संग्रह आपकी रचनाएँ हैं।

४२--गिरिधर शर्मा 'नवरत्न'

जन्म सन् १८८१ ई० में झालरापाटन में। मध्य-भारत हिन्दी-साहित्य-समिति इन्दौर के संस्थापकों में से थे। बँगला, गुजराती, मराठी, उर्दू, फारसी, अँगरेजी, संस्कृत, पाली और प्राकृत के ज्ञाता थे। मृत्यु १९६१ ई० में हुई। जयाजयंत, भीष्म-प्रतिज्ञा, सुकन्या, सावित्री, सांख्य दोहावली आदि आपकी लिखी पुस्तकें हैं। गीतावली और चित्रांगदा का आपने अनुवाद किया था।

४३--ठा० गुरुभक्तसिंह 'भक्त'

जन्म सन् १८९९ ई० में जमानिया (गाजीपुर) में। आजमगढ़ नगरपालिका के प्रशासक रहे। कुसुमकुंज, सरस-सुमन, नूरजहाँ और विक्रमादित्य आपके काव्य-ग्रंथ हैं।

४४--गुलाब खंडेलवाल

कवि। हिन्दू विश्वविद्यालय के एम० ए०। गया में रहते और व्यापार करते हैं। छात्रावस्था से ही कविता करते हैं। चाँदनी आपका कविता-संग्रह प्रकाशित है।

४५--ठा० गोपालशरण सिंह

आप नईगढ़ी (रीवा) के निवासी थे। जन्म सन् १८९१ ई० में हुआ था। आप इलाहाबाद के द्विवेदी-मेले के स्वागताध्यक्ष थे। आपका निधन सन् १९६० ई० में हुआ। माधवी, कादंबिनी, मानवी, सुमना, ज्योतिष्मती, संचिता आदि आपके कविता-संग्रह हैं।

४६--गोपाल सिंह नैपाली

जन्म सन् १९०६ ई० में बिहार में। रतलाम टाइम्स, चित्रपट, सुधा और योगी के संपादक रहे। आजकल आप सिनेमा-क्षेत्र में गीतकार हैं। पंछी, कल्पना, उमंग, रागिनी, नीलिमा, पंचमी और नवीन आदि आपके कविता-संग्रह हैं।

४७--माननीय पं० गोविन्दवल्लभ पन्त

अल्मोड़ा में जन्म। आपने इलाहाबाद विश्व-विद्यालय से वकालत की परीक्षा उत्तीर्ण की। छात्रावस्था में ही आपने लेख लिखे थे। सरस्वती में उन दिनों आपका लेख छपा था। आप अनेक वर्षों तक उत्तर प्रदेश के मुख्य-मंत्री रहे। बाद में केन्द्रीय सरकार के गृह-मंत्री रहे। आप नागरी-प्रचारिणी सभा के सभापति थे। आपके मुख्य-मंत्रित्व-काल में ही उत्तर प्रदेश की राष्ट्र-भाषा हिन्दी घोषित हुई। सन् १९६० में ७२ वर्ष की आयु में निधन हुआ।

४८--गोविन्दवल्लभ पन्त

जन्म सन् १८९९ ई० में अल्मोड़ा में। आप नाटक, कहानी, उपन्यास और कविता लिखते हैं। वरमाला, अंगूर की बेटी, राजमुकुट, अंतःपुर का छिद्र, सुहाग-बिन्दी,

ययाति (नाटक) और तारिका, जूनिया, अनुरागिनी, एक सूत्र, नूरजहाँ, मदारी, अमिताभ, प्रतिभा, मुक्ति के बन्धन, प्रगति की राह, (उपन्यास) आपके लिखे ग्रंथ हैं।

४९—म० म० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा

जन्म सन् १८६३ ई० में रोहेड़ा (सिरोही राज्य, राजस्थान) में औदीच्य ब्राह्मण वंश में। घर पर संस्कृत, प्राकृत और वेद की शिक्षा प्राप्त की। बम्बई से एन्ट्रेंस परीक्षा पास करने के बाद इंटर तक अध्ययन किया। प्राचीन लिपि और प्राचीन इतिहास का गंभीर अध्ययन किया। उदयपुर इतिहास-कार्यालय के मंत्री रहे। बाद में अनेक संग्रहालयों के अध्यक्ष पद पर कार्य किया। 'प्राचीन लिपिमाला' पर मंगलाप्रसाद पारितोषिक प्राप्त हुआ। १७वें हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, भरतपुर के सभापति हुए। सन् १९४७ ई० में आपका निधन हुआ। आपकी लिखी पुस्तकों में मध्यकालीन भारतीय संस्कृति, सोलंकियों का इतिहास, सिरोही राज्य का इतिहास, राजपूताने का इतिहास, उदयपुर, डूंगरपुर, बाँसवाड़ा, जोधपुर, प्रतापगढ़ राज्य, बीकानेर आदि के इतिहास हैं।

५०—चतुरसेन शास्त्री

जन्म सन् १८९१ ई० में। पहले बम्बई फिर दिल्ली में वैद्य का कार्य किया। इसके साथ साहित्य-सेवा भी की। कहानी, उपन्यास के क्षेत्रों में विशेष ख्याति प्राप्त की। सन् १९६० ई० में निधन हुआ। अमर अभिलाषा, सिंहगढ़-विजय, खवास का व्याह, वैशाली की नगर-वधू, सोना और खून, गोली आदि दर्जनों पुस्तकें लिखी हैं। आपका सम्पूर्ण कथा-साहित्य अब एक पुस्तकमाला के रूप में दिल्ली से प्रकाशित हो रहा है।

५१—चतुर्वेदी द्वारकाप्रसाद शर्मा

आप इटावा-निवासी थे। प्रयाग में बस गये थे। वारेन हेस्टिंग्ज का जीवन-चरित्र लिखने के कारण १९१० में सरकारी नौकरी से अलग कर दिये गये। उसे छोड़कर साहित्य-सेवा में सारा जीवन लगाया। 'राघवेन्द्र' मासिक भी आपने निकाला था। कई वर्षों तक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के प्रबन्ध-मंत्री रहे। आपकी लिखी पुस्तकों की संख्या सौ से ऊपर है जिनमें वारेन हेस्टिंग्ज, राबर्ट क्लाइव, रामानुजाचार्य, माधव मिश्र निबंधावली, आल्हा, वाल्मीकि रामायण का अनुवाद, शब्दार्थ-कौस्तुभ (संस्कृत-हिन्दी कोश), शब्दार्थ पारिजात (हिन्दी-कोश) आदि मुख्य हैं। आपकी लिखी बाल साहित्यमाला खूब चली। उसमें २० से अधिक पुस्तकें हैं। मृत्यु सन् १९५४ ई० में ७७ वर्ष की आयु में हुई।

५२—चन्द्रकुँवर बर्त्वाल बी० ए०

जन्म उत्तर गढ़वाल में सन् १९०२ ई० में। आप अध्यापक थे। २८ वर्ष की आयु में सन् १९४१ में मृत्यु हो गई। नंदिनी (गीत-कथा), नागिनी (गद्य-संग्रह) आदि आपकी पुस्तकें हैं।

५३—चन्द्रधर शर्मा गुलेरी

जन्म जयपुर में सन् १८८३ ई० में। पूर्वज काँगड़ा के गुलेर नामक राज्य के राजपुरोहित थे। इसी कारण गुलेरी उपाधि प्रचलित हुई। आपके पिता जयपुर के प्रधान पंडित भी थे। घर पर संस्कृत की शिक्षा तथा महाराजा कालेज में अँगरेजी की शिक्षा प्राप्त की। आप इलाहाबाद की एन्ट्रेंस परीक्षा में सर्वप्रथम आये थे। इसके बाद इलाहाबाद विश्वविद्यालय की बी० ए० परीक्षा में भी प्रथम आये। कुछ दिनों मेयो कालेज, अजमेर में संस्कृत-अध्यापक रहे। फिर हिन्दू विश्वविद्यालय में संस्कृत विभाग के अध्यक्ष हुए। सन् १९२२ ई० में ३९ वर्ष की आयु में निधन हो गया। आप प्राकृत, पाली, बँगला, मराठी आदि के ज्ञाता थे। १९०० ई० में जयपुर में आपके प्रयत्न से नागरी-भवन स्थापित हुआ। आप 'समालोचक' पत्र के संपादक थे। नागरी-प्रचारिणी सभा के सदस्य थे और शाहपुराधीश से उनकी स्वर्गीय पत्नी सूर्यकुमारी की स्मृति में २५ हजार रुपये नागरी-प्रचारिणी सभा को दिलवाये जिससे सूर्यकुमारी पुस्तकमाला का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ।

५४—चन्द्रप्रकाश वर्मा

जन्म नरसिंहपुर में हुआ। प्रयाग विश्वविद्यालय से हिन्दी में एम० ए० किया। इस समय बुनियादी प्रशिक्षण महाविद्यालय ग्वालियर के प्राचार्य हैं। आपके अनेक कविता-संग्रह प्रकाशित हैं। आपने 'सीता' खंड-काव्य लिखा है।

५५—कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंह

जन्म सन् १९१० ई० में सीतापुर में। अनेक वर्षों तक ओयल, खीरी में युवराज कालेज के हिन्दी-विभाग के अध्यक्ष रहे। इस समय महाराज सयाजीराव विश्वविद्यालय बड़ोदा के हिंदी विभाग के अध्यक्ष हैं। मेघमाला, बा और बापू आपकी लिखी पुस्तकें हैं।

५६—चन्द्रबली पाण्डेय

आप आजमगढ़-निवासी थे। वहांके मिशन स्कूल से एन्ट्रेंस पास किया। इसके बाद वाराणसी आकर १९३१ ई० में हिन्दू विश्वविद्यालय से एम० ए० किया तथा पं० रामचन्द्र शुक्ल और मौलवी महेशप्रसाद के निकट संपर्क में आये। अँगरेजी और संस्कृत के अतिरिक्त उर्दू, अरबी और फारसी का भी अच्छा ज्ञान प्राप्त किया। आपने चार वर्षों तक सूफी दर्शन और साहित्य का अनुसंधान कर उस पर महत्त्वपूर्ण पुस्तक लिखी। हिन्दी के पक्ष में आन्दोलन करने के लिए आपने हिंदी नामक पत्र निकाला। आपका त्यागमय जीवन था। टोपी और जूता का त्याग कर दिया था। पूरा जीवन

अध्ययन और हिन्दी-प्रचार में लगाया। ३७वें हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, हैदराबाद के सभापति हुए थे और साहित्य-वाचस्पति की उपाधि मिली थी। नागरी-प्रचारिणी सभा के भी सभापति थे। सन् १९५८ ई० में निधन हुआ।

५७—चिरंजीलाल पाराशर

आप गाजियाबाद में रहते हैं और हास्य लेखक और कहानीकार हैं। उपदेशसागर, देवरभाभी, नये रिश्ते, पत्नीव्रता, महिला-शासन, स्वर्ग की दीवार आदि आपकी लिखी पुस्तकें हैं।

५८—छबीलेलाल गोस्वामी

प्रसिद्ध साहित्य-सेवी पं० किशोरीलाल गोस्वामी के पुत्र थे। जन्म सन् १८८६ ई० में मथुरा में। कांग्रेस आन्दोलन में भाग लेकर जेल-यात्रा की। 'मोहन' मथुरा और 'ब्राह्मण' अंबाला के संपादक रहे। पंचपुष्प, पंच पराग, पंच कलिका, पंच पल्लव, पंच मंजरिका, जावित्री आदि आपकी लिखी पुस्तकें हैं।

५९—जगदीश झा 'विमल'

जन्म सन् १८९१ ई० में कुमैठा (भागलपुर) में। आपको अँगरेजी, संस्कृत, बँगला और मराठी की जानकारी थी। पद्मप्रसून, खरा सोना, जीवन-ज्योति, लीला, आशा पर पानी, दुरंगी दुनिया, सती पंचरत्न आदि आपकी लिखी पुस्तकें हैं।

६०—जगदीशनारायण माथुर

आप देहरादून के डी० ए० वी० कालेज में भौतिक शास्त्र के प्राध्यापक हैं। आजकल जर्मनी में अनुसंधान कार्य कर रहे हैं।

६१—जगन्नाथदास 'रत्नाकर' बी० ए०

जन्म सन् १८६६ ई० में वाराणसी में अग्रवाल वैश्य कुल में। पूर्वज पानीपत-निवासी थे और मुगल राज्य में उच्च अधिकारी थे। आपने वाराणसी में शिक्षा प्राप्त कर बी० ए० की उपाधि प्राप्त की। आवागढ़ रियासत में कुछ दिन नौकरी कर अयोध्या-नरेश के निजी सचिव हुए। राजा साहब के मरने पर रानी साहब के निजी सचिव हुए। 'साहित्य-सुधा-निधि' पत्र का भी कुछ दिन तक प्रकाशन किया। बिहारी सतसई की टीका पर मंगलाप्रसाद पारितोषिक प्राप्त किया। उद्धव-शतक और गंगावतरण आपके ब्रजभाषा के प्रसिद्ध काव्य-ग्रंथ हैं। आप सरस्वती के प्रथम वर्ष के संपादक-मंडल में थे। २०वें हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन कलकत्ता के सभापति हुए। सन् १९३२ ई० में ६६ वर्ष की आयु में स्वर्गवास। आपकी समस्त रचनाएँ नागरी-प्रचारिणी सभा वाराणसी द्वारा प्रकाशित हुई हैं।

६२—जगन्नाथप्रसाद 'मिलिन्द'

जन्म सन् १९०७ ई० में मुरार (ग्वालियर) में। आप उर्दू, अँगरेजी, संस्कृत, मराठी, बँगला और गुजराती के ज्ञाता हैं। शान्ति-निकेतन में एक वर्ष तक हिन्दी के अध्यापक रहे। 'भारती' और 'जीवन' के संपादक रह चुके हैं। आप कवि और नाटककार हैं। प्रताप-प्रतिज्ञा, जीवन-संगीत, पंखुरियाँ, आँखों में, नवयुग के गान, आदि आपकी लिखी पुस्तकें हैं।

६३—जगन्मोहन वर्मा

जन्म सन् १८७० ई० में देवीपार गाँव (बस्ती) के एक संपन्न कायस्थ परिवार में। फैजाबाद से इन्टर किया। वहाँ पर रा० बं० लाला सीताराम आपके गुरु थे। आपने स्कूलों के सब-डिप्टी इन्स्पेक्टर से, जो आपके श्वशुर थे, संस्कृत की शिक्षा पाई। १९१० में साल भर तक कायस्थ पाठशाला इलाहाबाद में अध्यापक रहे। उसके बाद वाराणसी जाकर नागरी-प्रचारिणी सभा में हिन्दी शब्द-सागर के सहायक संपादक के रूप में काम करते रहे। आपने पाली, प्राकृत, सिंहली आदि का भी ज्ञान प्राप्त किया था। फाहियान, सुएनच्वांग, इत्सिंग आदि आपकी अनुवादित और राणा जंगबहादुर तथा बुद्धदेव आपकी मौलिक पुस्तकें हैं। आपकी मृत्यु सन् १९२४ ई० में ५४ वर्ष की आयु में हुई।

६४—जनार्दन भट्ट एम० ए०

स्व० पं० बालकृष्ण भट्ट के द्वितीय सुपुत्र। पुरातत्त्व के विद्वान्। दिल्ली में रहकर शोध कार्य करते हैं। 'अशोक के धर्मलेख' आपकी प्रसिद्ध पुस्तक है।

६५—जयशंकर प्रसाद

जन्म सन् १८८९ ई० में वाराणसी में वैश्यकुल में। छायावाद की वृहत्त्रयी में इनकी गणना है। क्वींस कालेज में शिक्षा पाई—पिता की मृत्यु पर घर पर ही उर्दू, संस्कृत, अँगरेजी आदि के ज्ञान का विकास किया। आपने नाटक, कहानी, उपन्यास और कविताएँ लिखी हैं। जनमेजय का नागयज्ञ, चन्द्रगुप्त मौर्य, अजातशत्रु, स्कंदगुप्त (नाटक), छाया, प्रतिध्वनि, आकाशदीप, आँधी और इन्द्रजाल (कहानी-संग्रह), कंकाल और तितली (उपन्यास), झरना, लहर, काननकुसुम (कविता-संग्रह) तथा कामायिनी (महाकाव्य) आपकी रचनाएँ हैं। मृत्यु सन् १९३७ ई० में ४८ वर्ष की आयु में हुई।

६६—जवाहरलाल नेहरू

स्व० पं० मोतीलाल नेहरू के विश्वविख्यात पुत्र और भारत गणतन्त्र के प्रधान मंत्री। राजनीति के अतिरिक्त लिखने का व्यसन प्रारम्भ से है। मेरी कहानी, विश्व-इतिहास की झलक, हिन्दुस्तान की कहानी, पिता के पत्र पुत्री के नाम, राजनीति से दूर, राष्ट्रपिता, राष्ट्रभाषा का

सवाल, लड़खड़ाती दुनिया, हिन्दुस्तान की समस्याएँ, आदि आपकी लिखी पुस्तकें हैं।

६७--जानकीवल्लभ शास्त्री

आप भैगरा (बिहार) निवासी हैं। आप संस्कृत के विद्वान् हैं और हिन्दी के छायावाद युग के एक प्रसिद्ध कवि। रूप और अरूप (कविता), कानन और अपर्णा (कहानी-संग्रह), साहित्य-दर्शन आदि आपकी लिखी पुस्तकें हैं।

६८--जितेन्द्रकुमार

आप खगड़िया (भागलपुर) के निवासी हैं। 'अन्तर के गीत' और 'स्वर के दीप' आपके कविता-संग्रह प्रकाशित हैं।

६९--जैनेन्द्रकुमार

प्रसिद्ध उपन्यासकार और विचारक। जन्म सन् १९०५ ई० में कौड़ियागंज-अलीगढ़ में। शिक्षा जैन गुरुकुल, हस्तिनापुर और हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी में हुई। असहयोग आन्दोलन में पढ़ाई छोड़ दी और जेल-यात्रा की। प्रेमचंदजी की मृत्यु के उपरांत कुछ दिनों 'हंस' का संपादन किया। परख, त्यागपत्र, सुनीता, कल्याणी, प्रस्तुत प्रश्न, पूर्वोदय, सोच-विचार, मन्थन, साहित्य का श्रेय और प्रेय आदि आपकी लिखी पुस्तकें हैं।

७०--ज्योतिप्रसाद मिश्र 'निर्मल'

जन्म सन् १९०३ ई० में। आप मनोरमा, भारतेन्दु, देशदूत, भारत, सम्मेलन-पत्रिका आदि के संपादक रह चुके हैं। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के साहित्य-मंत्री भी रहे। स्त्री-कवि-कौमुदी, नवयुग-काव्य-विमर्श, कहानियाँ, आदि आपकी संपादित पुस्तकें हैं।

७१--ज्वालादत्त शर्मा

जन्म सन् १८८८ ई० में किसरौल, मुरादाबाद में। घर पर ही संस्कृत, अँगरेजी, उर्दू, बँगला आदि का ज्ञान प्राप्त किया। आचार्य द्विवेदीजी से परिचय होने पर १९१२ ई० में कहानियाँ लिखना प्रारंभ किया जो सरस्वती में छपने लगीं। ज्वालापुर के 'भारतोदय' पत्र में 'वाणभट्ट' के छद्मनाम से लेख लिखते थे। सन् १९५८ ई० में घर से दिल्ली जाते समय रेलगाड़ी में मृत्यु हो गई। मौलाना हाली और उनका काव्य, गीता में ईश्वरवाद (अनु०) के अतिरिक्त प्रसिद्ध उर्दू कवियों पर आपने पृथक्-पृथक् पुस्तकें लिखी थीं।

७२--श्रीमती तारा पाण्डेय

हिंदी की प्रसिद्ध कवयित्री। आप नैनीताल-निवासी डा० पुरुषोत्तम पाण्डेय की पत्नी हैं। अंतरंगिणी, आभा, रेखाएँ, वेणुकी, शुकपिक, सीकर आदि आपकी पुस्तकें हैं।

७३--तेजनारायण काक

जन्म १९०४ ई० में। जोधपुर-निवासी। विश्वविद्यालय के एम० ए०। मदिरा (गद्य काव्य) तथा कई कविता-संग्रह प्रकाशित हैं।

७४--रामधारीसिंह 'दिनकर'

कवि, विचारक, राजनीतिज्ञ। आपकी गणना हिन्दी के शीर्षस्थ कवियों में होती है। जन्म सिमरियाघाट, मुंगेर में सन् १९०८ ई० में। बी० ए० तक शिक्षा प्राप्त की। आजकल राज्यसभा के सदस्य हैं। उर्वशी, कुरुक्षेत्र, रेणुका, हुंकार, रसवन्ती, द्वन्द्वगीत, कलिंग-विजय, संस्कृति के चार अध्याय, काव्य की भूमिका, पन्त, प्रसाद और मैथिलीशरण, चक्रवाल, उजली आग आदि आपकी पुस्तकें हैं।

७५--दुष्यंतकुमार 'परदेसी'

आप मेरठ-निवासी हैं। आजकल आकाशवाणी भोपाल में हैं। 'सूर्य का स्वागत' आपकी लिखी पुस्तक है।

७६--देवीदत्त शुक्ल

आप बक्सर (रायबरेली) निवासी हैं। आपने १९२१ ई० में सरस्वती के सहायक सम्पादक के रूप में कार्य प्रारंभ किया। बाद में संयुक्त तथा मुख्य संपादक रहे। कुछ समय तक बालसखा के सम्पादक रहे। नेत्रों की ज्योति जाती रहने से आपने अवकाश ले लिया। कुछ खरी-खोटी, सम्पादक के पच्चीस वर्ष, बाल द्विवेदी, विचित्र देश में, कालरात्रि आदि आपकी पुस्तकें हैं।

७७--देवीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त'

जन्म सन् १९११ ई० में देवरी (सागर) में। नव राजस्थान, नवभारत, माया, बिजली, बालसखा और सरस्वती के संपादकीय विभाग में काम कर चुके हैं। 'मंजरी' का भी संपादन किया है। दुर्गावती, मीठी तानें, झिलमिल तारे, अन्तर्ज्वाला, उलटफेर, ज्वारभाटा, विसर्जन, रैनबसेरा, आँखमिचौनी, अपना-पराया आदि पुस्तकों की रचना की है।

७८--(राय) देवीप्रसाद पूर्ण

जन्म सन् १८६८ ई० में जबलपुर में एक कायस्थ परिवार में। बी० ए०, एल्-एल० बी० पास कर कुछ दिनों वहीं वकालत की, फिर कानपुर को अपना स्थायी कार्य-क्षेत्र बनाया। दीवानी की वकालत में यथेष्ट धन और यश अर्जित किया। घर पर संस्कृत सीखी। आपके घर पर प्रति सप्ताह कवियों का समाज जुटता था। 'रसिक-वाटिका' कविता की मासिक पत्रिका निकाली तथा एक धार्मिक पत्र 'धर्म-कुसुमाकर' निकाला। चन्द्रकला भानुकुमार (नाटक), धाराधरधावन (मेघदूत का अनुवाद) और पूर्ण संग्रह (कविता-संग्रह) आपकी पुस्तकें हैं। सन् १९१५ ई० में ४७ वर्ष की आयु में स्वर्गवास।



डा० सम्पूर्णानन्द



सेठ गोविन्ददास



श्रीधर पाठक



श्रीमती शकुन्तला सिरोठिया



सन्त निहालसिंह



सद्गुरुशरण अवस्थी



सुमित्रानन्दन पन्त



सुभद्राकुमारी चौहान



रामकुमार वर्मा



मनोहरदास चतुर्वेदी



श्रीप्रकाश



रामचन्द्र शुक्ल



श्रीमती महादेवी वर्मा



श्यामबिहारी मिश्र



रामनरेश त्रिपाठी



डा० रामप्रसाद त्रिपाठी



राय कृष्णदास



विश्वेश्वरनाथ रेऊ



रामनारायण मिश्र

७९—'मुंशी' देवीप्रसाद

जन्म सन् १८४७ ई० में एक कायस्थ परिवार में। पिता टोंक राज्य में नौकर थे। आपने भी पहले टोंक में और फिर जोधपुर में नौकरी की। जोधपुर की कचहरियों और दफ्तरों में उर्दू की जगह हिन्दी में कार्य कराने के लिए आपने बहुत उद्योग किया। बाद में इतिहास विभाग के अधिकारी होकर खोज का कार्य करने लगे। आपने पचासों ऐतिहासिक जीवनियाँ लिखीं। आपने ५००) वार्षिक आय प्रदान करनेवाली पूँजी नागरी-प्रचारिणी सभा को दान दी, जिससे देवीप्रसाद ऐतिहासिक पुस्तकमाला निकलने लगी। मारवाड़ का इतिहास, प्राचीन कवि, इंसाफ-संग्रह, सिंध का प्राचीन इतिहास, यवन-राजवंशावली, मुगल-वंशावली, अरबी भाषा में संस्कृत ग्रंथ, परिहारों का इतिहास आदि आपके लिखे ग्रंथ हैं।

८०—देवीप्रसाद शुक्ल बी० ए०

आप कानपुर (कुरसवाँ मुहल्ला) के निवासी थे और क्राइस्ट-चर्च कालेज में प्राध्यापक थे। म० प्र० द्विवेदीजी से परिचय होने के कारण, उनके अस्वस्थ होने पर, आपने १९१० ई० में एक वर्ष तक सरस्वती का सम्पादन किया था। बाद में आप इलाहाबाद विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में प्राध्यापक हो गये। आप हिन्दू बोर्डिंग हाउस (अब महामना मालवीय छात्रावास) के अधीक्षक थे और जीवन के अन्त तक उस पद पर रहे। इलाहाबाद में प्रथम हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन अधिवेशन के प्रतिनिधियों को आपने हिन्दू-बोर्डिंग हाउस में बड़े सत्कार के साथ ठहराया था। आपका निधन १९५९ ई० में अस्सी वर्ष की आयु में हुआ।

८१—द्वारकाप्रसाद मिश्र

जन्म सन् १९०१ ई० में उन्नाव में। आपने कांग्रेस के आन्दोलन में सक्रिय भाग लिया। एल-एल्० बी० के छात्र रहते हुए ही विधान-सभा के सदस्य हो गये। आप मध्य प्रदेश सरकार के गृहमंत्री थे। वहाँ से पृथक् होकर कई वर्षों तक राजनीति क्षेत्र से दूर रहे। आजकल आप सागर विश्वविद्यालय के उपकुलपति हैं। आप 'लोकमत' दैनिक के जन्मदाता थे। 'श्रीशारदा' और 'सारथी' के संपादक रहे। हिन्दुओं का स्वातंत्र्य-प्रेम, और कृष्णायन (कृष्ण-चरित पर अवधी में महाकाव्य) के रचयिता हैं।

८२—धनीराम प्रेम

आपने इँगलैंड जाकर डाक्टरी पास की और वहीं कई वर्ष तक प्रैक्टिस करते रहे। बाद में आप स्वदेश लौट आये। आपके एकांकी और कहानियों का प्रकाशन सरस्वती, चाँद तथा अन्य पत्रों में होता रहा। प्राणेश्वरी, वीरांगना पन्ना, वल्लरी आदि आपकी लिखी पुस्तकें हैं।

८३—धर्मवीर एम० ए०

जन्म सन् १९०४ ई० में झेलम में। आप पंजाब प्रान्तीय हिन्दू महासभा के मंत्री थे और गोलमेज कान्फ्रेंस में भाई परमानन्द के साथ उनके परामर्शदाता-रूप में विलायत गये थे। कला की वस्तुओं की परख के लिए आपने चीन, जावा, बाली आदि की यात्रा की। संसार की कहानियाँ, पंजाब का इतिहास, दक्षिण का इतिहास, अमर पत्र, बारह कहानियाँ आदि आपकी लिखी पुस्तकें हैं। आजकल आप जालंधर में पुस्तक-प्रकाशन-कार्य करते हैं।

८४—नरदेव शास्त्री

जन्म सन् १८८० ई० में महाराष्ट्र परिवार में। किशोरावस्था में ही उत्तर भारत चले आये। आप बाल-ब्रह्मचारी हैं। 'शंकर' और 'भारतोदय' के संपादक रह चुके हैं। हि० सा० सम्मेलन के देहरादून अधिवेशन के स्वागताध्यक्ष थे। ज्वालापुर महाविद्यालय और गुरुकुल वृन्दावन के मुख्याचार्य रहे। आर्य-समाज का इतिहास, ऋग्वेद-आलोचन, गीता-विमर्श, यजुर्वेदालोचन, कारावास की राम-कहानी, आत्मकथा अथवा आपबीती जगबीती आपकी लिखी पुस्तकें हैं।

८५—नरेन्द्र शर्मा

प्रसिद्ध कवि। आप खुर्जा (बुलन्दशहर) निवासी हैं। आपकी शिक्षा इलाहाबाद विश्वविद्यालय में हुई। आप इस समय विविध भारती आकाशवाणी, दिल्ली के मुख्य अधिकारी हैं। प्रवासी के गीत, कदलीबन, पलाशवन, कामिनी, द्रौपदी, नई सुबह, प्रभात फेरी, रक्त चंदन, अग्निशस्य, मिट्टी और फूल, लाल निशान, हंसमाला आदि आपकी पुस्तकें हैं।

८६—आचार्य नरेन्द्रदेव

जन्म सन् १८८९ ई० में फैजाबाद में। पाली, प्राकृत, संस्कृत और अँगरेजी के विद्वान् थे। आपने त्रैमासिक 'विद्यापीठ' और साप्ताहिक 'संघर्ष' का सम्पादन किया। काशी विद्यापीठ के मुख्याचार्य थे। लखनऊ और हिंदू विश्व-विद्यालयों के उप-कुलपति पद पर थे। आपने कांग्रेस से पृथक् होकर समाजवादी दल की स्थापना की थी। समाजवाद, लक्ष्य तथा साधन, बौद्धदर्शन तथा अभिधर्म-कोष (अनु०) आपकी लिखी पुस्तकें हैं।

८७—नर्मदाप्रसाद खरे

जन्म १९१४ ई०। आपने जबलपुर के साप्ताहिक 'शुभचिन्तक' और मासिक 'युगारंभ' का संपादन किया। 'प्रेमा' के भी संपादक रह चुके हैं। स्वर पाथेय, नीराजना, कथा-कलश, बाँसुरी, और ज्योतिगंगा आदि के रचयिता हैं।

८८—डा० नलिनीमोहन सान्याल

आप बंगाल के शिक्षा-विभाग में जिला-विद्यालय-निरीक्षक थे। अपने पद से अवकाश ग्रहण करने के बाद

आपने स्वाध्याय द्वारा कलकत्ता विश्वविद्यालय से हिन्दी में एम० ए० की उपाधि प्राप्त की और वहाँ हिन्दी-प्राध्यापक हो गये। उस पद से आपने ७० वर्ष की आयु में अवकाश ग्रहण किया किन्तु स्वाध्याय करते रहे और ८२ वर्ष की आयु में पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त की। आपका लिखा भाषा-विज्ञान सरस्वती में धारावाही रूप में प्रकाशित होता रहा। आपकी मृत्यु सन् १९५१ ई० में ९० वर्ष की आयु में हुई।

८९—डा० नवलविहारी मिश्र एम० बी० बी० एस०

आप स्व० पं० कृष्णविहारी मिश्र के अनुज हैं और सीतापुर में डाक्टरी करते हैं। हिन्दी के वैज्ञानिक साहित्य की अभिवृद्धि में विशेष रुचि रखते हैं। वैज्ञानिक कथा-साहित्य के लेखक और प्रेमी हैं। आपके उद्योग से जूल्स वर्न की लिखी वैज्ञानिक कथाओं का हिन्दी में अनुवाद हो गया है।

९०—बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'

जन्म सन् १८९७ ई० में मालवा में शाजापुर के निकट म्यानागाँव में हुआ। १९१७ ई० में मेट्रिक परीक्षा उत्तीर्ण की और स्व० श्री गणेशशंकर विद्यार्थी के संपर्क में आये। आपने कानपुर में बी० ए० तक अध्ययन कर असहयोग-आन्दोलन में भाग लिया। पहली कहानी १९१६ ई० में सरस्वती में छपी। प्रताप और प्रभा के संपादक-रूप में आपने अपने जीवन का अधिकांश व्यतीत किया। संसद-सदस्य थे। पद्मभूषण की उपाधि भी आपको प्रदान की गई थी। क्वासि, अपलक, कुंकुम, रश्मि-रेखा (कविता-संग्रह) तथा उर्मिला (महाकाव्य) आपकी लिखी पुस्तकें हैं। सन् १९६० ई० में ६२ वर्ष की आयु में दिल्ली में आपका स्वर्गवास हुआ।

९१—नागार्जुन

जन्म तरूबनी (दरभंगा) में एक मैथिल ब्राह्मण परिवार में। वास्तविक नाम पं० वैद्यनाथ मिश्र है। शिक्षा मिथिला और वाराणसी में हुई। आप संस्कृत के विद्वान् हैं तथा पाली, बँगला, गुजराती, मराठी के भी ज्ञाता हैं। आपने हि० सा० स० के कोश विभाग में काम किया तथा राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति वर्धा में भी रहे। आपने श्री राहुल सांकृत्यायन के साथ तिब्बत यात्रा की थी। आप कवि और उपन्यासकार हैं। रतिनाथ की चाची, बाबा बटेसरनाथ, दुखमोचन, वरुण के बेटे, बालचनवाँ आदि उपन्यास और मेघदूत (पद्यात्मक अनुवाद) आपके लिखे ग्रंथ हैं।

९२—नाथूराम 'शंकर' शर्मा

जन्म सन् १८५९ ई० में हरदुआगंज (अलीगढ़) में एक ब्राह्मण परिवार में। आप कट्टर आर्यसमाजी थे। कुछ दिन ड्राफ्टसमैन पद पर कार्य करके त्यागपत्र दे दिया। फिर आजीवन एक वैद्य के रूप में स्वतंत्र जीवन व्यतीत करते रहे। समस्या-पूर्तियों के लिए आपने अनेक चाँदी-सोने के पदक, पगड़ी, घड़ी, पुस्तकें आदि प्राप्त कीं। जलसों में गाने योग्य जोशीले गाने भी आपने बनाये। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने कविता-कलाप शीर्षक से जो काव्य-संकलन किया, उसमें आपकी भी कविताएँ सम्मिलित कीं। अनुरागरत्न, वायस विजय, गर्भरंडा-रहस्य और शंकर सरोज आदि आपके काव्य-ग्रंथ हैं। मृत्यु सन् १९३२ ई० में ७३ वर्ष की आयु में हुई। पं० हरिशंकर शर्मा आपके सुपुत्र हैं।

९३—सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

छायावाद की वृहत्त्रयी के सदस्य। जन्म सन् १८९६ ई० में महिषादल राज्य (मेदिनीपुर) में हुआ जहाँ आपके पिता पं० रामसहाय नौकरी करते थे। आप कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। आपका पैतृक स्थान गढ़ाकोला गाँव (उन्नाव) था। आपने घर पर ही शिक्षा पाई। २२ वर्ष की आयु में विधुर हो गये और फिर विवाह नहीं किया। आप रामकृष्ण मिशन के समन्वय पत्र के सहकारी संपादक रहे। 'मतवाला' साप्ताहिक के संपादकीय विभाग में कई वर्षों तक रहे जिसमें आपकी कविताएँ छपती थीं। आपने कविता, कहानी, उपन्यास और व्यंग्य-कथाओं की रचना की। बंकिमचन्द्र के उपन्यासों का आपने अनुवाद किया। परिमल, गीतिका, तुलसीदास, अनामिका, कुकुरमुत्ता (कविता) अप्सरा, अलका, प्रभावती, निरुपमा, लिली, सखी, सुकुल की बीबी (उपन्यास), कुल्ली भाट, बिल्लेसुर बकरिहा, (व्यंग-कथा) तथा प्रबंध-परिचय, रवीन्द्र-कविता-कानन (संकलित) आदि आपकी लिखी पुस्तकें हैं। आप का निधन १९६१ ई० में हुआ।

९४—'निरंकुश' एम० ए०

बरेली-निवासी। पहिले भौतिकशास्त्र के प्राध्यापक थे, बाद में डिप्टीकलक्टरी की प्रतिद्वंद्विता में सफल होकर सरकारी सेवा में आ गये। अच्छे कहानीकार और विचारक।

९५—निर्मला मित्र

आपका जन्म बंगाल में हुआ। अब इटारसी में रहती हैं। हिंदी में विशेष रुचि है। हिंदी की श्रेष्ठ कहानीकार हैं।

९६—रणजीत पंडित

गुजरात में जन्म। बैरिस्टर। आप पं० मोतीलाल नेहरू के दामाद और विजयलक्ष्मी के पति थे। आप संस्कृत के विद्वान् थे। कल्हणकृत राजतरंगिणी (संस्कृत) का आपने अँगरेजी में अनुवाद किया था। आपके लेख सरस्वती में छपे हैं।

९७—जी० एस० 'पथिक'

आपका पूरा नाम गौरीशंकर है। जन्म ग्वालियर में हुआ। अब आप कलकत्ते में रहते हैं। असहयोग आन्दोलन में भाग लिया और राज्य के कोपभाजन हुए। आपने 'धर्माभ्युदय' और 'व्यापार' का संपादन किया। करेंसी, स्टाक एक्सचेंज, शिल्प-विज्ञान, व्यापार-संगठन नीति, भारतीय कपड़े का व्यापार, भारतवर्ष के उद्योग-धंधे, भारतवर्ष के बैंक, सहकारी खेती आदि आपकी लिखी पुस्तकें हैं। आप अर्थशास्त्र के विशेषज्ञ हैं।

९८—पद्मकान्त मालवीय

आप इलाहाबाद के प्रसिद्ध नेता और साहित्यिक पं० कृष्णकान्त मालवीय के सुपुत्र हैं। अपने पिता की मृत्यु के बाद आपने 'अभ्युदय' का संपादन और संचालन किया। आप कवि हैं। 'त्रिवेणी', 'प्याला' आदि आपके कविता-संग्रह हैं।

९९—पद्मसिंह शर्मा

जन्म सन् १८७६ ई० में नायक नगला (बिजनौर) में भूमिहार ब्राह्मण-वंश में हुआ। कुछ दिन घर पर संस्कृत की शिक्षा प्राप्त कर आपने वाराणसी, लाहौर, जालंधर आदि में संस्कृत का अध्ययन किया, उर्दू-फारसी का भी ज्ञान प्राप्त किया। आप उत्कट पुस्तक-संग्रही थे। आप आर्य-प्रतिनिधि-सभा उत्तर प्रदेश के उपदेशक रहे। स्वामी श्रद्धानन्द द्वारा स्थापित गुरुकुल के मुखपत्र 'सत्यवादी' का आपने संपादन किया। ज्वालापुर महाविद्यालय में ८ वर्ष अध्यापक रहे। बिहारी-सतसई की भूमिका लेख-माला रूप में पहले सरस्वती में छपी। पुस्तकाकार छपने पर आपको उस पर मंगलाप्रसाद पारितोषिक मिला। १९वें हि० सा० सम्मेलन मुजफ्फरपुर के आप सभापति थे। हिन्दुस्तानी एकेडमी में 'हिन्दी-उर्दू-हिन्दुस्तानी' पर आपने व्याख्यान दिया जो पुस्तक रूप में छपा। सन् १९३२ ई० में ५६ वर्ष की आयु में आपका स्वर्गवास हुआ।

१००—बाबूराव विष्णु पराड़कर

जन्म सन् १८८३ ई० में वाराणसी में एक महाराष्ट्र ब्राह्मण वंश में हुआ। आप प्रारम्भ में बंगवासी, हितवार्ता और भारतमित्र के संपादक रहे। १९१६ में भारतमित्र के संपादन के समय आपको कारावास का दंड मिला और १९२० तक जेल में रहे। उन्हें एक बार फिर छः मास की सजा हुई। १९२० में 'आज' दैनिक का संपादन-भार सम्हाला और आजीवन उस पद पर रहे। बीच में कुछ दिनों 'संसार' दैनिक का संपादन किया। आप २७वें हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन शिमला के सभापति थे। 'हंस' के 'प्रेमचन्द स्मृति-अंक' का भी आपने संपादन किया था। सन् १९५५ ई० में ७२ वर्ष की आयु में आपका स्वर्गवास हुआ।

१०१—परिपूर्णानन्द वर्मा

जन्म वाराणसी में। डा० सम्पूर्णानन्द के अनुज। आपके सामयिक विषयों के, राजनैतिक लेख सरस्वती में छपते रहे हैं। अपराध-निवारण के लिए अन्तर्राष्ट्रीय परिषद् के आप उप-सभापति हैं। मरघट का मुर्दा, वाजिदअलीशाह, अवधराज का पतन, छः सप्ताह की बात, पतन की परिभाषा आदि पुस्तकें आपकी लिखी हैं।

१०२—पारसनाथ सिंह बी० ए०, एल्-एल्० बी०

आप बिहार के निवासी थे। हिन्दू विश्वविद्यालय में आप श्री पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी के सहपाठी थे तथा कक्षा में सदा प्रथम आया करते थे। आपने छात्रावस्था में ही लेख और कविताएँ लिखना तथा अनुवाद करना प्रारम्भ कर दिया था। पटना में भारती पब्लिशर्स लि० नाम की एक बड़ी प्रकाशन-संस्था आपने स्थापित की थी। आप श्री घनश्यामदास बिड़ला के वैयक्तिक सहायक तथा परामर्शदाता थे। बिड़ला के अधीन दिल्ली, इलाहाबाद और पटना से प्रकाशित समाचार-पत्रों के प्रधान निर्देशक थे। पक्षी-परिचय, जब्त-सेठ और कैसर की रामकहानी आपकी लिखी पुस्तकें हैं।

१०३—डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल

जन्म जहरखेल (गढ़वाल) में सन् १९०२ ई० में। लखनऊ में कालीचरण हाई स्कूल से एन्ट्रेंस किया। वहाँ बा० श्यामसुन्दरदास के सम्पर्क में आये। हिन्दू विश्वविद्यालय से एम० ए० किया तथा हिन्दी में डी० लिट्० की उपाधि प्राप्त की और कई वर्ष तक वहीं हिन्दी के प्राध्यापक भी रहे। कुछ दिन लखनऊ विश्वविद्यालय में भी हिन्दी के प्राध्यापक रहे। आपने नागरी-प्रचारिणी सभा में खोज का कार्य भी किया था। आपने अनेक महत्त्वपूर्ण खोज सम्बन्धी लेख लिखे। गो० तुलसीदास और रूपक-रहस्य बा० श्यामसुन्दरदास के साथ मिलकर आपने लिखा। हिन्दी-काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय आपकी अपनी लिखी पुस्तक है।

१०४—राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन

राजर्षि टंडनजी खत्री परिवार में उत्पन्न हुए। एम० ए०, एल्-एल० बी० होकर वकालत करते थे। असहयोग आन्दोलन में उसे छोड़कर देश-सेवा और हिन्दी-सेवा में संलग्न हुए। अखिल भारतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, इलाहाबाद के आप जन्मदाता हैं। आप १३वें हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन कानपुर के सभापति बनाये गये थे। आप उत्तर प्रदेश विधान परिषद् के स्पीकर थे। कांग्रेस के नासिक अधिवेशन के अध्यक्ष थे। आप स्व० लाला लाजपत राय द्वारा स्थापित लोक-सेवक-मंडल के अध्यक्ष हैं। १९६० में आपको राष्ट्रपति द्वारा बड़े समारोह के साथ अभिनन्दन-ग्रंथ अर्पित किया गया और 'भारतरत्न' की सर्वोच्च उपाधि दी गयी।

१०५—सरदार पूर्णसिंह

जन्म ऐबटाबाद (पाकिस्तान) में सन् १८८१ ई० में। रावलपिण्डी से एन्ट्रेंस किया। लाहौर में बी० ए० में पढ़ते

समय जापान जाने के लिए छात्रवृत्ति मिली। जापान में आपने व्यावहारिक रसायन विज्ञान का अध्ययन किया। आप देहरादून में इम्पीरियल फारेस्ट इंस्टिट्यूट में रसायन विज्ञान के अध्यापक नियुक्त हुए। जापान में स्व० रामतीर्थ के सम्पर्क में आकर आप वेदान्ती हो गये थे। देहरादून की नौकरी छोड़कर आपने ग्वालियर में कुछ दिनों कृषि-कार्य किया। बाद में पंजाब में खेती करते रहे। १९३१ ई० में ५० वर्ष की आयु में देहान्त हो गया। आपने हिन्दी में बड़े गंभीर लेख लिखे जिनमें से कुछ सरस्वती में छपे थे। पं० रामचन्द्र शुक्ल ने उनके निबन्धों की महत्ता पर हिन्दी-जगत् का ध्यान विशेष आकर्षित किया। पूर्णसिंह ग्रन्थावली में आपके समस्त लेखों का संग्रह है।

१०६—पृथ्वीनाथ शर्मा बी० ए०, एल्-एल० बी०

आप नाटक, कहानी तथा उपन्यास-लेखक हैं। आप पहले लाहौर में रहते थे। आजकल पूर्वी पंजाब में सरकारी अधिकारी हैं। युगसंदेश, उदय-अस्त, अपराधी, साध, दुविधा, उर्मिला, दृष्टि का दोष, विद्रूप आदि आपकी लिखी पुस्तकें हैं।

१०७—प्यारेलाल मिश्र बार एट ला

जन्मभूमि मालथौन(सागर)। आपने तीन वर्ष इँगलैंड में रहकर १९११ ई० में बैरिस्टरी परीक्षा उत्तीर्ण की। इँगलैंड में रहते हुए बहुत से यात्रा-सम्बन्धी तथा वर्णनात्मक लेख लिखे जो सरस्वती में छपते थे। विदेशी समाज तथा रीति-नीति के संबंध में इँगलैंड से पत्र के रूप में आपने बहुत से लेख लिखे थे। इँगलैंड से लौटकर कुछ दिनों तक रायपुर में बैरिस्टरी की। फिर छिन्दवाड़ा चले गये। वहीं आपका निधन हुआ।

१०८—देवीप्रसाद शुक्ल 'प्रणयेश'

जन्म १९०८ ई० में। कानपुर में रहते थे और सनेही जी के शिष्यों में से थे। मुक्त संगीत, निशीथिनी, कालिंदी, विजयाबिहार आपकी कविता-संग्रह की पुस्तकें हैं। आपने स्वामी शंकराचार्य प्रबन्ध-काव्य भी लिखा। आप का निधन १९५९ ई० में हुआ।

१०९—प्रभाकर माचवे

जन्म १९१७ ई० में। मध्य भारत निवासी कवि और निबंधकार। साहित्य अकादमी के उपसचिव। जैनेन्द्र के विचार, कमीनों का साया, संतुलन आदि आपकी लिखी पुस्तकें हैं।

११०—मुंशी प्रेमचन्द

जन्म १८८० ई० में लमही ग्राम (वाराणसी) में कायस्थ-परिवार में। असली नाम धनपतराय था। अल्पायु में ही पिता की मृत्यु हो गई। चार-पाँच मील दूर गाँव से नित्य वाराणसी तक पैदल आकर हिन्दू कालेज में पढ़ते रहे। एफ० ए० में अनुत्तीर्ण होने के बाद नौकरी कर ली। कुछ दिन शिक्षा विभाग में सब डिप्टी इन्स्पेक्टरी कर अध्यापक हो गये। एफ० ए० और बी० ए० की परीक्षाएँ उत्तीर्ण कीं। असहयोग-आन्दोलन में सरकारी नौकरी छोड़ दी। पहले उर्दू में 'नवाब राय' नाम से कहानियाँ और उपन्यास लिखे। सरकार द्वारा चेतावनी मिलने से प्रेमचन्द के छद्म नाम से हिन्दी में लिखने लगे। मन्नन द्विवेदी गजपुरी के सम्पर्क से हिन्दी में लिखने की प्रेरणा प्राप्त की। सेठ महावीरप्रसाद पोद्दार से गोरखपुर में सम्पर्क होने पर सेवासदन उपन्यास लिखा। हिंदी में पहिली कहानी सरस्वती में छपी। सप्तसरोज कहानी-संग्रह भी निकला जिसकी सब कहानियाँ पहले उर्दू में निकल चुकी थीं। सेवासदन, प्रेमाश्रम, रंगभूमि, कायाकल्प, गबन, कर्मभूमि, गोदान आदि उपन्यास आपके लिखे हैं। कर्बला और बलिदान की वेदी नाटक हैं। मानसरोवर नाम से कई भागों में कहानी-संग्रह छपा है। आप हंस का संपादन और प्रकाशन भी करते थे। सन् १९३६ में ५६ वर्ष की आयु में मृत्यु हुई।

१११—फूलदेवसहाय वर्मा

जन्म कौसड़ ग्राम (सारन) में १८९१ ई० में। हिन्दू विश्वविद्यालय में रसायन विज्ञान के प्राध्यापक थे। वहीं आप कालेज आफ टेकनालाजी के मुख्याचार्य हो गये। वहाँसे अवकाश प्राप्त कर बिहार के महाविद्यालयों के निरीक्षक होकर पटना में रहने लगे। आजकल नागरी-प्रचारिणी सभा के विश्व-कोश में विज्ञान विभाग के संपादक हैं। विज्ञान परिषद्, इलाहाबाद के सभापति भी रह चुके हैं। प्रारंभिक रसायन, साधारण रसायन, मिट्टी के बरतन, कोयला, पेट्रोलियम, ईख और चीनी, रबर आदि आपकी लिखी पुस्तकें हैं।

११२—डा० पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी बी० ए०

खैरागढ़ (मध्य प्रदेश) के निवासी। आचार्य महावीर-प्रसाद द्विवेदी के अवकाश लेने पर १९२१ ई० में सरस्वती का संपादन प्रारम्भ किया। कुछ दिनों के बाद इसे छोड़कर खैरागढ़ और अन्य स्थानों में अध्यापक रहे और फिर दो बार सरस्वती का संपादन-भार सम्हाला। पंचपात्र, हिन्दी-साहित्य-विमर्श, विश्वसाहित्य, शतदल, मेरी कहानी आदि आपकी लिखी पुस्तकें हैं।

११३—हरबंशराय 'बच्चन' एम० ए०

जन्म १९०७ ई० में। आप पहले प्रयाग विश्वविद्यालय में अँगरेजी के प्राध्यापक थे। आजकल केन्द्रीय सरकार के विदेशी विभाग में विशेष अधिकारी हैं। तेरा हार, मधुशाला, मधुबाला, मधुकलश, निशानिमन्त्रण, एकान्त संगीत, आकुल अंतर, सतरंगिनी, हलाहल, सूत की माला, आदि आपके कविता-संग्रह हैं।

११४—बदरीनाथ भट्ट बी० ए०

आप गुजराती ब्राह्मण थे। आपके पूर्वज अहमदाबाद से आगरा आ बसे थे। रामायण के प्रसिद्ध टीकाकार,

पं० रामेश्वर भट्ट के आप कनिष्ठ पुत्र थे। आपने हास्यरस की रचनाएँ अधिक लिखीं। दो वर्ष तक इंडियन प्रेस के साहित्य विभाग में रहे और बालसखा के सर्वप्रथम सम्पादक रहे। आप अनेक वर्षों तक लखनऊ विश्वविद्यालय में हिन्दी-विभाग में हिन्दी के प्राध्यापक रहे थे। चुंगी की उमेदवारी चन्द्रगुप्त, दुर्गावती, लबड़धोंधों, तुलसीदास आदि आपकी लिखी पुस्तकें हैं। सन् १९३४ ई० में देहावसान।

११५—बदरीनारायण उपाध्याय 'प्रेमघन'

जन्म सन् १८५५ ई० में मिर्जापुर में। शिक्षा मिर्जापुर, गोंडा और फैजाबाद में घर पर ही मिली। आपने मिर्जापुर से 'आनन्द-कादंबिनी' पत्रिका निकाली। आप भारतेन्दु के घनिष्ठ मित्र थे। आपके यहाँ साहित्यिकों और कवियों का जमघट रहता था। तीसरे हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन कलकत्ते के सभापति हुए। सन् १९२४ ई० में ६८ वर्ष की आयु में देहावसान। भारत सौभाग्य नाटक, आर्याभिनंदन, आनन्द-अरुणोदय, कजली, कादंबिनी, वीरांगना-रहस्य नाटक, संगीत-सुधा-सरोवर, पीयूष-वर्षा, भारत-भाग्योदय, आत्मोल्लास आदि आपकी लिखी पुस्तकें हैं। सम्मेलन से 'प्रेमघन सर्वस्व' नाम से सम्पूर्ण ग्रंथावली प्रकाशित हुई है।

११६—डा० बलदेवप्रसाद मिश्र

पूर्वज बहुराजमऊ (उन्नाव) निवासी थे। पिता पं० नारायणप्रसाद मिश्र राजनांदगाँव में बस गये थे। वहाँ सन् १८९८ ई० में जन्म हुआ। आप रायगढ़ के दीवान रह चुके हैं। 'तुलसी-दर्शन' प्रबन्ध पर आपको नागपुर विश्वविद्यालय से डाक्टर की उपाधि मिली है। आप भारत-सेवक-समाज के मध्य प्रदेश क्षेत्र के प्रधान रह चुके हैं। आप राजनांदगाँव नगरपालिका के अध्यक्ष हैं। शंकर-दिग्विजय, साहित्य-लहरी, गीतासार, कौशल-किशोर, मृणालिनी-परिणय, जीवन-संगीत, मानसमंथन आदि आपकी लिखी पुस्तकें हैं।

११७—बसन्तकुमार चट्टोपाध्याय एम० ए०

कलकत्ता विश्वविद्यालय से भाषा-विज्ञान में एम० ए० किया। आप मैमनसिंह में एक महाविद्यालय के मुख्याचार्य थे। भाषा-विज्ञान संबंधी कई लेख आपने सरस्वती में लिखे थे।

११८—बालकृष्ण भट्ट

सम्पादक, निबंधकार, हिन्दी-उन्नायक और प्रचारक। आपके पूर्वज मालवा से इलाहाबाद आकर बसे। आपका जन्म सन् १८४४ ई० में इलाहाबाद में हुआ। आप संस्कृत के विद्वान् थे और कायस्थ पाठशाला कालेज, इलाहाबाद में २० वर्ष तक संस्कृत के अध्यापक रहे। आपने 'हिन्दी प्रदीप' मासिक निकाला और उसे तीस-बत्तीस वर्ष तक चलाते रहे। आप कुछ दिनों तक हिन्दी-शब्द-सागर के सहायक संपादक रूप में भी काम करते रहे। सौ अजान और एक सुजान, भट्ट निबंधावली, पद्मावती, शर्मिष्ठा और चन्द्रसेन नाटक आपकी लिखी पुस्तकें हैं। आपकी मृत्यु ७० वर्ष की आयु में सन् १९१४ ई० में हुई।

११९—बालकृष्ण राव

स्व० सी० वाई० चिन्तामणि के सुपुत्र। जन्म सन् १९१९ ई० में हुआ। आई० सी० एस० में रह चुके हैं। इस समय इलाहाबाद के नगरप्रमुख हैं। प्रयाग के द्विवेदी मेले में आप कवि-सम्मेलन के मंत्री थे। कौमुदी, आभास, कवि और छवि, रातबीती, हमारी राह, आदि आपकी लिखी कविताओं के संग्रह हैं।

१२०—घनश्यामदास बिड़ला

भारत के शीर्ष उद्योगपति। जन्म सन् १८९४ ई० में हुआ। बिड़ला ब्रदर्स लि० के प्रबन्ध संचालक। अ० भा० हरिजन-सेवक संघ और सस्ता साहित्य-मंडल के संस्थापकों में हैं। बापू, रुपये की कहानी, डायरी के पन्ने, रूप और स्वरूप आदि आपकी लिखी पुस्तकें हैं।

१२१—डा० बेनीप्रसाद (सत्यशोधक)

जन्म सन् १८९५ ई० में गाँव बरार (आगरा) में। आप प्रयाग विश्वविद्यालय में राजनीति विज्ञान विभाग के अध्यक्ष थे। पहले-पहल छात्रावस्था में 'सत्यशोधक' के नाम से निबन्ध लिखकर प्रकाशित कराये। हिन्दी गुलिस्ताँ (अनु०), राजनीति-प्रवेशिका, हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता, संक्षिप्त सूरसागर (संपादित) आपकी रचित पुस्तकें हैं। आपकी मृत्यु ५० वर्ष की आयु में सन् १९४५ ई० में हुई।

१२२—ब्रजनन्दन सहाय

जन्म आखियापुर (शाहाबाद) में सन् १८७४ ई० में। आप बाबू शिवनन्दन सहाय के पुत्र थे। आपके परिवार को मुगलों के समय में सम्मान तथा उपाधि मिली थी। आपने पटना से बी० ए० कर वकालत पास की। आप आरा में वकालत करते थे। वहाँकी नागरी-हितैषिणी पत्रिका के संपादक भी थे। आपने लाल चीन, सौन्दर्योपासक, विश्वदर्शन, राधाकान्त, अरण्यबाला, ब्रजविनोद, बंकिमचन्द्र, राधाकृष्णदास, विद्यापति ठाकुर आदि मौलिक पुस्तकें लिखी थीं। कई पुस्तकों का अनुवाद भी किया था।

१२३—भगवतस्वरूप चतुर्वेदी

आप उत्तर प्रदेश के पुलिस विभाग में अधिकारी हैं। इलाहाबाद में कई वर्षों तक पुलिस सुपरिंटेंडेंट थे। इस समय देहरादून में पुलिस सुपरिंटेंडेंट हैं। आपने पुलिस अनुसंधान सम्बन्धी लेख कहानी रूप में लिखे हैं जो सरस्वती में छपे हैं। 'बेतवा में भँवर' आपका कहानी-संग्रह है। 'हीरोशीमा' उपन्यास में अणुबम के भीषण परिणामों का दिग्दर्शन है जो अपने ढंग का हिंदी में पहिला उपन्यास है।

१२४—भगवतीचरण वर्मा

जन्म सफीपुर ग्राम (उन्नाव) में सन् १९०३ ई० में। हिन्दी के प्रमुख कवि और उपन्यासकार। आपके उपन्यास 'चित्रलेखा' का फिल्म बन चुका है। मधुकण, प्रेम संगीत, मानव (कविता-संग्रह), चित्रलेखा, तीन वर्ष, टेढ़े-मेढ़े रास्ते, और भूले बिसरे चित्र (उपन्यास) तथा इस्टालमेन्ट, दो बाँके (कहानी-संग्रह), हमारी उलझन (लेख-संग्रह) प्रकाशित हैं। आप फिल्म-क्षेत्र में भी रह चुके हैं और आपकी चित्रलेखा पर बना फिल्म बहुत लोकप्रिय हुआ। आकाशवाणी में भी प्रोड्यूसर रह चुके हैं। आजकल स्वतंत्र रूप से लेखन-कार्य करते हैं।

१२५—भगवतीप्रसाद वाजपेयी

जन्म मंगलपुर गाँव (कानपुर) में सन् १८९९ ई० में। आप माधुरी के संपादकीय विभाग में रह चुके हैं। ४ वर्ष तक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के सहायक मंत्री रहे। कुछ दिनों तक साहित्य-मंदिर नाम से प्रयाग (दारागंज) में प्रकाशन-कार्य भी किया। पिपासा, पतित्यक्ता, पतिता की साधना, दो बहनें, गुप्त धन (उपन्यास) और दीपमालिका, पुष्करिणी, खाली बोतल (कहानी-संग्रह) और छलना (नाटक) आपके ग्रंथ हैं।

१२६—भगवानदास बी० ए०

आप वाराणसी के निवासी वणिक थे। वहाँ चौक में आपकी कपड़े की दूकान थी।

१२७—डा० भवानीप्रसाद तिवारी

आपका जन्म सागर में हुआ। रामायण की प्रसिद्ध विनायकी टीका के टीकाकार स्व० श्री विनायकराव के पुत्र हैं। 'प्रहरी' साप्ताहिक के बारह वर्ष तक संपादक रहे। इस समय जबलपुर निगम के महापौर हैं। प्राण-पूजा और गीतांजलि आपकी कविताओं के संग्रह हैं।

१२८—भवानीप्रसाद मिश्र बी० ए०

जन्म सन् १९१४ ई० में नरसिंहपुर में हुआ। १९३५ में नागपुर विश्वविद्यालय से बी० ए० किया। 'शिक्षक' के संपादक रहे। १९३२ ई० में राजनैतिक आन्दोलन में जेल। गीत फरोश आपका काव्य-संग्रह है। इस समय आप आकाशवाणी, दिल्ली में हैं।

१२९—डा० भवानीशंकर याज्ञिक

जन्म सन् १८९८ ई० में गुजराती ब्राह्मण-परिवार में। लखनऊ से एम० बी० बी० एस० और लंदन से डी० पी० एच० की उपाधि प्राप्त की। आपके एक भ्राता पं० जीवनशंकर याज्ञिक हिन्दू विश्वविद्यालय काशी में अँगरेजी के प्राध्यापक थे। आपने कई प्राचीन कवियों के ग्रंथों का संपादन किया है। स्फुट लेख और कविताएँ भी लिखी हैं।

१३०—भाई परमानन्द

राजनीतिक विचारों की उग्रता के कारण आपको कालापानी का दंड मिला था। बाद में वहाँसे आप मुक्त हुए। आप हिन्दू-संगठन के कट्टर समर्थक थे। आप इतिहास के विद्वान् थे। योरप का इतिहास, भारतवर्ष का इतिहास, मेरी कारावास-कहानी आदि आपकी लिखी पुस्तकें हैं। आपने राष्ट्रीय दृष्टि से भारतवर्ष का इतिहास लिखने का प्रथम प्रयास किया था।

१३१—भैरवप्रसाद गुप्त

जन्म १९१८ ई० में बलिया जिले के एक गाँव में। माया, मनोहर कहानियां के सहायक संपादक रहे। दक्षिण भारत हिन्दी-प्रचार-सभा में भी चार वर्ष तक प्रचार-कार्य किया है। आजकल 'नई कहानियाँ' का संपादन करते हैं। मुहब्बत की राहें, मंजिल, बिगड़े हुए दिमाग (कहानी-संग्रह) तथा फरिश्ता और शोले (उपन्यास) आपके ग्रंथ हैं।

१३२—मनमोहन गुप्त

जन्म १९११ ई० में वाराणसी में हुआ। बाल्यावस्था में ही १९१९ ई० से राष्ट्रीय आन्दोलन में योगदान करना प्रारंभ कर दिया। १९२३ ई० में क्रान्तिकारी आन्दोलन में सम्मिलित हो गये। १९२८ ई० में मनमाड षड्यंत्र में १० वर्ष का कारावास का दंड मिला। १९३६ ई० में जेल से छूटे। १९३९ ई० में भारतीय सुरक्षा-विधान के अधीन पुनः गिरफ्तार हुए और १९४६ ई० में कांग्रेसी सरकार द्वारा मुक्त किये गये। अन्तिम दर्शन (दार्शनिक), मनमोहन गुप्त का कहानी-संग्रह और एक क्रान्तिकारी के संस्मरण आपकी लिखी पुस्तकें हैं।

१३३—मन्नन द्विवेदी गजपुरी

जन्म सन् १८९० ई० में गजपुर (गोरखपुर) में। आप कश्यप-गोत्रीय मंगलालय के दुबे थे। १९०८ ई० में गवर्नमेन्ट कालेज वाराणसी से बी० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण की। आप तहसीलदार रहे। अल्पायु में ही आपकी मृत्यु हो गई। मातृभूमि, विन्ध्याचल, प्रेम-पंचक, दासत्व, गृहलक्ष्मी, प्रार्थना, आर्य-ललना, बंधु-विनय, विनोद आदि आपकी लिखी पुस्तकें हैं।

१३४—मनोरंजनप्रसाद एम० ए०

हिन्दू विश्वविद्यालय में अँगरेजी विभाग में प्राध्यापक रहे। आजकल राजेन्द्र महाविद्यालय, छपरा, के मुख्याचार्य हैं। राष्ट्रीय मुरली, उत्तराखंड के पथ पर, गुनगुन और संगिनी आपकी लिखी पुस्तकें हैं।

१३५—मनोहरदास चतुर्वेदी

आप उत्तर प्रदेश के जंगल-विभाग के अधिकारी थे। बाद में भारत सरकार के वन-विभाग के सर्वोच्च अधिकारी हुए। कई वर्ष लैबनान के वन-सलाहकार भी रहे। उत्तर प्रदेश

के पेड़ पौधों के सम्बन्ध में आपके लेख अँगरेजी में छपते थे। आपने शिकार की कहानियाँ भी लिखी हैं। सरस्वती में शिकार संबंधी हिंदी की कहानियाँ लिखीं।

१३६—महंत धनराज पुरी

जन्म सन् १९०० ई० में। श्री जंगबहादुर गिरि के सुपुत्र हैं और चम्पारन जिले में सिकटा मठ के महंत हैं। आप व्याकरण-वाचस्पति हैं। आपने कविताएँ तथा शिकार-सम्बन्धी कहानियाँ लिखी हैं।

१३७—महादेवप्रसाद सेठ

आप मिर्जापुर के निवासी थे और कलकत्ते में व्यवसाय करते थे। आपकी कविताएँ सरस्वती में छपती थीं। कलकत्ते से आपने पं० सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', बा० शिवपूजन सहाय तथा श्री नवजादिकलाल श्रीवास्तव आदि के सहयोग से मतवाला साप्ताहिक का प्रकाशन किया था। उग्र-लिखित पुस्तकों का प्रकाशन भी आपने बड़ी धूम से किया था। बाद में कलकत्ते से अपना प्रेस और कार्यालय मिर्जापुर ले आये। वहीं आपका स्वर्ग-वास हुआ।

१३८—श्रीमती महादेवी वर्मा एम० ए०

जन्म फर्रुखाबाद में सन् १९०७ ई० में। प्रयाग विश्व-विद्यालय से एम० ए०। कुछ दिनों चाँद का संपादन किया। महिला विद्यापीठ महाविद्यालय (प्रयाग) की मुख्याचार्या तथा साहित्य-संसद की संस्थापिका हैं। नीहार, रश्मि, नीरजा, सांध्यगीत, दीपशिखा, यामा आदि आपके काव्य-संग्रह हैं। अतीत के चल-चित्र, स्मृति की रेखाएँ, पथ के साथी और श्रृंखला की कड़ियाँ गद्य-ग्रंथ। नीरजा पर आपको सेकसरिया पुरस्कार मिला था।

१३९—आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी

द्विवेदीजी ने अपना परिचय आत्मनिवेदन में सविस्तर दे दिया है। आप दौलतपुर (रायबरेली) के निवासी थे। आपने अँगरेजी और संस्कृत की शिक्षा प्राप्त की और रेलवे विभाग में क्लर्क हो गये। सन् १९०३ ई० में सरस्वती-संपादक के रूप में साहित्य-जगत् में आये। तब से १८ वर्ष तक सरस्वती के संपादक रहे। बीच में कुछ समय अस्वस्थ रहने से संपादन का भार आपने दूसरों को सौंपा था। आपकी लिखी और अनुवादित पुस्तकों में कालिदास की निरंकुशता, कुमार-संभवसार, हिन्दी कालिदास की समालोचना, स्वाधीनता, शिक्षा, बेकन-विचार-रत्नावली, संपत्तिशास्त्र, हिन्दी महाभारत, कविता-कलाप, अद्भुत अलाप, नाट्यशास्त्र, नैषध-चरित-चर्चा, प्राचीन पंडित और कवि, रसज्ञरंजन, साहित्य-सीकर, वेणी-संहार नाटक, साहित्य संदर्भ आदि हैं। आपकी साहित्य-सेवा के उपलक्ष्य में इलाहाबाद में द्विवेदी-मेला और वाराणसी में अभिनन्दन-समारोह आयोजित किया गया था। सन् १९३८ ई० में ७४ वर्ष की अवस्था में मृत्यु हुई।

१४०—मौलवी महेशप्रसाद, आलिम-फाजिल

जन्म फतेहपुर कायस्थान (इलाहाबाद) में एक कायस्थ-परिवार में हुआ। एन्ट्रेंस पास कर अध्ययन की लालसा से घर छोड़ दिया। आगरा और लाहौर में अरबी, फारसी का अध्ययन किया और उच्च परीक्षाएँ उत्तीर्ण कीं। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में अरबी और फारसी के प्राध्यापक रहकर बाद में उस विभाग के अध्यक्ष हो गये। वहाँ रहकर ही आपने एफ० ए० की परीक्षा भी उत्तीर्ण की। हिन्दी में अरबी-फारसी साहित्य सम्बन्धी लेख छात्रावस्था से ही आपने सरस्वती में लिखना आरंभ किया। आपने अन्य पत्र-पत्रिकाओं में भी इन विषयों पर बराबर लिखा और पुस्तकें भी लिखीं। अरबी काव्य-दर्शन, मेरी ईरान-यात्रा, ज्ञान गुदड़ी आदि आपकी लिखी पुस्तकें हैं। गालिब के पत्रों की आपने विशेष खोज की थी और उनका संग्रह तैयार किया था। अस्वस्थ रहने से विश्वविद्यालय से छुट्टी लेकर आप रसूलाबाद (इलाहाबाद) में रहने लगे थे। वहीं १९५१ ई० में क्षयरोग से आपकी मृत्यु हुई। आपकी चार पुत्रियाँ हैं।

१४१—माखनलाल चतुर्वेदी (एक भारतीय आत्मा)

जन्म बाबई (जिला होशंगाबाद) में सन् १८८८ ई० में। मध्य प्रदेश के प्रमुख राजनीतिक कार्यकर्त्ता और नेता। प्रभा और प्रताप के संपादन में योग दिया। खंडवा से कर्मवीर साप्ताहिक का प्रकाशन किया। ३१वें हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, हरिद्वार के सभापति हुए। एक भारतीय आत्मा के नाम से कविताएँ लिखी हैं। हिम किरीटिनी (कविता-संग्रह), कृष्णार्जुन युद्ध (नाटक), बनवासी (कहानी संग्रह) और साहित्य-देवता (गद्य-काव्य) आपकी लिखी पुस्तकें हैं।

१४२—माधवराव सप्रे बी० ए०

जन्म पथरिया गाँव (दमोह) में सन् १८७१ ई० में। प्रारम्भ में रायपुर में शिक्षा प्राप्त की। बाद में लश्कर से एफ० ए० और नागपुर से बी० ए० किया। १९०० ई० में पेंडरा के राजकुमार के शिक्षक हो गये। उसी समय 'छत्तीसगढ़-मित्र' मासिक निकाला और उसे ३ वर्ष चलाते रहे। श्री चिंचोलकर के साथ घूम-घूमकर आपने काशी नागरी-प्रचारिणी सभा के लिए चंदा एकत्र किया। आपने नागपुर से हिन्दी ग्रंथमाला और लो० तिलक के मराठी केसरी का हिन्दी संस्करण प्रकाशित किया। हिन्दी केसरी पर मुकदमा चलने पर आप सम्पादन कार्य से पृथक् हुए। हिन्दी दासबोध, रामदास की जीवनी, आत्मविद्या, एकनाथचरित्र, भारतीय युद्ध, तिलक का गीता-रहस्य आदि पुस्तकें आपकी

अनुवादित या लिखी हैं। १५वें हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, देहरादून के आप सभापति थे। सन् १९३१ ई० में ६० वर्ष की आयु में आपका देहान्त हुआ।

१४३—श्यामबिहारी मिश्र, शुकदेवबिहारी मिश्र, (मिश्रबन्धु)

पं० श्यामविहारी मिश्र का जन्म इटौंजा (लखनऊ) में सन् १८७३ ई० में हुआ। १८९६ ई० में आपने उच्च श्रेणी में एम० ए० उत्तीर्ण किया और डिप्टी कलेक्टर नियुक्त हो गये। अन्त में आप डिप्टी कमिश्नर के पद पर पहुँच गये थे। बुन्देलखण्ड की कई रियासतों के आप दीवान भी रहे। १९२८ ई० में रायबहादुर बनाये गये। ओरछा के महाराजा ने आपको 'रावराजा की उपाधि दी। आपने स्वतः साहित्य का ज्ञान अर्जित किया। आप २२वें हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन ग्वालियर के सभापति थे।

पं० शुकदेवविहारी मिश्र का जन्म सन् १८७८ ई० में हुआ। आप कुशाग्रबुद्धि होने से छात्रवृत्ति पाते रहे। कैनिंग कालेज से बी० ए० में सर्वप्रथम आये। वकालत पास कर आपने कुछ दिनों वकालत भी की। बाद में मुंसिफ हो गये। छतरपुर में ६ वर्ष तक दीवान रहे। फिर सब-जज हुए। आपको भी रायबहादुर की उपाधि मिली थी। १९३० में योरप-यात्रा को गये। १९३६ ई० में नौकरी से अवकाश ग्रहण किया।

दोनों भाई संयुक्त रूप से सरस्वती में लेख लिखते थे। तीसरे भाई (गणेशबिहारी मिश्र) के साथ मिश्र-बंधु नाम से आप लोगों की रचनाएँ प्रकाशित हुई हैं। मिश्रबन्धु-विनोद, हिन्दी नवरत्न, पूर्वभारत, भारतविनय, पुष्पांजलि, वीरमणि, सूरसुधा, नेत्रोन्मीलन, शिवाजी, देवसुधा, बिहारीसुधा, लवकुश चरित्र आदि ग्रंथ आप लोगों द्वारा रचित हैं।

१४४—पाण्डेय मुकुटधर शर्मा

आप बालपुर (बिलासपुर) निवासी पं० चिन्तामणि पाण्डेय के पुत्र थे। जन्म सन् १८९५ में हुआ। समाज-संकट, कार्तिकमाहात्म्य, इटालीय युवक आदि पुस्तकें आपकी लिखी हैं। आपने कविताएँ भी लिखी हैं।

१४५—मुकुन्दीलाल बार-एट-ला

जन्म पौड़ी (अल्मोड़ा) में सन् १८९० ई० में। आक्सफोर्ड में पढ़ने के समय से ही आप सरस्वती में लेख लिखते थे। आप गढ़वाल से उत्तर प्रदेश की व्यवस्थापिका-सभा के सदस्य थे और उसके सभापति भी हुए। आप अँगरेजी में भी लेख लिखा करते थे।

१४६—मुनि जिनविजय सूरि

प्रसिद्ध पुरातत्ववेत्ता और इतिहासज्ञ। जैन साहित्य के प्रकांड विद्वान्। आप श्वेताम्बर जैन साधु हैं और हिन्दी के प्रेमी तथा विद्वान् हैं। इस समय राजस्थान तथा बंबई में इतिहास का शोधकार्य करते हैं। आपने एक शोधनिबंध तथा पुस्तकें लिखी हैं।

१४७—एन० सी० मेहता

आपका पूरा नाम श्री नानालाल चमनलाल मेहता था। आप आई० सी० एस० थे। अँगरेजों के समय में जब आप आजमगढ़ के कलेक्टर थे वहाँ महात्मा गांधी के आने पर आपने उन्हें अपने निवासस्थान पर निमंत्रित किया था जो एक बड़े ही साहस का कार्य था। स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद श्री पटेल द्वारा आप केन्द्रीय सरकार के सूचना-मंत्रालय के सचिव बनाये गये। बाद में आप हिमांचल प्रदेश के राज्यपाल नियुक्त हुए। आप कला के अनन्य प्रेमी थे। हिंदी भक्त थे और हिंदुस्तानी एकाडमी में आपने भारतीय ललित कला पर व्याख्यान-माला दी थी। एकाडमी ने हिंदी में भारतीय चित्रकला पर आपकी पुस्तक प्रकाशित की है। आप भारतीय चित्रकला के मान्य विशेषज्ञ थे। इस विषय पर अँगरेजी में भी पुस्तकें लिखीं। आपकी मृत्यु सन् १९५२ ई० में काश्मीर में हुई।

१४८—मैथिलीशरण गुप्त

आप इस समय हमारे राष्ट्रकवि हैं। खड़ी बोली को काव्य की भाषा बनाने में इनका प्रमुख हाथ है। जन्म सन् १८८६ ई० में चिरगाँव झाँसी में हुआ। आपकी खड़ी बोली की कविताएँ सरस्वती में आचार्य द्विवेदीजी के संपादन-काल में छपनी प्रारंभ हुई थीं। भारत-भारती, साकेत, जयद्रथ-वध, गुरुकुल, हिन्दू, पंचवटी, अनघ, वकसंहार, वनवैभव, सैरंध्री, त्रिपथगा, झंकार, यशोधरा, द्वापर और सिद्धराज आदि काव्य-ग्रंथ आपने लिखे हैं। साकेत पर आपको मंगलाप्रसाद पारितोषिक मिला है। मेघनादबध, विरहिणी ब्रजांगना आपके अनूदित काव्य हैं। आप राज्य-सभा के सदस्य भी हैं। भारत-सरकार ने आपको पद्म-भूषण की उपाधि से अलंकृत किया है।

१४९—मोहनलाल महतो

कवि, कहानी-लेखक, उपन्यासकार, समालोचक तथा चित्रकार। बिहार के पुराने और श्रेष्ठ साहित्यकार।

जन्म गया में सन् १९०२ ई० में हुआ। एकतारा, निर्माल्य, कल्पना, आर्यावर्त्त, आरती के दीप, शेषदान, आदमखोर, रजकण, धोखा आदि आपकी लिखी पुस्तकें हैं।

१५०—मोहनलाल नेहरू

पं० जवाहरलाल नेहरू के चचेरे भाई। आप ला-जर्नल प्रेस इलाहाबाद के संचालक थे। आपने स्त्री-दर्पण और सहेली का संपादन किया था। इलाहाबाद स्वदेशी लीग के सभापति दीर्घकाल तक रहे। इम्प्रूवमेन्ट-ट्रस्ट के अवैतनिक अध्यक्ष भी कई वर्षों तक रहे। मृत्यु

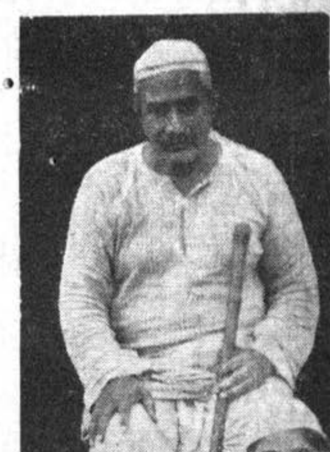

चन्द्रधर शर्मा गुलेरी


लाला लाजपत राय


राय देवीप्रसाद पूर्ण


देवीप्रसाद शुक्ल


इलाचंद्र जोशी


देवीदत्त शुक्ल


गयाप्रसाद शुक्ल सनेही


मोहनलाल महतो


रणजीत पंडित

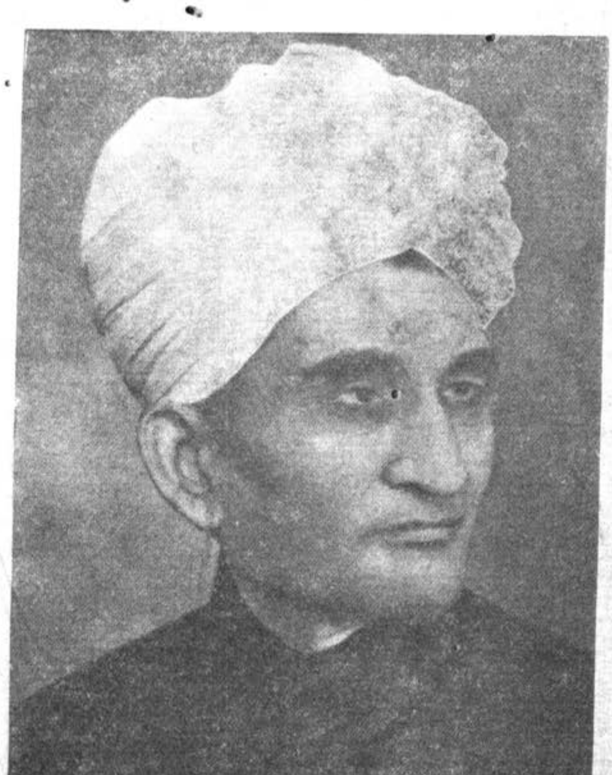




माधवराव सप्रे

पद्मसिंह शर्मा





शिवप्रसाद गुप्त

सन्तराम

८४ वर्ष की आयु में सन् १९५९ ई० में हुई। आपके पुत्र श्री आर० के० नेहरू, भारत-सरकार के उच्च अधिकारी हैं।

१५१—यमुनादत्त वैष्णव

आप गढ़वाल-निवासी हैं। इस समय उ० प्र० के आबकारी विभाग में उच्च अधिकारी हैं। कहानी और उपन्यास लेखक। वैज्ञानिक निबंध भी लिखते हैं। भेड़ और मनुष्य, अस्थि-पिंजर, अन्न का आविष्कार, चक्षुदान, शैलगाथा, शैलवधू आदि पुस्तकें आपकी लिखी हैं।

१५२—यशोदानन्दन अखौरी

आप पटना-निवासी थे। पिछली पीढ़ी के बिहार के प्रमुख हिंदी-लेखक और उन्नायक। आपने पाटलिपुत्र तथा भारतमित्र के संपादकीय विभाग में कार्य किया था।

१५३—रघुवंशलाल गुप्त

अलीगढ़ में जन्म। म्योर कालिज, इलाहाबाद में शिक्षा। आई० सी० एस० में आये। बिहार में अनेक उच्च पदों पर रहे। फिर भारत सरकार के मंत्रालय में उच्च पदों पर रहे। आप भारत सरकार के वाणिज्य सचिव थे। अब आई० सी० एस० से अवकाश ग्रहण कर चुके हैं। आजकल हैदराबाद में आफिसर्स ट्रेनिंग स्कूल के मुख्याचार्य हैं। हिंदी के कवि और लेखक। आपका उमर खैयाम का अनुवाद अत्यंत श्रेष्ठ माना गया। रवि बाबू के कुछ गीत आपकी पद्यबद्ध अनुवादित रचना है।

१५४—राजनाथ पाण्डेय एम० ए०

जन्म १९०८ ई० में वाराणसी जिले में। श्री राहुल सांकृत्यायन के साथ तिब्बत-यात्रा की। सागर विश्वविद्यालय में हिंदी के प्राध्यापक। इस समय काठमांडू विश्वविद्यालय नेपाल में हिन्दी विभाग के अध्यक्ष हैं। तिब्बत-यात्रा, वेद का राष्ट्रगान, लंकादहन, मैना, हिन्दी तद्भव-कोश, सुबह बनारस, शेष लकीरें आदि आपकी लिखी पुस्तकें हैं।

१५५—राजा पंचमसिंह, ले० कर्नल

जन्म सन् १९०४ ई० में। पहारपुर (मुरैना) के अधिपति। लश्कर, ग्वालियर के निवासी हैं। शिकार के व्यसनी। लश्कर नगरपालिका के सभापति और विधान सभा के सदस्य रह चुके हैं। नीति-समुच्चय और शिकार आपकी लिखी पुस्तकें हैं।

१५६—राजेश्वरप्रसाद नारायण सिंह

आप वीरसिंहपुर (बिहार) निवासी हैं। पटना में भारती पब्लिशर्स लि० नामक प्रकाशन-गृह बा० पारसनाथसिंह के सहयोग में खोला था। आप संसद-सदस्य हैं। भारत के पक्षी, बिहार का गौरव, भारत के वन्य जंतु, मुगल साम्राज्य की जीवन-संध्या, रूसी क्रान्ति के अग्रदूत, महाराज संसारचंद आदि आपकी लिखी पुस्तकें हैं।

१५७—राधाकृष्ण दास

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के फुफेरे भाई थे। माता गंगाबीबी भारतेन्दुजी की फूफी थीं। १० मास की आयु में पिता का देहान्त हो गया। अतएव लालन-पालन भारतेन्दुजी की छत्रछाया में हुआ। आपने हिन्दी, उर्दू, फारसी और बँगला की अच्छी शिक्षा प्राप्त की, एन्ट्रेंस तक अँगरेजी भी सीखी। आपने गद्य और पद्य में बहुत-सी पुस्तकें लिखीं। दुःखिनी बाला, निस्सहाय हिन्दू, महारानी पद्मावती, प्रताप नाटक आदि आपकी लिखी पुस्तकें हैं। आप काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा के संस्थापकों में मुख्य थे। प्रारंभ से ही उसकी वृद्धि में लगे रहे। भवन के लिए चंदा संग्रह करने में डेपुटेशन के साथ रात-दिन दौड़ते रहे। अपनी लिखी पुस्तकों का स्वत्व भी आपने सभा को दे दिया। सरस्वती के प्रथम संपादक-मंडल में आप भी थे। आपकी मृत्यु सन् १९०७ ई० में ४२ वर्ष की आयु में हुई।

१५८—राधाचरण गोस्वामी

जन्म गौड़ ब्राह्मण परिवार में सन् १८५९ ई० में वृन्दावन में हुआ। पिता वृन्दावन के श्री राधारमण मंदिर के गोस्वामी सम्प्रदाय के आचार्य। आपको संस्कृत काव्य, व्याकरण, धर्म ग्रंथों और अँगरेजी की शिक्षा दी गई। आपने साहित्य-सभा स्थापित की और कुछ दिनों तक भारतेन्दु मासिक पत्र भी निकाला था। भारतेंदु के मित्रों में थे। सन् १८८३ ई० में शिक्षा-कमीशन बैठने के समय हिन्दी के पक्ष में २१ हजार मनुष्यों के हस्ताक्षर करवाये। आपके जीवन-काल में जितने भी पत्र हिन्दी में निकलते थे, उन सबकी पूरी फाइलें आप बड़ी सावधानी से सुरक्षित रखते थे। सरोजिनी नाटक, विधवा विपत्ति, विरजा, जावित्री, यमलोक की यात्रा, स्वर्गयात्रा, मृण्मयी, कल्पलता, बाल-विधवा आदि पुस्तकें आपकी लिखी हैं। आप १५वें हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन देहरादून के सभापति थे; तथा १६वें हि० सा० स० वृन्दावन के आप स्वागताध्यक्ष थे। आपकी मृत्यु सन् १९२६ ई० में ६८ वर्ष की आयु में हुई।

१५९—राधामोहन गोकुलजी

आपने अनेक हिन्दी-पत्रों का संपादन किया था। नागपुर का प्रणवीर आपके ही संपादन में निकलता था। आपका लेख-संग्रह 'विप्लव' नाम से प्रकाशित है। आप अन्तिम दिनों में एक संन्यासी के साथ हमीरपुर जिले के कोही गाँव में एक कृषि-सुधार फार्म खोलकर अल्प व्यय में निर्वाह कर रहते थे। आपकी मृत्यु सन् १९३५ ई० में हुई।

१६०—राजा राधिकारमणप्रसादसिंह

बिहार के एक प्रमुख जमींदार और उपन्यास-लेखक। जन्म शाहाबाद जिले (बिहार) में सन् १८९१ ई० में हुआ। आप नागरी-प्रचारिणी सभा आरा के सभापति

रहे। आप बिहार प्रान्तीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के द्वितीय अधिवेशन बेतिया (चंपारन) के सभापति बनाये गये थे। राम-रहीम, गल्प-कुसुमावली, नवजीवन, प्रेमलहरी, तरंग, पुरुष और नारी, टूटा तारा आपकी लिखी पुस्तकें हैं।

१६१——डा० रामकुमार वर्मा

जन्म सन् १९०५ ई० में सागर में। प्रयाग विश्वविद्यालय के हिन्दी-विभाग के अध्यक्ष। हिंदी कवि और नाटककार——विशेषकर एकांकी-लेखक। आपको देव-पुरस्कार प्राप्त हो चुका है। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन इलाहाबाद के साहित्य-मंत्री रह चुके हैं। अंजलि, रूप-राशि, चित्ररेखा, चन्द्रकिरण, वीर हम्मीर, चित्तौर की चिता, अभिशाप 'निशीथ, साहित्य-समालोचना, कबीर का रहस्यवाद, हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, हिम-हास, पृथ्वीराज की आँखें, रेशमी टाई, शिवाजी आदि आपकी लिखी पुस्तकें हैं।

१६२——रामगोपाल विजयवर्गीय

आप जयपुर निवासी हैं और प्रसिद्ध चित्रकार तथा चित्र व्यवसायी हैं। आप कवि, कहांनीकार और लेखक भी हैं।

१६३——रामचरित उपाध्याय

जन्म सन् १८७२ ई० में सरयूपारीण ब्राह्मण परिवार में आजमगढ़ में हुआ। आपने महामहोपाध्याय पं० शिवकुमार शास्त्री से संस्कृत पढ़ी थी। आर्चार्य द्विवेदीजी द्वारा संकलित काव्य-कलाप के पाँच कवियों में से एक आप भी थे। आप पहले ब्रजभाषा में कविता करते थे। आचार्य द्विवेदीजी की प्रेरणा से खड़ी बोली में कविता करने लगे। रामचरित-चिन्तामणि आपका लिखा महाकाव्य तथा देवदूत खंड-काव्य है। आपके अन्य काव्य-संग्रह भी हैं। सन् १९३८ ई० में आपकी मृत्यु हुई।

१६४——रामचन्द्र शुक्ल

हिंदी भाषा और साहित्य के इतिहासकार, आलोचक, कवि और निबंधकार। जन्म सन् १८८४ ई० में अगोना ग्राम (गोरखपुर) में। पिता पं० चन्द्रबली शुक्ल सुपरवाइजर कानूनगो थे। उनके साथ जब आप राठ (हमीरपुर) में थे, तभी शिक्षा प्रारम्भ हुई। पिता के मिर्जापुर में सदर कानूनगो हो जाने पर आप वहीं जुबिली स्कूल में पढ़ने लगे। वहाँसे एन्ट्रेंस पास कर लेने पर इलाहाबाद कायस्थ पाठशाला में पढ़ने आये, परन्तु घरेलू कठिनाइयों से पढ़ना छूट गया। पहले एक सरकारी दफ्तर में क्लर्क का काम करना प्रारंभ किया परन्तु बाद में मिशन स्कूल मिर्जापुर में अध्यापक हो गये। वहाँसे नागरी-प्रचारिणी सभा के शब्दसागर के संपादन के लिए वाराणसी चले आये। तब से आपका शेष जीवन वाराणसी में बीता। आप हिन्दू विश्वविद्यालय में हिन्दी-विभाग के अध्यक्ष रहे। चिन्तामणि भाग १, २ आपके निबन्धों का संग्रह है। उसपर देव पुरस्कार मिला था। हिन्दी साहित्य का इतिहास, काव्य में रहस्यवाद, सूरदास, तुलसीदास आदि आपकी लिखी पुस्तकें हैं। हि० सा० के इतिहास पर हिन्दुस्तानी एकेडमी से ५०० रु० का पुरस्कार मिला था। आदर्श जीवन, कल्पना का आनन्द, बुद्धचरित, शशांक, विश्वप्रपन्च आदि आपके अनुवादित ग्रंथ हैं। आपकी मृत्यु सन् १९४१ ई० में ५८ वर्ष की आयु में हुई।

१६५——रामदहिन मिश्र काव्यतीर्थ

जन्म शाहाबाद जिले (बिहार) में सन् १८८६ ई० में। पहले अध्यापन कार्य किया। फिर उसे छोड़कर बाँकीपुर-पटना में हिन्दुस्तानी प्रेस और ग्रंथमाला-कार्यालय की स्थापना कर स्कूली तथा साहित्यिक पुस्तकों का प्रकाशन प्रारंभ किया। 'किशोर' मासिक भी संपादित तथा प्रकाशित किया। काव्यालोक, दशकुमारचरित, पार्वतीपरिणय, भारतवर्ष का इतिहास, रचना-विचार, साहित्य-मीमांसा, काव्यदर्पण, अप्रस्तुत योजना आदि आप द्वारा लिखित और अनुवादित ग्रंथ हैं।

१६६——रामदास गौड़ एम० ए०

जन्म सन् १८८९ ई० में जौनपुर में। वहाँके चर्च मिशन हाई स्कूल में आपके पिता मुंशी लालिताप्रसाद द्वितीय अध्यापक थे। जौनपुर से एन्ट्रेंस पास कर सेन्ट्रल हिन्दू कालेज वाराणसी से एफ० ए० और म्योर सेन्ट्रल कालेज, इलाहाबाद से बी० ए० किया। कायस्थ पाठशाला इलाहाबाद में विज्ञान के अध्यापक रहे। फिर म्योर कालेज में डिमांस्ट्रेटर होकर वहीसे रसायन विज्ञान में एम० ए० किया। १९१८ ई० में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में अध्यापक हुए परन्तु असहयोग आन्दोलन में उससे पृथक् होकर राष्ट्रीय विद्यालय कानपुर तथा बिहार विद्यापीठ पटना में अध्यापक हो गये। 'आज' कार्यालय में भी कुछ दिन काम करते रहे। जेल भी गये। आपने सामयिक पत्रों में कवितायें लिखी थीं। प्रयाग की विज्ञान परिषद् के संस्थापकों में से एक आप भी हैं। 'विज्ञान' के संपादक भी रहे। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के परीक्षा-मंत्री थे। भारी भ्रम (अनुवादित) तथा वैज्ञानिक अद्वैतवाद, भिनगापुराण, रसायन, विज्ञान-हस्तामलक आदि आपकी लिखी पुस्तकें हैं। अंतिम पुस्तक पर आपको मंगलाप्रसाद पारितोषिक भी मिला था। सन् १९३७ ई० में आपकी मृत्यु ६४ वर्ष की आयु में हुई।

१६७——रामनरेश त्रिपाठी

जन्म सन् १८८९ ई० में जौनपुर में। आपने हिन्दी-मन्दिर और प्रेस की स्थापना कर प्रकाशन कार्य आरम्भ किया। कविताकौमुदी के कई भाग आपने संकलित और संपादित कर प्रकाशित किये। कविता का एक मासिक भी कुछ समय तक निकालते रहे। बालकथा-कहानी पुस्तकमाला भी निकाली। 'वानर' का भी संपादन और प्रकाशन किया।

हि० सा० सम्मेलन के साहित्य-मंत्री रह चुके हैं। पथिक, मिलन, स्वप्न, मानसी, स्वप्नचित्र, घाघ और भड्डरी, हिन्दुस्तानी कोश, रामायण की टीका आदि आपकी लिखी पुस्तकें हैं। हिन्दुस्तानी एकेडमी से आप ५००) का पुरस्कार भी प्राप्त कर चुके हैं। आजकल कोइरीपुर, जौनपुर में रहते हैं।

१६८--रामनारायण मिश्र बी० ए०

जन्म सन् १८७६ ई० में दिल्ली में। पहले शिक्षा विभाग में डिप्टी इंस्पेक्टर थे। बाद में १० वर्ष तक हरिश्चन्द्र हाई स्कूल और १४ वर्ष तक सेन्ट्रल हिन्दू हाई स्कूल, कमच्छा, वाराणसी के हेडमास्टर रहे। आपने विश्व-शिक्षा-सम्मेलन जिनेवा में सन् १९२९ ई० में भाग लिया था। आप नागरीप्रचारिणी सभा के संस्थापकों में से थे।

१६९--डा० रामप्रसाद त्रिपाठी

आप प्रयाग विश्वविद्यालय के इतिहास विभाग के अध्यक्ष, सागर विश्वविद्यालय के उपकुलपति, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के परीक्षा और प्रधानमंत्री तथा उत्तर प्रदेश शासन की हिन्दी समिति के अध्यक्ष रह चुके हैं। आप रसिक-मंडल, इलाहाबाद के सभापति थे। आपने संक्षिप्त सूरसागर संपादित किया। आपके लिखे इतिहास तथा हिन्दी के अनेक पाठ्यग्रंथ हैं। आजकल आप लन्दन में शोधकार्य करने गये हैं।

१७०--डा० रामविलास शर्मा

जन्म सन् १९१२ ई० में। लखनऊ विश्वविद्यालय से अँगरेजी में एम० ए० करके डाक्टरेट प्राप्त की। आजकल बलवंत राजपूत कालेज आगरा में अँगरेजी विभाग के अध्यक्ष हैं। आलोचक और निबंधकार हैं। भारतेन्दुयुग, प्रेमचंद, निराला, रामचन्द्र शुक्ल और हिन्दी आलोचना, मानव-सभ्यता का विकास, १८५७ की राज्यक्रान्ति, भाषा और समाज, आस्था और सौंदर्य, जयशंकर प्रसाद, रूप-तरंग (कविता-संग्रह) तथा चार दिन (उपन्यास) आपकी लिखी पुस्तकें हैं।

१७१--रामानुजलाल श्रीवास्तव

जन्म सिहोरा (जबलपुर) में सन् १८९८ ई० में। आपकी कवितायें १९२१ ई० से सरस्वती में प्रकाशित हो रही हैं। उनींदी रातें (गीतसंग्रह), दस बातें, ऊँट (हास्यकाव्य), मिर्जा गालिब की गजलें (टीका) और हम इश्क के बन्दे (कहानियाँ) आदि आपकी लिखी पुस्तकें हैं। आप 'प्रेमा' और 'साथी' के संपादक रह चुके हैं। आप इण्डियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लि० के १९२८ ई० से जबलपुर के प्रतिनिधि हैं।

१७२--रामावतार चौरसिया, 'अनन्त'

जन्म सन् १९३५ ई० में अशराफ टोला, संडीला (हरदोई) में। कवि और कहानी-लेखक हैं। आपका प्रथम उपन्यास 'बीतशोक' है। चित्रकला में भी रुचि रखते हैं। आप इण्डियन प्रेस के साहित्यिक विभाग में कुछ समय तक सहकारी रह चुके हैं।

१७३--रामेश्वर शुक्ल, 'अंचल' एम० ए०

जन्म १९१५ ई० में। आप माधुरी-सम्पादक स्व० पंडित मातादीन शुक्ल के पुत्र हैं। आजकल महाकोशल महाविद्यालय में हिन्दी विभाग के अध्यक्ष हैं। तारे, मधूलिका, अपराजिता, किरणबेला, ये वे बहुतेरे, करील, लाल चूना, समाज और साहित्य, चढ़ती धूप, विराम चिह्न आदि आपकी लिखी पुस्तकें हैं।

१७४--रामेश्वरीदेवी गोयल एम० ए०

प्रयाग विश्वविद्यालय में अँगरेजी विभाग के प्राध्यापक श्री प्रकाशचन्द्र गुप्त की धर्मपत्नी थीं। आपकी मृत्यु २५ वर्ष की आयु में सन् १९३५ ई० में हुई। आपकी कविताओं और गद्यकाव्यों का संग्रह 'जीवन का सपना' नाम से प्रकाशित है।

१७५--राय कृष्णदास

जन्म सन् १८९२ ई० में वाराणसी में। आपका परिवार भारतेन्दु का निकट सम्बन्धी है। भारती भंडार नाम से प्रकाशनगृह स्थापित कर आपने उच्च कोटि के साहित्य का प्रकाशन प्रारंभ किया था। भारत कलाभवन आपके द्वारा स्थापित होकर अब हिन्दू विश्वविद्यालय का अंग हो गया है। हिंदी के श्रेष्ठ कवि, निबंधकार तथा भारतीय ललित कलाओं के सर्वमान्य विशेषज्ञ हैं। साधना, छायापथ, प्रवाल, पगला, संलाप, अनाख्या, सुधांशु, भारत की चित्रकला, भारतीय मूर्तिकला, भावुक इत्यादि आपकी लिखी पुस्तकें हैं।

१७६--राहुल सांकृत्यायन

जन्म सन् १८९५ ई० में आजमगढ़ जिले में हुआ। मिडिल पास करने के बाद अध्ययन की उत्कट लालसा से आपने गृहत्याग किया और संस्कृत, पाली, अरबी, अँगरेजी आदि का अध्ययन, अनेक स्थानों में भटकते रहकर, किया। आप कांग्रेस-आन्दोलन में जेल भी गये। तिब्बत, रूस, जापान, योरप आदि की आपने यात्राएँ कीं और उनका वर्णन प्रकाशित किया। आप ३५वें हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन-बम्बई अधिवेशन के सभापति थे। गंगा के पुरातत्त्वांक का संपादन किया। वोल्गा से गंगा, तिब्बत में बौद्धधर्म, तिब्बत, लंका, ईरान, रूस आदि की यात्रा-पुस्तकें, साम्यवाद ही क्यों, बाईसवीं सदी, कुरानसार, पुरातत्व निबन्धावली, दर्शन-दिग्दर्शन, मेरी आत्मकथा, घुमक्कड़ शास्त्र, सिंह सेनापति आदि आपकी लिखी पुस्तकें हैं। धम्मपद, मज्झिम निकाय, दीघनिकाय, विनयपिटक आदि का पाली से हिन्दी में आपने अनुवाद किया। अनेक उपन्यास भी लिखे और अनुवादित किये। आप सीलोन के विद्यालंकार महाविद्यालय में पाली विभाग के अध्यक्ष रहे। आजकल अस्वस्थ होकर दार्जिलिंग में रह रहे हैं।

१७७--रुस्तम सैटिन

आप वाराणसी-निवासी पारसी हैं। हिन्दू विश्व-विद्यालय से एम० ए०। राजनीति में सक्रिय भाग लेते हैं। साम्यवाद के समर्थक हैं। आपकी कविताएँ सरस्वती में छपती रही हैं।

१७८--रूपनारायण पाण्डेय

जन्म सन् १८८४ ई० में लखनऊ में। आप निगमागम-चन्द्रिका, नागरी-प्रचारक, इंदु, माधुरी, सुधा आदि के संपादक रहे। आपने हिन्दी में श्रीमद्भागवत और महाभारत के कुछ पर्वों का अनुवाद किया। आपने रवीन्द्र, बंकिम, शरद आदि प्रसिद्ध लेखकों की रचनाओं का बँगला से हिन्दी में अनुवाद किया। कई वर्ष इंडियन प्रेस के साहित्य विभाग में रहे। आप कविता भी करते थे। आपकी मृत्यु सन् १९५१ ई० में ७५ वर्ष की आयु में हुई।

१७९--दिल्लीरमण रेग्मी

आप काठमाडू (नेपाल) के निवासी है और नेपाल के राजगुरु परिवार के सम्बन्धी हैं। नेपाल के भूतपूर्व मंत्रिमंडल में वैदेशिक मंत्री रह चुके हैं। आप अँगरेजी तथा हिन्दी पत्रों में लेख लिखते हैं।

१८०--लक्ष्मण नारायण गर्दे

आपका परिवार रत्नागिरि से सागर और झाँसी होता हुआ वाराणसी में बस गया था। वहाँ आपका जन्म सन् १८८९ ई० में हुआ। आप संस्कृत, मराठी, बँगला, गुजराती और अँगरेजी के अच्छे ज्ञाता थे। आपका विवाह प्रसिद्ध देशभक्त और विद्वान् श्री सखाराम देउस्कर की द्वितीय पुत्री से हुआ था। देउस्कर जी बंगाल में जाकर बस गये थे। बँगला में उनकी लिखी पुस्तक देशेर कथा बड़ी प्रसिद्ध हुई थी। अनेक भारतीय भाषाओं और हिन्दी में उसके अनुवाद हुए। उनके ही प्रभाव से आप हिन्दी बंगवासी के संपादकीय विभाग में पहुँचे। बाद में आप भारतमित्र और श्रीकृष्ण-संदेश के संपादक हुए। नवजीवन का भी उन्होंने कुछ दिनों संपादन किया। कल्याण के योगांक, संतांक, वेदांतांक और साधनांक के संपादक थे। नकली प्रोफेसर, मियाँ की करतूत, महाराष्ट्र-रहस्य, सरल गीता, श्रीकृष्ण-चरित्र, तुकाराम-चरित्र, अरविन्द-योग, योग-प्रदीप, हिन्दुत्व आदि पुस्तकें आपकी लिखी हैं। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन ने आपको साहित्य-वाचस्पति की उपाधि प्रदान की थी। आपकी मृत्यु सन् १९५९ में ७० वर्ष की अवस्था में हुई।

१८१--लक्ष्मीकान्त झा

आप तिरहुत के निवासी हैं। आपका जन्म बरारी (भागलपुर) में हुआ था। अपकी शिक्षा काशी हिंदू विश्वविद्यालय में हुई। आप आई० सी० एस० होनेवाले सर्वप्रथम मैथिल हैं। बिहार में अनेक उच्च पदों पर रहकर आप भारत सरकार के केंद्रीय मंत्रालय में चले गए और वहाँ अनेक उच्च पदों पर रहे तथा विदेश भी भारतीय प्रतिनिधि हो कर गए। इस समय वाणिज्य-मंत्री हैं।

१८२--लक्ष्मीधर वाजपेयी

जन्म मैथा (कानपुर) में सन् १८८७ ई० में। आप संस्कृत, उर्दू, अँगरेजी, बँगला, मराठी और गुजराती के जानकार थे। आपने मेघदूत का समश्लोकी पद्यात्मक अनुवाद किया था। श्री सप्रेजी के सहयोग में आप हिन्दी-केसरी का संपादन करते थे। आप आर्यमित्र आगरा के भी कुछ दिनों संपादक थे। आपने दारागंज, इलाहाबाद में तरुण-भारत-ग्रंथावली नामक प्रकाशन-गृह स्थापित किया था। बाद में कानपुर में निजी मकान बनवाकर रहने लगे थे। आप असहयोग-आन्दोलन में जेल गये थे। दारागंज की साहित्य-गोष्ठी के संस्थापकों में आप मुख्य थे। इलाहाबाद के द्विवेदी मेले के आप मुख्य प्रवर्तक और सूत्रधार थे। धर्म-शिक्षा, गार्हस्थ्यशास्त्र, सदाचार और नीति, हिन्दी-गद्यनिर्माण, चाणक्य और चन्द्रगुप्त, आदि आपकी लिखी, संपादित या अनुवादित पुस्तकें हैं। आप हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के साहित्य-मंत्री भी कुछ दिनों थे। आपकी मृत्यु सन् १९५३ ई० में हुई।

१८३--लक्ष्मीनारायण मिश्र बी० ए०

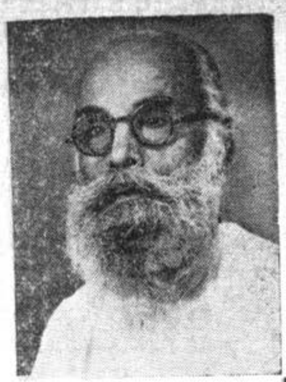
हिंदी के प्रसिद्ध नाटककार और कवि। आपका जन्म सन् १९०३ ई० में आजमगढ़ जिले में हुआ था। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के हैदराबाद अधिवेशन में साहित्य-विभाग के आप सभापति थे। अन्तर्जगत आपकी कविताओं का सर्वप्रथम संग्रह था। अशोक, संन्यासी, राक्षस का मन्दिर, मुक्ति का रहस्य, राजयोग, सिंदूर की होली, आधीरात, गरुड़ध्वज, नारद की वीणा, वत्सराज, दशाश्वमेध आदि नाटक आपके लिखे हैं। आपने कर्ण पर एक महाकाव्य भी लिखा है।

१८४--लल्लीप्रसाद पाण्डेय

जन्म सानोदा (सागर) में सन् १८८६ ई० में। आप हिन्दी-केसरी (नागपुर) कलकत्ता-समाचार में संपादन विभाग में रह चुके हैं। नवलकिशोर प्रेस में कुछ दिनों कार्य किया था। आप सन् १९१७ ई० से इण्डियन प्रेस के साहित्य-विभाग में काम कर रहे हैं। आजकल बालसखा के संयुक्त संपादक हैं। नागरी-प्रचारिणी सभा वाराणसी के प्रधान मंत्री रह चुके हैं। रामकृष्ण चरितामृत और महाभारत के प्रमुख पात्र आपकी लिखी पुस्तकें हैं। रावबहादुर, ठोक-पीटकर वैद्यराज, मणिमाला, त्रिधारा, वैकुण्ठ का विल, शीलादेवी, नवीन संन्यासी आदि अनेक पुस्तकों का आपने अनुवाद किया।

१८५--लहरी एम० ए०

पूरा नाम श्री गौरीशंकर लहरी है। आप सागर-निवासी हैं। माध्यमिक शिक्षा प्राप्त कर अध्यापक हुए



लल्लीप्रसाद पाण्डेय



लोचनप्रसाद पाँड़े



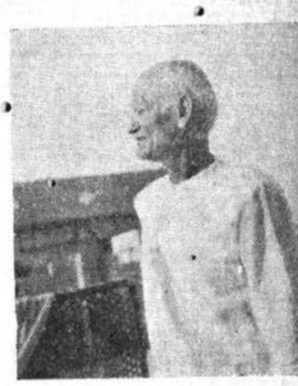
वृन्दावनलाल वर्मा



राहुल सांकृत्यायन



रूपनारायण पाँडे



लक्ष्मीधर वाजपेयी



वियोगी 'हरि'



लक्ष्मण नारायण गर्दे



विश्वम्भरनाथ 'कौशिक'



हरिभाऊ उपाध्याय



वेंकटेशनारायण तिवारी



शिवपूजन सहाय



जगदम्बाप्रसाद मिश्र 'हितैषी'



सोहनलाल द्विवेदी



डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल



डा० भगवान्दास



स्वामी सत्यदेव परिव्राजक



श्रीमती उषादेवी मित्रा

और स्वाध्याय से एम० ए० किया। छात्र-जीवन से ही आप कविता करते रहे हैं। इस समय आप इन्दौर में समाज-कल्याण विभाग के प्रकाशन-अधिकारी हैं। आपका काव्य-संग्रह 'क्षण के बीज' के नाम से प्रकाशित हुआ है।

१८६—लाला लाजपत राय

गांधी-पूर्व युग के प्रमुख भारतीय नेता। आपका परिवार जगरावाँ (लुधियाना) का निवासी था। आपका जन्म सन् १८६५ ई० में ढोडिग्राम (जि० फिरोजपुर) में (ननिहाल में) हुआ था। आपने इंटर और मुख्तारी परीक्षा के बाद वकालत पास की और हिसार में वकालत करते रहे। फिर लाहौर चले गये। आपने वकालत द्वारा अर्जित सारी आय देश-सेवा के कार्यों में लगा दी। लाहौर में तिलक राजनीति विद्यालय और लोक-सेवक-मंडल की स्थापना की। मंडल में सम्मिलित देश-सेवी कार्यकर्त्ताओं का दल अल्प वेतन लेकर देश-सेवा का कार्य करता है। बंगभंग आन्दोलन में विपिनचन्द्र पाल और लोकमान्य तिलक के साथ देश में जागृति की। ये तीनों लाल, बाल और पाल नाम से विख्यात हुए। आपको देश-निकाले का दंड देकर मांडले (ब्रह्मदेश) के जेल में बंद किया गया। आपकी गिरफ्तारी पर नीचे लिखा शेर पत्रों में छपा और लोगों में बहुत प्रचारित हुआ था:

लाजपत राय की क्या अच्छी गिरफ्तारी हुई।
नौजवानों की वतन में कुछ तो बेदारी हुई॥

वहाँसे ९ मास बाद छूट जाने पर आप का देश में बड़ा ही शानदार स्वागत हुआ। लालाजी ने पहले आर्यसमाज में विशेष भाग लिया था। डी० ए० वी० कालेजों की स्थापना से शिक्षा-प्रचार करवाया। अछूत-आन्दोलन को संचालित कर अपने पास से ४० हजार रुपया लगाकर अछूत विद्यालय खुलवाये। राष्ट्रीय आन्दोलन चलने पर आपने गांधीजी का पूर्ण साथ दिया। १९२८ ई० में लाहौर में सायमन कमीशन जाने पर आपने उसका जोरदार बहिष्कार करवाया। उसमें काले झंडे दिखलाये गये जिसका नेतृत्व आपने किया। उसमें आप पर लाठियों की जो वर्षा हुई उसीसे आप आहत होकर स्वर्गवासी हुए।

लालाजी उर्दू में लिखा करते थे। आपने देशभक्तों की जीवनियाँ लिखीं। हिन्दी में उनके लिखे लेख छापने का गौरव सरस्वती को है। आपने दुखी भारत नाम की पुस्तक मदर इंडिया के मुँहतोड़ उत्तर रूप में लिखी थी। उसका हिन्दी अनुवाद इण्डियन प्रेस ने प्रकाशित किया था।

१८७—लोचनप्रसाद पाण्डेय

जन्म सन् १८८६ ई० में हुआ। आप रायगढ़-निवासी थे और महाकोशल-इतिहास-समिति के संस्थापक थे। आपको हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन द्वारा साहित्य-वाचस्पति की उपाधि मिली थी। आप मध्य प्रदेश की प्रान्तीय इतिहास-परिषद् के रायपुर अधिवेशन के १९३९ ई० में सभापति थे। आप पुरातत्त्व के विद्वान् थे। कविता-कुसुम, रघुवंश-सार, कविता-कुसुम-माला, वीर भ्राता लक्ष्मण, मेवाड़ गाथा, माधवमंजरी, जीवनज्योति, महानदी आदि आपकी लिखी पुस्तकें हैं। महानदी खंडकाव्य पर आपको काव्य-विनोद की उपाधि प्रदान की गई थी। आप उड़िया में भी लिखते थे।

१८८—बंग महिला

वास्तविक नाम श्रीमती राजेन्द्र बाला घोष। कलकत्ते के पास चन्द्रनगर के किसी गाँव में जन्म हुआ। विवाह छपरा-निवासी एक बंगाली सज्जन बाबू पूर्णचन्द्र से हुआ। उनके साथ आप पहले वाराणसी आईं। फिर मिर्जापुर गईं, जहाँ अधिक समय रहीं। वहीं आपका परिचय स्व० रामचन्द्र शुक्ल से हुआ जिनकी प्रेरणा से आप हिन्दी में लिखने लगीं। आपने अधिकतर हिन्दी में बँगला कहानियों का अनुवाद किया है। 'दुलाईवाली', आपकी लिखी मौलिक कहानी है जो सरस्वती में सन् १९०७ ई० में प्रकाशित हुई थी। सन् १९१२ ई० में कुसुम-संग्रह नाम से आपका कहानी-संग्रह प्रकाशित हुआ था। हिन्दी में बंग महिला और बँगला में प्रवासिनी के छद्म नाम से आप लिखा करती थीं। आपका स्वर्गवास सन् १९५० ई० के लगभग हुआ।

१८९—वंशीधर शुक्ल

आप लखीमपुर खीरी निवासी और पुराने राष्ट्रीय कार्यकर्ता हैं। कई बार जेल गए। अधिकतर अवधी में कविता करते हैं। हास्य और व्यंग्य के श्रेष्ठ कवि हैं। इस समय विधान सभा के सदस्य हैं।

१९०—वागीश्वर मिश्र

आपके संबंध में जानकारी नहीं प्राप्त हो सकी।

१९१—विजय सिंह राठौर एम० ए०

आप फर्रुखाबाद जिले के निवासी थे और प्रयाग विश्वविद्यालय में अनुसंधान छात्र थे। कुछ दिनों से आपने मौनव्रत धारण कर लिया था। आपने कामायनी का विशेष अध्ययन कर उसकी पांडित्यपूर्ण समीक्षा लिखी है जो प्रकाशित हो रही है। कुछ आन्तरिक द्वन्द्वों के कारण १९६० ई० में आपने आत्मघात कर लिया।

१९२—विद्यानिवास मिश्र एम० ए०

आप संस्कृत में एम० ए० हैं। विन्ध्यप्रदेश में सूचना-अधिकारी रह चुके हैं। आजकल गोरखपुर विश्वविद्यालय में संस्कृत-विभाग में प्राध्यापक हैं। हिंदी के श्रेष्ठ निबंधकार और आलोचक हैं।

१९३—विनोदशंकर व्यास

जन्म सन् १९०३ ई० में वाराणसी में हुआ। पंडित रामशंकर व्यास के पौत्र, जिन्होंने हरिश्चन्द्रजी को भारतेन्दु की उपाधि देने का प्रस्ताव किया था। सन् १९२४ ई० से लिख रहे हैं। पुरानी पीढ़ी के प्रमुख कहानीकार हैं।

आपकी लिखी और संपादित पुस्तकें मधुकरी ४ भाग, कहानी-कला, प्रसादजी की उपन्यास-कला, उलझी स्मृतियाँ, दिन-रात, योरोपीय साहित्यकार, अशांत आदि हैं। 'अस्सी कहानियाँ' आपकी सम्पूर्ण कहानियों का संग्रह है।

१९४--श्रीमती विपुला देवी

आप सीतापुर-निवासिनी हैं और श्री के० डी० शर्मा की पत्नी हैं। सरस्वती में आपकी लिखी बहुत-सी कहानियाँ छपी हैं। 'पूर्व का पंडित' आपका कहानी-संग्रह है।

१९५--वियोगी हरि

वास्तविक नाम पं० हरिप्रसाद द्विवेदी है। जन्म छतरपुर राज्य में सन् १८९६ ई० (सं० १९५३ वि०) में कान्यकुब्ज ब्राह्मण परिवार में हुआ। छः मास की आयु में ही पितृहीन हो जाने से पालन-पोषण आपके नाना ने किया। घर पर हिन्दी और संस्कृत की शिक्षा मिली। १९१५ ई० में मेट्रिकुलेशन किया। आप अविवाहित हैं। राजर्षि टंडनजी के अनुरोध से कुछ दिनों तक आपने प्रयाग में हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की सेवा की। सम्मेलन पत्रिका का संपादन करते रहे। अनेक साहित्यिक पुस्तकें भी लिखीं। महारानी छतरपुर आपको पुत्रवत् मानती थीं। उन्हींके साथ आपने तीर्थयात्रा की। उनकी मृत्यु पर उनके आदेशानुसार आपने संन्यास व्रत ले लिया। तब से आप वियोगी हरि नाम से प्रसिद्ध हुए। आप हरिजन-सेवक-संघ के अध्यक्ष रहे। हिंदी में ब्रजभाषा के वर्तमान प्रमुख कवि और निबंधकार हैं। ब्रजमाधुरीसार, अंतर्नाद, वीरसतसई, तरंगिणी, अनुराग-वाटिका, बुद्धवाणी, संतवाणी, संक्षिप्त सूरसागर, साहित्य-विहार, यों भी तो देखिए, उद्यान, बापू, बापा और सरदार आदि पुस्तकें आपकी लिखी या संपादित हैं। विनयपत्रिका की मार्मिक टीका भी आपने की है। वीर-सतसई पर आपको मंगलाप्रसाद पारितोषिक मिला था जिसे आपने सम्मेलन को ही दान दे दिया। ३४वें हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, कराँची के आप सभापति थे।

१९६--विश्वप्रकाश दीक्षित, वटुक

जन्मकाल सन् १९१९ ई०। विश्वबंधु, रामराज्य, अनुराग और अमर भारत के संपादकीय विभाग में रह चुके हैं। आजकल शिमला हिन्दी-महाविद्यालय में प्राध्यापक हैं। क्षितिज, क्रुद्ध रक्त आपकी लिखी पुस्तकें हैं। आप मेरठ के एक गाँव के निवासी हैं।

१९७--विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक

जन्म सन् १८९१ ई० में अंबाला छावनी में आदि-गौड़वंश कौशिक गोत्र में हुआ था। पिता अंबाला में फौज के स्टोरकीपर थे। पूर्वज गंगोह (सहारनपुर) में रहते थे। पिता की मृत्यु के बाद अपने चाचा के साथ, जो वकील थे, कानपुर में रहने लगे। चाचा ने आपको ४ वर्ष की आयु में गोद ले लिया। आपने मैट्रिक तक शिक्षा प्राप्त की। फारसी, उर्दू, हिन्दी और संस्कृत का अध्ययन घर पर किया। आपकी कहानियाँ सबसे पहले सरस्वती में प्रकाश में आईं। आप हास्य-रस के लेख विजयानन्द दुबे और दिव्य-चक्षु के नाम से लिखते थे। आपने कुछ दिनों तक मनोरंजन मासिक भी चलाया था। चित्रशाला भाग १, २, गल्पमंदिर, कल्लोल, मणिमाला (कहानी-संग्रह), माँ और भिखारिणी (उपन्यास), रूस का राहु, संसार की असभ्य जातियों की स्त्रियाँ और दुबेजी की चिट्ठियाँ आपकी लिखी पुस्तकें हैं। आपकी मृत्यु १९४५ ई० में हुई।

१९८--विश्वेश्वरनाथ रेऊ, साहित्याचार्य

जन्म सन् १८९० ई० में जोधपुर में काश्मीरी-वंश में हुआ। पूर्वज श्रीनगर (काश्मीर) के निवासी थे। उनमें संस्कृत के अध्ययन की परम्परा थी। आपके पिता जोधपुर में आकर बस गये थे। पं० विश्वेश्वरनाथजी ने घर पर ही शिक्षा प्रारम्भ की। फिर पाठशाला में पढ़कर जयपुर से शास्त्री और बाद में साहित्याचार्य परीक्षाएँ उत्तीर्ण कीं। उसमें आप सर्वप्रथम आये। अँगरेजी और उर्दू भी आपने सीखी। म० म० हरप्रसाद शास्त्री और म० म० पं० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा के अधीन रहकर आपने खोज का कार्य किया। फिर सरदार म्यूजियम और सुमेर पब्लिक लाइब्रेरी के अध्यक्ष नियुक्त हुए। भारत के प्राचीन राजवंश, राष्ट्रकूटों का इतिहास, मारवाड़ का इतिहास, शैव सुधाकर टीका, राजा भोज आदि आपकी लिखी पुस्तकें हैं। २१ वें हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन झाँसी के इतिहास-परिषद् के अध्यक्ष बनाये गये थे। आपको खोजपूर्ण कार्य के लिए अनेक पदक और पुरस्कार प्राप्त हुए थे।

१९९--विष्णु प्रभाकर बी० ए०

जन्म सन् १९१२ ई० में। बी० ए० और प्रभाकर परीक्षाएँ उत्तीर्ण कीं। आप कहानी, उपन्यास, नाटक, रेडियो-रूपक लिखते हैं। आकाशवाणी में रह चुके हैं। आदि और अन्त, इन्सान, रहमान का बेटा, माँ का बेटा, जीवन, पराग, ढलती रात, नव प्रभात, जाने-अनजाने, धरती अब भी घूम रही है, आपकी लिखी पुस्तकें हैं।

२००--वृन्दावनलाल वर्मा

जन्म १८९० ई० में मऊरानीपुर में। बी० ए० एल-एल० बी० हैं। आगरा विश्व-विद्यालय से डाक्टरेट की सम्माननीय उपाधि मिली। राष्ट्रीय कार्यकर्ता। काफी दिनों सफल वकालत करते रहे और झांसी के प्रमुख वकीलों में आपकी गणना है। हिंदी के सर्वश्रेष्ठ ऐतिहासिक उपन्यासलेखक हैं। मृगनयनी, झाँसी की रानी, विराटा की पद्मिनी, गढ़कुंडार, कुंडलीचक्र, प्रेम की भेंट, प्रत्यागत, हृदय की हिलोर, कचनार, राखी की लाज, काश्मीर का काँटा, बाँस की फाँस, कहानी हरसिंगार, कलाकार का दंड, अमरबेल आदि आपकी लिखी पुस्तकें हैं।

२०१--वेंकटेशनारायण तिवारी

कानपुर के प्रसिद्ध तिवारी परिवार में जन्म। शिक्षा कानपुर और म्योर सेंट्रल कालिज, इलाहाबाद में हुई जहाँसे एम० ए०, एल-एल० बी० की उपाधियाँ लीं। आप बहुत दिनों तक गोखलेजी के भारत-सेवक-समाज के सक्रिय सदस्य रहे, और प्रवासी भारतीयों की समस्या का अध्ययन करने के लिए माननीय श्रीनिवास शास्त्री के साथ अनेक उपनिवेशों में गए। हिंदी आन्दोलन के प्रमुख नेताओं में हैं और इसके संबंध में अनेक पुस्तकें और लेख लिखे। आपने कांग्रेस आन्दोलन में भी सक्रिय भाग लिया। आप मर्यादा, अभ्युदय, भारत आदि के सम्पादक रह चुके हैं। उत्तर प्रदेश के कांग्रेस मंत्रिमंडल में आप पार्लियामेन्टरी सेक्रेटरी और संसद के सदस्य रह चुके हैं। रणमत्त संसार, अल्पता की समस्या आदि पुस्तकें लिखी हैं।

२०२--श्रीमती शकुन्तला सिरोठिया एम० ए०

जन्म सन् १९१५ ई० कोटा (राजस्थान) में हुआ। आप डा० भँवरलाल शर्मा की पुत्री हैं तथा प्रयाग के राजकीय शिशु-प्रशिक्षण महाविद्यालय में प्राध्यापिका हैं। गीतों भरी कहानियाँ, गा ले मुन्ना, आ री निंदिया, चटकीले फूल, नन्हीं चिड़ियाँ, कारे मेघा पानी दे, आपकी लिखी बालोपयोगी पुस्तकें हैं। सारंग लोक-कथा और दीप, सुधि के स्वर तथा चाँद इतना हँसा, आपकी लिखी अन्य पुस्तकें हैं।

२०३--शमशेरबहादुर सिंह

जन्म सन् १९११ ई० में देहरादून में हुआ। आपके पूर्वज मुजफ्फरनगर-निवासी थे। पिता बुलन्दशहर तथा अन्य स्थानों में चीफ-रीडर रहे। आपने अँगरेजी में एम० ए० प्रीवियस करके अध्ययन छोड़ दिया। आपकी कविताएँ पहले-पहल सरस्वती में ही प्रकाशित हुईं। आप नया-साहित्य और माया के संपादकीय विभाग में रह चुके हैं। आप आजकल स्वतंत्र लेखक-जीवन व्यतीत कर रहे हैं।

२०४--शान्तिप्रिय द्विवेदी

काशी नगरी के एक ब्राह्मण परिवार में जन्म। शिक्षा सेंट्रल हिंदू स्कूल, वाराणसी में हुई। आलोचक और निबंधकार। आप कमला, भारत और वीणा के सम्पादकीय विभागों में कार्य कर चुके हैं। हमारे साहित्य-निर्माता, संचारिणी, जीवन-यात्रा, कवि और काव्य, युग और साहित्य, सामयिकी, पथ-चिह्न, परिव्राजक की प्रजा तथा प्रतिष्ठान आदि आपकी लिखी पुस्तकें हैं।

२०५--शालग्राम शास्त्री

आप लखनऊ के प्रसिद्ध वैद्य थे। आयुर्वेदीय चिकित्सा के विशेषज्ञ और संस्कृत के प्रकांड पंडित थे। आपको साहित्य-चर्चा से विशेष अनुराग था और हिन्दी के प्रेमी थे। आचार्य द्विवेदीजी से आपका घनिष्ठ सम्बन्ध था और कदाचित् उन्हींकी प्रेरणा या आग्रह से, आप हिन्दी में लिखा करते थे। आपका स्वर्गवास सन् १९४० ई० में हुआ।

२०६--शिवपूजन सहाय

जन्म सन् १८९३ ई० में उनवास गाँव (जिला शाहाबाद) में हुआ। आपने पहले बनारस दीवानी अदालत में नकल-नवीस का कार्य प्रारंभ किया। बाद में कई स्कूलों में अध्यापक रहे। राष्ट्रीय विद्यालय, आरा में भी हिन्दी-शिक्षक रहे। मारवाड़ी-सुधार, आरा; मतवाला, कलकत्ता और माधुरी, लखनऊ के अतिरिक्त गंगा, जागरण, बालक, आदर्श, समन्वय, उपन्यास-तरंग, मौजी, गोलमाल और हिमालय पत्रों के संपादक रह चुके हैं। आपने कई अभिनन्दन-ग्रंथों का सम्पादन किया है। राजेन्द्र कालेज छपरा में आप हिन्दी विभाग के अध्यक्ष रहे। आप १९४१ ई० में बिहार प्रादेशिक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के सभापति थे। पटना की बिहार राष्ट्र-भाषा-परिषद् के मंत्री-रूप में भी आपने काम किया। देहाती दुनिया, विहार का विहार, दो घड़ी, महिला-महत्त्व आदि आपकी लिखी पुस्तकें हैं। बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् पटना ने शिवपूजन-रचनावली कई भागों में प्रकाशित कर उनमें आपके लिखे निबन्धों, संपादकीय और ग्रंथों आदि का संकलन प्रकाशित किया है। भारत सरकार ने इन्हें पद्मभूषण उपाधि से सम्मानित किया है।

२०७--शिवप्रसाद गुप्त

आप वाराणसी के प्रसिद्ध रईस, दानी और देशभक्त थे। हिंदी के अनन्य भक्त और हिंदी के अप्रतिम आग्रही थे। अपनी मोटर पर हिंदी में अंक-पटल लगाने के कारण आप पर मुकदमा चलाया गया और अर्थ दंड हुआ, किंतु आप हिंदी अंक-पटल के लिए बराबर आग्रह करते रहे। हिंदी में अच्छे दैनिक के अभाव को दूर करने के लिए 'आज' दैनिक निकाला तथा गंभीर हिंदी साहित्य के प्रकाशन के लिए ज्ञानमंडल की स्थापना की। काशी विद्यापीठ, आज कार्यालय, भारत-माता का मंदिर की स्थापना कर आपने अपने धन का अधिकांश दान कर दिया। लोगों की गुप्त रूप से भी सहायता करते थे। आचार्य द्विवेदीजी के सरस्वती का संपादन कार्य छोड़ने के बाद उनकी अस्वस्थता में आपके यहाँ से भी सहायतार्थ मासिक वृत्ति बँधी थी। आपने विश्व-भ्रमण कर अपना यात्रा-विवरण ग्रंथ रूप में प्रकाशित किया था। आपने महात्मा गांधी का जीवन-चरित हिन्दी में सर्वप्रथम लिखवाकर अपने व्यय से सन् १९१३ ई० में अभ्युदय प्रेस से छपवाया था। आपकी मृत्यु सन् १९४४ ई० में हुई।

२०८--शिवमंगलसिंह 'सुमन'

उन्नाव-निवासी। शिक्षा ग्वालियर और हिंदू विश्व-विद्यालय काशी में। हिंदी के प्रसिद्ध कवि। आप नेपाल में भारत सरकर के सांस्कृतिक सहकारी रह चुके हैं। आप आजकल माधव-कालेज, उज्जैन में प्रिंसिपल हैं।

२०९—शिवाधार पांडेय एम० ए०

कानपुर निवासी, अब प्रयाग में बस गए हैं। अँगरेजी के प्रमुख भारतीय विद्वान्। आप प्रयाग विश्वविद्यालय में अँगरेजी विभाग के अध्यक्ष रह चुके हैं। हिंदी के विद्वान् और हिंदी के समर्थक तथा लेखक। हिन्दी में बहुत दिनों से लिखते आ रहे हैं। आपके लेख सरस्वती में प्रकाशित होते रहे हैं। कृष्णार्पण आपका कविता-संग्रह है।

२१०—श्रीमती शीलादेवी शर्मा

आप श्रीयुत के० के० शर्मा आई० सी० एस० की धर्मपत्नी और पं० रामगोपाल मिश्र, भूतपूर्व डिप्टी कलक्टर की पुत्री हैं। शिक्षा लखनऊ में। आपने संयुक्तराज्य अमेरिका की यात्रा कर उसका चित्ताकर्षक वर्णन सरस्वती में लेखमाला के रूप में प्रकाशित कराया था। निबंधकार, कहानी-लेखिका। सरस्वती की सहायक सम्पादिका हैं।

२११—श्यामसुन्दरदास बी० ए०

जन्म वाराणसी में खत्री परिवार में सन् १८७५ ई० में हुआ। आपने सेन्ट्रल हिन्दू स्कूल, वाराणसी में अध्यापन कार्य किया। कई वर्ष तक कालीचरण हाई स्कूल लखनऊ के हेडमास्टर रहे। नागरी-प्रचारिणी सभा के संस्थापकों में थे। आप बहुत दिनों तक उसके मुख्य कार्य-संचालक और सभापति रहे। सभा से प्रकाशित मनोरंजन पुस्तकमाला, वैज्ञानिक-कोष और हिन्दी शब्दसागर के मुख्य संपादक थे। हिन्दू विश्वविद्यालय में हिन्दी विभाग खुलने पर आप उसके प्रथम अध्यक्ष बनाये गये। साहित्यालोचन, हिन्दी-भाषा और साहित्य, रूपक-रहस्य तथा गोस्वामी तुलसीदास आपकी लिखी पुस्तकें हैं। आप छठें हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन प्रयाग के सभापति थे। आप सरस्वती के प्रथम संपादक-मंडल में थे तथा १९०१ और १९०२ में अकेले संपादक रहे। आचार्य द्विवेदी ने १९०३ में सरस्वती के संपादन का कार्य पहले-पहल हाथ में लेने के बाद में बाबू श्यामसुन्दर-दास का परिचय चित्र के साथ निम्न पद्य लिखकर दिया था :—

मातृभाषा के प्रचारक, विमल बी० ए० पास।
सौम्य शीलनिधान बाबू श्यामसुन्दरदास ॥

आपकी मृत्यु सन् १९४५ ई० में हुई। उस समय बाबू मैथिलीशरण गुप्त ने निम्न पद्य की रचना की थी :—

मातृभाषा के हुए जो विगत वर्ष पचास—
नाम उनका एक ही है श्यामसुन्दरदास।

२१२—पं० श्रीधर पाठक

खड़ी बोली के प्रमुख आदि-कवि। जन्म सन् १८६० ई० में जोंधरी ग्राम (आगरा) में सारस्वत ब्राह्मण-वंश में हुआ। पहले घर पर संस्कृत और फारसी की शिक्षा प्राप्त की। तहसीली स्कूल की प्रवेशिका परीक्षा में प्रान्त भर में सर्वप्रथम आये। अँगरेजी मिडिल परीक्षा में प्रथम स्थान मिला। एन्ट्रेंस परीक्षा भी प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुए। आप पहले कलकत्ता के सेंसस-कमिश्नर के दफ्तर में नौकर हुए जिससे शिमला देख सके। लाट साहब के दफ्तर में इलाहाबाद में क्लर्क हुए। इसके बाद सिंचाई आयोग के सुपरिंटेंडेंट पद पर नियुक्त हुए। फिर भारत सरकार के दफ्तर में सुपरिंटेंडेंट हुए। आपने काश्मीर-यात्रा कर काश्मीर-सुषमा नामक काव्य-ग्रंथ की रचना की। आपने गोल्डस्मिथ की तीन पुस्तकों का पद्यात्मक अनुवाद एकान्तवासी योगी, श्रान्त पथिक और ऊजड़ ग्राम नाम से किया। आराध्य शोकांजलि (संस्कृत की गोखले-प्रशस्ति), जगत्-सचाई-सार, मनोविनोद, श्री गोखले-गुणाष्टक, देहरादून, तिलिस्माती मुँदरी, गोपिक-गीत और भारत-गीत आपकी लिखी अन्य पुस्तकें हैं। आप अवकाश प्राप्त करने के बाद लूकरगंज में पद्मकोट नामक भवन बनवाकर रहते थे। आप पंचम हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन लखनऊ के सभापति थे। आपकी मृत्यु सन् १९२८ ई० में ६९ वर्ष की आयु में हुई।

२१३—ठा० श्रीनाथ सिंह

आप इलाहाबाद जिले के निवासी हैं। गृहलक्ष्मी, शिशु, देशबन्धु, बालसखा, अभ्युदय, देशदूत, हल और सरस्वती के संपादन में योग दे चुके हैं। आपने दीदी और बालबोध मासिक अपने संपादकत्व में निकाला था। प्रजा-मंडल, जागरण, उलझन, एकाकिनी, आविष्कारों की कथा आदि आपकी लिखी पुस्तकें हैं। लाला लाजपतराय के दुखी भारत का आपने अनुवाद किया था। इस समय संपूर्ण गांधी वाङ्मय के सम्पादन विभाग में, दिल्ली में, काम कर रहे हैं।

२१४—माननीय श्री श्रीप्रकाश, बार-एट्-ला

आप वाराणसी के प्रसिद्ध विद्वान्, दार्शनिक और रईस स्व० डा० भगवानदास के पुत्र हैं। आपने बैरिस्टरी पास कर देश-सेवा में जीवन-यापन करना प्रारंभ किया। काशी विद्यापीठ में अध्यापन किया। आप पाकिस्तान में भारत के उच्च आयुक्त पद पर कुछ दिनों तक रहे। केन्द्रीय सरकार के मंत्री तथा कई राज्यों के राज्यपाल रह चुके हैं। इस समय महाराष्ट्र के राज्यपाल हैं।

२१५—श्रीमन्नारायण अग्रवाल

जन्म १९१२ ई० में मैनपुरी में हुआ। सब की बोली, और राष्ट्र-भाषा-प्रचार के संपादक रहे। कई वर्ष तक राष्ट्र-भाषा-प्रचार-समिति वर्धा के प्रधान मंत्री रहे। आप गोविन्दराम सेकसरिया कालेज आफ कामर्स, वर्धा के आचार्य भी रहे। इस समय भारत-सरकार के आयोजना आयोग के सदस्य हैं। सेगाँव का सन्त, रोटी का राग, और मानव आपकी लिखी पुस्तकें हैं।



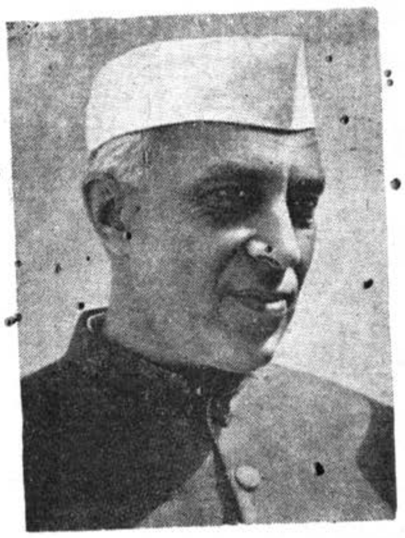
गोविन्दवल्लभ पन्त



म० म० गौरीशंकर हीराचंद ओझा



आचार्य नरेन्द्रदेव



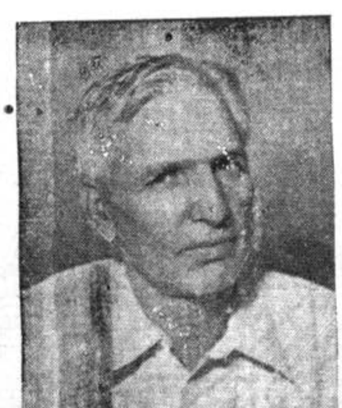
जवाहरलाल नेहरू



जयशंकर प्रसाद



कन्हैयालाल पोद्दार



धर्मवीर एम० ए०



ज्योतिप्रसाद 'निर्मल'



नर्मदाप्रसाद खरे



प्रो० अमरनाथ झा



उदयशंकर भट्ट



उमेशचन्द्र मिश्र



गोपालशरण सिंह



कामताप्रसाद गुरु



अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'



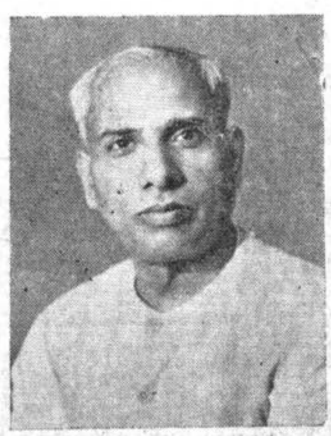
गांगेय नरोत्तम शास्त्री



गंगाप्रसाद पाँड़े



कृष्णदेवप्रसाद गौड़ 'बेढब' बनारसी



गिरिजादत्त शुक्ल 'गिरीश'

२१६—श्रीराम शर्मा, राम

आप दिल्ली-निवासी हैं और श्रमजीवी साहित्यिक हैं। कहानी और उपन्यास लिखते हैं। आँधी, उत्सर्ग, पुजारी, टेढ़ी मेढ़ी दीवारें, चित्रकार, बालू की दीवारें, नींव का पत्थर आदि आपकी लिखी पुस्तकें हैं।

२१७—सत्यनारायण कविरत्न

आप आगरा के निकट धाँधूपुर गाँव के निवासी थे। व्रजभाषा के अत्यन्त सफल कवि थे। आपका विवाह आर्य-समाज परिवार में हुआ था किन्तु आप कट्टर सनातनी थे, अतएव पारिवारिक जीवन दुखदायी रहा। आपकी स्मृति में पं० बनारसीदास चतुर्वेदी ने हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन-भवन (प्रयाग) में सत्यनारायण कुटीर का निर्माण करवाया है। कई संस्कृत नाटकों का अनुवाद किया जिनमें उत्तर रामचरित का अनुवाद बहुत प्रसिद्ध है।

२१८—डा० सत्यनारायण पाण्डेय

आप कानपुर में सनातन धर्म कालेज में संस्कृत-विभाग के अध्यक्ष हैं। कश्मीर-विजय आपका लिखा खंडकाव्य है।

२१९—सत्यप्रकाश संगर

पंजाब-निवासी हैं। भोपाल में अँगरेजी के प्राध्यापक। आप आजकल मास्को में रूसी भाषा से हिन्दी में पुस्तकें अनुवादित करने का कार्य कर रहे हैं। आप कहानी-लेखक हैं। अफ्रीका का आदमी, अवगुंठन, कली मुसकाई, कितना ऊँचा कितना नीचा, घर की आग, नया मार्ग, लम्बे दिन, जलती रातें आदि पुस्तकें आप-की लिखी हैं।

२२०—सत्यशरण रतूड़ी

आप गढ़वाल के प्रसिद्ध साहित्यिक और कवि थे। गढ़वाल में हिंदी-प्रचार में बड़ा योगदान किया था। खड़ी बोली में सुंदर कविता करते थे।

२२१—सद्गुरुशरण अवस्थी

जन्म १९०१ ई० में। आपका जीवन अध्यापन-कार्य में बीता। सफल अध्यापन-कार्य के लिए राष्ट्रपति द्वारा सम्मानित किये गये। बी० एन० एस० डी० कालेज कानपुर के प्रधानाचार्य पद से अवसर ग्रहण किया। हिन्दी के कार्यकर्त्ता तथा निबन्धकार। नाटक और कथाएँ भी लिखीं। भ्रमित पथिक, महात्मा बुद्ध, फूटा शीशा, हिन्दी गद्य-गाथा, विचार-विमर्श, नाटक और नायक, तुलसी के चार दल, मुद्रिका, महाभिनिष्क्रमण, हृदय की ध्वनि, त्रिमूर्ति, दो एकांकी नाटक, मझली महा-रानी, बुद्धितरंग, पड़ोस की कहानियाँ और विचार-तरंग आपकी मुख्य पुस्तकें हैं।

२२२—गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही'

जन्म सन् १८८३ ई० में जिला उन्नाव में। अधि-कांश जीवन कानपुर में अध्यापन-कार्य में। ब्रज-भाषा, खड़ी बोली और उर्दू के कवि। हिन्दी-कविता के माध्यम से हिन्दी-प्रचारक। अपनी प्रभावशाली कवित्व-शक्ति के कारण कानपुर में कितने ही प्रतिभाशाली नवयुवक उनके शिष्य हो गये, और इस प्रकार कानपुर घना-क्षरी-सवैया शैली की कविता का केन्द्र हो गया जिसके आचार्य सनेहीजी हैं। अपने सम्पादकत्व में सुकवि निकाला, त्रिशूल और सनेही उपनामों से कविता करते हैं। प्रेमपचीसी, कुसुमांजलि, कृषक-क्रन्दन, मानस-तरंग, करुण भारती, संजीवनी आदि आपके काव्य-संग्रह हैं।

२२३—सन्त निहालसिंह—भारत के ज्येष्ठतम प्रमुख पत्रकार

जन्म रावलपिंडी, में सिक्ख परिवार में हुआ। पत्र-कार के रूप में संसार में अनेक देशों की कई बार यात्रा की। अपनी योग्यता और प्रभावपूर्ण लेखन-शैली से विदेशी पत्रकारों के मध्य प्रमुख स्थान प्राप्त किया। आपने एक अमरीकी महिला से विवाह किया और उन्हें भारतीय संस्कृति का समर्थक बना लिया। देहरादून में सूर्यस्थानम् नाम के अपने बँगले में आप निवास कर रहे हैं। हिन्दी में आपकी रुचि रही है और वे उसके समर्थक हैं।

२२४—सन्तराम बी० ए०

जन्म पुरानी बसी, होशियारपुर में सन् १८८७ ई० में। आपके पिता लद्दाख से व्यापार करते थे। आपकी शिक्षा प्रारंभ में उर्दू में हुई। आपने लाहौर से बी० ए० परीक्षा उत्तीर्ण की जिसमें फारसी में सर्वप्रथम आये। सद्धर्म-प्रचारक के उर्दू से हिन्दी में निकलने लगने पर आपने अनेक अन्य पाठकों की भाँति हिन्दी पहले-पहल सीखी। आपने कुछ दिनों अध्यापन किया। फिर सतलज फारेस्ट कम्पनी के गोदाम में नौकर रहे। आपने कोश की सहायता से हिन्दी शब्द रट रटकर हिन्दी का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया और हिन्दी पत्रों में लेख लिखने लग गये। आचार्य द्विवेदीजी ने भी आपके लेखों को संशोधित कर छापना प्रारंभ किया। तबसे आप बराबर हिन्दी में लिखते ही रहे हैं। आपने जात-पाँत तोड़क मंडल की स्थापना की। एकाग्रता और दिव्य-शक्ति, विवाहित प्रेम, पंजाबी-गीत, सद्गुणी पुत्री, वीरगाथा, भारत में बाइबिल, अलबेरुनी का भारत, इत्सिंग की भारत-यात्रा, लोक-व्यवहार आदि आपकी लिखी तथा अनुवादित मुख्य पुस्तकें हैं।

२२५—डा० सम्पूर्णानन्द

आप बी० एस्-सी०, एल० टी० हैं। आगरा विश्व-विद्यालय ने डी० लिट० की सम्माननीय उपाधि दी। आपके पूर्वज महाराजा काशी के दीवान थे। आप हरिश्चन्द्र हाई स्कूल, वाराणसी तथा राजकुमार कालेज, इन्दौर में अध्यापक रह चुके हैं। डूँगर कालेज बीकानेर के आप आचार्य थे। प्रेम महाविद्यालय में भी कुछ दिनों अध्यापक थे। काशी विद्यापीठ स्थापित होने पर उसमें

स्थायी रूप से अध्यापन कार्य करने लगे। और अब उसके आर्चाय हैं। अँगरेजी दैनिक 'टुडे' का आपने संपादन किया था। मर्यादा के भी संपादक रह चुके हैं। २९वें हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन पूनाके आप सभापति थे। उत्तर प्रदेश शासन में आप पहले शिक्षा-मंत्री थे, फिर मुख्यमंत्री हुए। समाजवाद, अन्ताराष्ट्रीय विधान, सम्राट् हर्षवर्द्धन, चेतसिंह और काशी का विद्रोह, भौतिक विज्ञान, ज्योतिर्विनोद, चिद्विलास, आर्यों का आदिस्थान, दर्शन और जीवन आदि आपकी लिखी मुख्य पुस्तकें हैं। समाजवाद पर आपको मंगलाप्रसाद पारितोषिक प्राप्त हो चुका है।

२२६—सरदार नर्मदाप्रसाद सिंह

आपका जन्म सन् १८९० ई० में बैकुंठपुर (रीवां) में हुआ था। आपकी शिक्षा इन्दौर और अजमेर में हुई। १९१३ ई० में आपने सार्वजनिक जीवन में प्रवेश किया। १९२४ ई० में आप रीवा राज्य के विरुद्ध आन्दोलन करने के कारण रीवां से निर्वासित किये गये थे। वहाँ पर आप रियासत में कलेक्टर-पद पर रह चुके थे और १९२० ई० में उसे छोड़ चुके थे। कुछ दिनों हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के प्रधानमंत्री भी थे। दिसंबर १९६१ में मृत्यु हुई।

२२७—सियारामशरण गुप्त

बाबू मैथिलीशरण गुप्त के कनिष्ठ भ्राता। चिरगाँव (झाँसी) के एक परम वैष्णव परिवार में जन्म। कवि, निबन्धकार और उपन्यास-लेखक, राष्ट्रीय विचार-धारा से प्रभावित। गोद, नारी, अन्तिम आकांक्षा, मानुषी, पुण्य पर्व, मौर्य-विजय, दूर्वादल, आत्मोत्सर्ग, अनाथ, विषाद, आर्द्रा, पाथेय, मृण्मयी, बापू और झूठ-सच आपकी लिखी मुख्य पुस्तकें हैं।

२२८—(लाला) सीताराम बी० ए०

आपका जन्म सन् १८५८ ई० में अयोध्या में कायस्थ-परिवार में हुआ था। आपने १८८९ ई० में बी० ए० की परीक्षा सर्वोच्च अंक प्राप्त कर उत्तीर्ण की। वकालत भी पास की। आपने पहले फारसी उर्दू की ही शिक्षा पाई थी। एफ० ए० में आपने संस्कृत पढ़ी और बी० ए० में विज्ञान। आप पहले अवध-अखबार के संपादक हुए। फिर ५ वर्ष तक वाराणसी में अध्यापक रहे। वहाँ आपने संस्कृत का अच्छा ज्ञान प्राप्त किया। हेड-मास्टर और असिस्टेन्ट इन्सपेक्टर आफ स्कूल्स रहने के बाद आप डिप्टी कलेक्टर बना दिये गये। इसी पद से १९०९ ई० में आपने अवसर ग्रहण किया। कलकत्ता विश्व-विद्यालय में जब सर आशुतोष मुकर्जी ने बी० ए० और एम० ए० में हिन्दी को स्थान दिया तब उनका पाठ्य-क्रम तथा पुस्तकें तैयार करने का कार्य इन्हें सौंपा। इतिहास के विद्वान्। मेघदूत, कुमारसंभव, रघुवंश, नागानन्द, ऋतुसंहार, शृंगार-तिलक आदि संस्कृत ग्रंथों का आपने अनुवाद किया। संस्कृत नाटकों का छायानुवाद भी किया। आपने अयोध्या का इतिहास भी लिखा था। उर्दू में अज्म और हिन्दी में भूप नाम से कविता करते थे। आपको रायबहादुर की उपाधि मिली थी। मृत्यु सन् १९३७ ई० में हुई।

२२९—सुदर्शन

आपका जन्म सन् १८९६ ई० में स्यालकोट में हुआ। आपका असली नाम बदरीनाथ है। आपने बी० ए० तक शिक्षा प्राप्त की। पहले आप उर्दू में कहानियाँ लिखते थे। बाद में हिन्दी में लिखने लगे। आपकी सबसे पहली हिंदी कहानी सरस्वती में छपी थी। आपने भागवन्ती उपन्यास और आनरेरी मजिस्ट्रेट प्रहसन भी लिखा है। तीर्थयात्रा, सुदर्शन सुधा, परिवर्तन आदि आपके कहानी-संग्रह हैं। चलचित्रों में भी आपने काम किया। हिन्दी के पुराने प्रमुख कहानीकार हैं। अब बम्बई में रहते हैं।

२३०—म० म० सुधाकर द्विवेदी

जन्म सन् १८६० ई० में खजुरी ग्राम (वाराणसी) में। अपने समय के काशी के संस्कृत के चोटी के पंडितों में गिने जाते थे। ज्योतिष में पं० बापूदेव शास्त्री के बाद वाराणसी संस्कृत कालेज में आप गणित और ज्योतिष के अध्यापक हुए। उन्हें हिन्दी से विशेष प्रेम था। भारतेन्दु के मित्र थे। हिन्दी शब्द-सागर के संपादन में सहायता की थी। चलन कलन, चल राशि कलन, तुलसी सुधाकर, रामकहानी, समीकरण मीमांसा आदि आपकी लिखी पुस्तकें हैं। आप कुछ दिनों तक नागरी-प्रचारिणी-सभा के सभापति भी रहे। आपको महामहोपाध्याय की उपाधि मिली थी। सन् १९१० ई० में देहान्त हुआ।

२३१—सुभद्राकुमारी चौहान

जन्म सन् १९०४ ई० में इलाहाबाद जिले में। आपका विवाह खंडवा के ठा० लक्ष्मणसिंह से हुआ था। आपके आग्रह से उन्होंने वकालत छोड़कर असहयोग आन्दोलन में भाग लिया। कर्मवीर उन दिनों जबलपुर से निकलता था, जिसके सम्पादक पं० माखनलाल चतुर्वेदी थे। उसमें सहायता करने के लिए यह परिवार जबलपुर चला आया। तब से श्री सुभद्राजी जबलपुर में ही रहने लगीं। 'झाँसी की रानी' कविता ने सुभद्राजी की प्रतिभा की ओर हिन्दी-जगत् का ध्यान आकर्षित किया। आपने कई बार जेल-यात्रा की। आपके काव्य-संग्रह 'मुकुल' पर सेकसरिया पुरस्कार मिला। मुकुल, बिखरे मोती, त्रिधारा, सभा का खेल, उन्मादिनी आदि आपकी लिखी पुस्तकें हैं।

२३२—सुमित्राकुमारी सिनहा

आपका जन्म सन् १९१५ ई० में हुआ था। हिन्दी में वैज्ञानिक विषयों के प्रसिद्ध आदि-लेखकों में से एक श्री महेशचरण सिनहा की आप सुपुत्री और चौधरी राजेन्द्र शंकर की धर्मपत्नी हैं। आपका निवासस्थान उन्नाव है।

आकाशवाणी में काम करती हैं। अचल सुहाग, वर्ष-गाँठ, आशा पर्व, विहाग और पंथिनी आदि आपकी लिखी पुस्तकें हैं। विहाग पर आपको सेकसरिया पुरस्कार प्राप्त हुआ था।

२३३—सुमित्रानंदन पंत

छायावाद के आदि-प्रवर्तकों में प्रमुख। हिंदी के वर्तमान सर्वश्रेष्ठ कवि। जन्म सन् १९०० ई० में कौसानी जिला अल्मोड़ा में हुआ। आपकी शिक्षा नवीं कक्षा तक अल्मोड़ा और दसवीं जयनारायण हाई स्कूल वाराणसी में हुई। आप इन्टर कक्षा में म्योर सेन्ट्रल कालेज, इलाहाबाद में छात्र थे। किन्तु गांधीजी के असहयोग आन्दोलन में विश्वविद्यालय छोड़ दिया। आप बंगला और संस्कृत से भी विज्ञ हैं। आपने रूपाभ का संपादन कई वर्षों तक किया। उच्छ्वास, पल्लव, पल्लविनी, वीणा, ग्रंथि, गुञ्जन, युगान्त, युगवाणी, ग्राम्या, स्वर्णकिरण, स्वर्णधूलि, मधुज्वाला आदि काव्य-संग्रह, ज्योत्स्ना (नाटक) तथा पाँच कहानियाँ (कहानी-संग्रह) आपकी रचनाएँ हैं। आकाशवाणी में हिन्दी के परामर्शदाता। राष्ट्रपति द्वारा पद्मभूषण उपाधि से सम्मानित।

२३४—सुरेशचन्द्र

अँगरेजी साहित्य के प्राध्यापक। इस समय सीतापुर डिग्री कालेज में अँगरेजी-विभाग के अध्यक्ष हैं। हिन्दी कवि और निबन्धकार।

२३५—सूर्यनारायण व्यास

आपका जन्म सन् १९०१ ई० में उज्जैन में हुआ था। आपके परिवार में संस्कृत और ज्योतिष के अध्ययन की परंपरा है। आप संस्कृत, गुजराती, मराठी, फारसी, प्राकृत के विज्ञ और ज्योतिष के गंभीर विद्वान् हैं। आपने विक्रम नामक प्रसिद्ध मासिक-पत्र अपने संपादकत्व में निकाला। कालिदास जयंती मनाने का सफल आन्दोलन किया। उज्जैन में विक्रम विश्वविद्यालय की स्थापना करवाई। आप मध्यभारत हिन्दी-साहित्य-समिति के अध्यक्ष रहे हैं। कालिदास की अलका, वाल्मीकि की लंका, यूरप-यात्रा आदि आपकी पुस्तकें हैं। राष्ट्रपति ने पद्म-भूषण की उपाधि से सम्मानित किया है।

२३६—सेठ गोविन्ददास

जबलपुर-निवासी और राजा गोकुलदास के पौत्र। महाकोशल के प्रमुख कांग्रेस कार्यकर्त्ता तथा नेता। हिन्दी-आन्दोलन के प्रमुख नेताओं में आपकी गणना है। संसद के ज्येष्ठ सदस्यों में हैं। जबलपुर विश्वविद्यालय से आपको डाक्टर की सम्मानित उपाधि मिली है तथा राष्ट्रपति ने पद्मभूषण की उपाधि से सम्मानित किया। हिन्दी-लेखक, पत्रकार और नाटककार। एक सौ से अधिक नाटक लिखे। अपना वृहद् आत्म-चरित्र लिखा जो समसामयिक राजनीति का इतिहास है। आप ३६वें हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन मेरठ के सभापति थे। आपने 'शारदा' मासिक और 'लोकमत' दैनिक निकाला था। राष्ट्रीय हिन्दी-मन्दिर जबलपुर की स्थापना कर आपने उच्चकोटि का साहित्य प्रकाशित करवाने का उद्योग किया था। आपके कुछ ग्रंथों के नाम हर्ष, कर्त्तव्य, प्रकाश, स्पर्धा, सप्तराशि, शशि-गुप्त, आत्मनिरीक्षण, महाप्रभु श्री वल्लभाचार्य, पृथ्वी पार-क्रमा आदि हैं।

२३७—सैयद अमीर अली

जन्म सन् १८७३ ई० में। आप देवरी (सागर) के निवासी थे। पिता की मृत्यु हो जाने पर चचा ने २ वर्ष की आयु से आपका पालन-पोषण किया, शिक्षा-दीक्षा दी। मिडिल और प्रशिक्षण की परीक्षाएँ उत्तीर्ण कर चित्रकला में निपुण होने के कारण आपने मध्यप्रदेश से पहले-पहल बम्बई आर्ट स्कूल की बौनिंग अध्यापक छात्रवृत्ति प्राप्त की। नेत्र-कष्ट के कारण आपको बम्बई से चित्रकला सीखकर शीघ्र वापस आना पड़ा। आप गाँव में ही अध्यापक हो गये। आपने १८९५ ई० में मीरमंडल कवि-समाज की स्थापना की थी। १९०७ ई० में देवरी में पहले-पहल प्लेग होने पर आपने जन-सेवा की। कलकत्ते के हासानन्द वर्मा की अपील पर आपने गोरक्षा के लिए चन्दा एकत्र किया। आपको साहित्यिक उपाधियाँ भी मिली थीं। बूढ़े का ब्याह, बच्चे का ब्याह, सदाचारी बालक, काव्य-संग्रह, नीति-दर्पण (अनुवाद) आदि आपकी पुस्तकें हैं।

२३८—(कुँवर) सोमेश्वरसिंह बी० ए० एल्-एल० बी०

आप नई गढ़ी (रीवाँ) के स्व० ठा० गोपालशरणसिंह के ज्येष्ठ पुत्र हैं। आप विधानसभा के सदस्य हैं। शाहजादा खुसरो (खंड-काव्य) और सरोज काव्य-संग्रह आपकी लिखी पुस्तकें हैं।

२३९—सोहनलाल द्विवेदी एम० ए० एल्-एल० बी०

जन्म और निवासस्थान बिन्दकी, जिला फतेहपुर। आपकी उच्च शिक्षा हिन्दू विश्वविद्यालय में हुई। राष्ट्रीय विचारधारा के प्रमुख कवियों में गिने जाते हैं। राष्ट्रीय कविताओं के अतिरिक्त कई छोटे-बड़े खंड-काव्य भी लिखे। बालकोपयोगी कविता लिखने में विशेष रूप से प्रसिद्ध। दैनिक 'अधिकार' के कई वर्षों तक संपादक रहे। भैरवी, वासवदत्ता, कुणाल, विषपान, युगाधार, वासन्ती, चित्रा, सेवा-ग्राम, पूजागीत, प्रभाती, बाँसुरी, झरना, बिगुल, बच्चों के बापू आदि आपकी लिखी पुस्तकें हैं। सम्प्रति बालसखा के संयुक्त संपादक हैं।

२४०—स्वामी सत्यदेव

जन्म सन् १८७९ ई० में पंजाब में एक खत्री परिवार में हुआ। उच्चतर शिक्षा प्राप्त करने अमेरिका गये।

अन्त में आप संन्यासी हो गये। आपकी आँखें जाती रहीं। भारत लौटकर प्रचार-कार्य करते रहे। कई बार योरप यात्रा भी की। आपकी अमरीका-यात्रा का वृत्तान्त सरस्वती में लेखमाला के रूप में छपता था। लेखन-कला, अमरीका-दिग्दर्शन, जातीय शिक्षा, मनुष्य के अधिकार, ज्ञान के उद्यान में, अमरीका-प्रवास की मेरी अद्भुत कहानी आदि आपकी लिखी पुस्तकें हैं। दिसंबर १९६१ में मृत्यु हुई।

२४१—हजारीप्रसाद द्विवेदी

जन्म सन् १९०७ ई०। हिन्दू विश्वविद्यालय के प्राच्य-विद्या महाविद्यालय से ज्योतिषाचार्य की परीक्षा उत्तीर्ण की। कई वर्षों तक शान्ति-निकेतन में हिन्दी के अध्यापक थे। लखनऊ विश्वविद्यालय ने उन्हें हिन्दी में सम्माननीय (आनरेरी) डाक्टर आफ लिट्रेचर की उपाधि दी। कई वर्षों तक हिन्दू विश्वविद्यालय में हिन्दी-विभाग के अध्यक्ष। आजकल पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़ में हिन्दी-विभाग के अध्यक्ष हैं। हिन्दी साहित्य की भूमिका, हिन्दी साहित्य का आदिकाल, सूर-साहित्य, कबीर, प्राचीन भारत तथा कलाविलास, विचार और वितर्क, अशोक के फूल, हमारी साहित्यिक समस्याएँ, वाणभट्ट की आत्मकथा, नाथ सम्प्रदाय, रवीन्द्रनाथ के राष्ट्रीय गीत, कबीरपंथी साहित्य, मेघदूत-एक पुरानी कहानी आदि आपकी लिखी पुस्तकें हैं।

२४२—(लाला) हरदयाल एम० ए०

दिल्ली के माथुर कायस्थ परिवार में जन्म। पंजाब के प्रसिद्ध गरम विचारों के नेता थे। विश्वविद्यालय में अपने समय के सर्वोत्तम छात्र थे। उच्चतर शिक्षा प्राप्त करने इँगलैण्ड गये और वहाँसे योरप, जहाँ वे क्रान्तिकारी दल में सम्मिलित हो गये। इस कारण भारत न लौट सके। शेष जीवन योरप में बीता। वे अधिकतर स्वीडन में रहे। भारतीय इतिहास और दर्शन के अच्छे पंडित थे। हिन्दी के बड़े प्रेमी थे।

२४३—हरिकृष्ण प्रेमी

जन्म गुना (मालवा)। नाटककार और कवि। कई वर्ष लाहौर में रहे। चलचित्रों का अनुभव भी प्राप्त किया। त्यागभूमि, कर्मवीर, शिक्षा और भारती के संपादक रह चुके हैं। फिल्मों का कथानक-संवाद और गीत भी कुछ दिनों तक आप लिखते थे। आँखों में, जादूगरनी, अनन्त के पथ पर, अग्नि-गान, प्रतिभा, पाताल-विजय, रक्षाबंधन शिवासाधना, प्रतिशोध, आहुति, विषपान, छाया, बंधन, आदि आपकी लिखी पुस्तकें हैं।

२४४—हरिभाऊ उपाध्याय

जन्म सन् १८९२ ई०। आपने वाराणसी में शिक्षा प्राप्त की। अधिकांश जीवन कांग्रेस-आन्दोलन को दिया। उसके रचनात्मक कार्य में विशेष रुचि ली। हटूंडी (अजमेर) में एक कन्या विद्यालय स्थापित किया जो आश्रम के ढंग का है। आपकी रुचि साहित्यिक है। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के समय में कुछ दिनों सरस्वती के सहकारी-सम्पादक थे। नवजीवन, त्याग-भूमि, मालव-मयूर, राजस्थान, जीवन-साहित्य के संपादक रह चुके हैं। कई वर्ष अजमेर के मुख्य मंत्री रहे। आजकल राजस्थान के वित्तमंत्री हैं। आप सस्ता-साहित्य-मंडल के संचालक-मंडल के सदस्य हैं। स्वतंत्रता की ओर, बुद्बुद, स्वगत और युगधर्म आपकी लिखी पुस्तकें हैं। जीवन-सद्व्यय, कांग्रेस का इतिहास, मेरी कहानी, आत्मकथा, पुण्य-स्मरण, सम्राट् अशोक और रागिनी आप द्वारा अनुवादित ग्रंथ हैं।

२४५—डा० हरि रामचन्द्र दिवेकर

प्रयाग वि०वि० के स्नातक और संस्कृत के डाक्टर आफ लिट्रेचर। ग्वालियर-निवासी। पूना के डा० कर्वे के महिला विश्वविद्यालय के प्रारंभिक प्रमुख कार्यकर्त्ताओं में थे। अधिकांश जीवन अध्यापन-कार्य में बिताया। संस्कृत के उत्कृष्ट विद्वान्। हिन्दी के प्रेमी और पुराने लेखक। आजकल आप अपना अधिकांश समय सर्वोदय कार्य में लगाते हैं।

२४६—हरिशंकर शर्मा

आप हरदुआगंज (अलीगढ़) निवासी स्वर्गीय पं० नाथूराम शंकर शर्मा के सुपुत्र हैं। आपका जन्म सन् १८९३ ई० में हुआ। आप आर्यमित्र, भारतोदय, सैनिक, साधना और प्रभाकर के संपादक रह चुके हैं। प्रतापी प्रताप, सूक्तिसरोवर, जीवन-ज्योति, वीरांगनाएँ, रस-रत्नाकर, चिड़ियाघर, पिंजरापोल, धर्म का आदिस्रोत, घास-पात और विक्रय आदि आपकी लिखी पुस्तकें हैं। घास-पात पर आपको देव-पुरस्कार प्राप्त हुआ। गंभीर और विचारपूर्ण लेखों के अतिरिक्त उत्कृष्ट हास्य और व्यंग के लेखक हैं। अब लोहामंडी आगरा में रहते हैं।

२४७—हरिश्चन्द्र वर्मा 'चातक'

जन्म सन् १९०८ ई० में। आप अतरौली छिबरामऊ (फर्रुखाबाद) निवासी हैं। संस्कृत, हिन्दी, बँगला में गति है। नैवेद्य, वासंती, क्रान्तिदूत, आँखों के स्वर्ग में आदि आपकी लिखी पुस्तके है। निबन्धकार और कवि।

२४८—जगदम्बाप्रसाद मिश्र 'हितैषी'

आपका जन्म सन् १८९५ ई० में गंजमुरादाबाद (उन्नाव) में हुआ। फारसी, उर्दू, अँगरेजी, संस्कृत और बँगला के जानकार थे। हिन्दी-कविता-क्षेत्र में आप सनेहीजी के शिष्य थे। आपके उर्दू शायरी के उस्ताद मौ० हसरत मोहानी थे। कल्लोलिनी, वैकाली, मातृगीता, दर्शना आपके काव्य-संग्रह हैं। उमर खैयाम की रुबाइयों का पद्यबद्ध अनुवाद किया था। कुछ दिनों क्रान्तिकारी भी रहे। राजनीति में कांग्रेसी विचारों के थे किन्तु उनमें हिन्दुत्व की भावना प्रबल थी। कांग्रेस आन्दोलन में कई बार जेल गये। अन्तिम कुछ वर्ष लोहे का व्यापार करने

लगे थे जिसम उन्हें काफी सफलता मिली थी। व्रजभाषा और खड़ी बोली-दोनों ही में कविता करते थे। निरालाजी उन्हें घनाक्षरी और सवैया का बादशाह कहते थे। मृत्यु सन् १९५७ ई० में हुई।

२४९—हीरा डोम, पटना

इनका परिचय प्राप्त होने का कोई साधन नहीं है। कविता के साथ 'प्राप्त' टिप्पणी लगी है। इसलिए यह संभव है कि किसी अन्य शिक्षित सज्जन ने यह कविता गाते हुए सुनकर लिख ली हो और सरस्वती में प्रकाशनार्थ भेज दी हो। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि सरस्वती में १९१६ ई० में अछूतोद्धार सम्बन्धी यह कविता छपी थी।

२५०—हीरानन्द शास्त्री

कर्तारपुर (पंजाब) के निवासी थे। हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक और कहानीकार श्री अज्ञेय के पिता। आप भारतीय पुरातत्त्व के विद्वान् थे और भारत सरकार के पुरातत्त्व विभाग में अधिकारी थे और अंत में उसके महासंचालक (डाइरेक्टर जनरल) पद से सेवानिवृत्त हुए। आपने पुरातत्त्व में महत्त्वपूर्ण शोधकार्य किया। हिंदी के प्रेमी और उन्नायक थे।

२५१—डा० हेमचन्द्र जोशी

जन्म अलमोड़ा। शिक्षा प्रयाग विश्वविद्यालय के स्नातक और पेरिस के डाक्टर आफ लिट्रेचर। सत्ययुग, भारतमित्र, कलकत्ता-समाचार के सम्पादकीय विभाग में काम किया तथा कूर्माचल-केसरी की स्थापना की। भारत लौट आने पर कुछ दिनों मासिक विश्वमित्र का संपादन करते रहे और स्वयं अपना एक पत्र निकाला जो कुछ दिनों चलकर बन्द, हो गया। भाषा-विज्ञान के विशेषज्ञ।

प्रथम दस वर्षों के विज्ञापनों के नमूने



आधे दाम में चन्द्रकान्ता सन्तति भी दी जायगी

जिस तरह चन्द्रकान्ता छोटे हरफों में छाप कर आधे दाम में बेची गई है उसी तरह चन्द्रकान्ता संतति भी आधे दाम में बेचने के लिये 'गुटका' स्वरूप में छापी जा रही है। इसका हरएक भाग अलग २ छाप कर केवल उन्हीं लोगों के पास भेजा जायगा जो हमारे नियमानुसार कुछ पेशगी दाम हमारे पास भेज देंगे। जो लोग तैयार हो जाने पर खरीदेंगे उनका खर्च ज्यादे पड़ेगा और डांक महसूल भी उन्हींको देना पड़ेगा।

चन्द्रकान्ता सन्तति खरीदने के नियम—सम्पूर्ण ग्रन्थ (२४ हिस्से) ६) रु० में इन नियमों के अनुसार रुपया पेशगी भेजकर ग्राहक होनेवालों को मिलेगा—

१—ग्राहकों को २) ४) ६) रु० जो उनकी इच्छा हो पेशगी भेज कर अपना नाम ठिकाना हमारे रजिस्टर में दर्ज कराना होगा; जैसे २ छपता जायगा तैसे २ भेजा जायगा।

२—जिसका भेजा हुआ मूल्य जब पूरा हो जायगा उन्हें और रुपै भेजने की इत्तला दी जायगी।

३—इसका हर एक नम्बर पूरे एक एक हिस्से का होगा।

४—साल भर में १२ हिस्से छापकर ग्राहकों के पास भेज दिये जायंगे इस लिये हमारी राय में तो ३) पेशगी भेजना अच्छा होगा।

गुटका चन्द्रकान्ता संतति के 'नम्बर' निकल चुकने पर पिछले 'नम्बरों' का (हिस्सों का) पूरा दाम ।-) के हिसाब से और डांक महसूल भी देना होगा।

रुपै इस पते से भेजिये—देवकीनन्दन खत्री प्रोप्राइटर "लहरी प्रेस" बनारस सिटी या नन्दलाल वर्म्मा मैनेजर फ्रेण्ड एण्ड कम्पनी, मथुराजी।

जेनरल कनिंगहम् व विलफोर्ड साहब

कहते हैं कि गुप्तवंशी राजाओं के प्रभुत्व कालीन गुप्तनरेश के आधीन तोरामण (सूर्यमणि) नामक एक करद राजा गुप्तनरेश से बागी हो यमुना व नर्मदा के बीच के देशों में अपनी प्रभुता फैलाय स्वाधीन हो गया था। सूर्यवंशी कछवाहा राजा तोरामन का पुत्र सूर्यसेन शिकार खेलते खेलते गोपाचल अथवा गोपगिरि पर्वत पर महात्मा ग्वालप जी के आश्रम में पहुंचा; महात्मा ग्वालप, सूर्यसेन के शरीर में रक्तदोष जनित कुष्ठरोग का लक्षण देख अपने कमण्डलु का चुल्लू भर जल पिलाया।

राजा सूर्यसेन को कुष्ठव्याधि से मुक्त किया।

तभी से राजा सूर्यसेन भी वहीं रहने लगे व उसी स्थान का नाम ग्वालियावर रख २७५ ई० में ग्वालियर बसाया। प्रसिद्ध गुप्तवंशोद्भवं भिषक्राज श्रीयुक्त कविराज विनोदलाल सेन महाशय महाराज काश्मीर व महाराज वर्द्धमान के अनुज्ञा से संवत् १९२७ में शहर कलकत्ता, १४६ नं० फौजदारी-बालाखाना में आदि-आयुर्वेद औषधालय का प्रतिष्ठा करके सारा आयुर्वेद शास्त्र को मथन कर कविराज श्रीआशुतोष सेन के सहकारिता से प्रत्यक्ष फलप्रद आयुर्वेदोक्त औषधियों का प्रचार कर डाक्टर व हकीमों का परित्यक्त सहस्र सहस्र असाध्य रोगयुक्त रोगियों को आराम कर हिन्दुस्तान व और और देशों के राजा महाराजों के प्रशंसा पात्र हुये।

कविराज विनोदलाल सेन का सारिवादिकषाय।

के सेवन से यावत् प्रकार का रक्तदोष जनित रोग चन्दरोज में आराम होता है। सारिवादि कषाय के नुस्खे में सभी द्रव्य वर्त्तमान है जो कि महात्मा ग्वालप के कमण्डलु के जल में थीं। सारिवादि कषाय को महात्मा ग्वालप के कमण्डलु का जल कहने पर भी अत्युक्ति नहीं। एक शीशी की० १॥) डेढ़ रुपया। बज़रीये भी० पी० २-) दो रुपया एक आना।

कविराज श्रीआशुतोष सेन—चिकित्सक।
आदि आयुर्वेद औषधालय,
१४६ नं० फौजदारी-बालाखाना, कलकत्ता।



एः बारह बजा के आया।

अब तो बुखार आ गया अब दवा क्या होगा।
तू सुबे से कहां था?

बाबू जी मैं आप के वास्ते फेबरिन[illegible] लाने गया था फेबरिना से हर किस्म क[illegible] बुखार तील्ली वगैरह आराम हो बद[illegible] में खून व ताकत आती है, अगर प्लेग के पहली अवस्था में फेबरिना सेवन किय[illegible] जाय, तो सत्यानासी प्लेग भी भाग जाय इस फेबरिना के लिये मैं हिन्दुस्तान औ[illegible] उपनिवेशों के एक मात्र एजन्ट मेसर्स आर, सि, गुप्त एन्ड सन्स, केमिस्ट [illegible] ड्रगिस्ट की दुकान ८१ नं० क्लाई[illegible] स्ट्रीट कलकत्ता गया था। इस फेबरि[illegible] के सेवन से आप चन्द रोज में आरा[illegible] होंगे, मैं आप के वास्ते दो बोतल फेबरि[illegible] लाया है एक बड़ा की० १॥) और ए[illegible] छोटा की० १) मालिक फेबरिना क[illegible]